

बद्ध्वा ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा ।
 मातुरन्तिकमागच्छद्वयाद्भः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४७
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः ।
 आगतौ तत्र यत्रास्तां मातापुत्रावभीतकौ ॥ ४८
 दृष्ट्वा तु तमुवाचेदं ब्रह्मा कश्यप एव च ।
 मुञ्चैनं पुत्र देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम् ॥ ४९
 अपमानो वधः प्रोक्तः पुत्र सम्भावितस्य च ।
 अस्मद्वाक्येन यो मुक्तो विद्धि तं मृतमेव च ॥ ५०
 परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणां भारमावहेत् ।
 जीवन्नेव मृतो वत्स दिवसे दिवसे स तु ॥ ५१
 महतां वशमायाते वैरं नैवास्ति वैरिणि ।
 एतच्छुत्वा तु वज्राङ्गः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२
 न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता मया ।
 त्वं सुरासुरनाथो वै मम च प्रपितामहः ॥ ५३
 करिष्ये त्वद्वचो देव एष मुक्तः शतक्रतुः ।
 तपसे मे रतिर्देव निर्विघ्नं चैव मे भवेत् ॥ ५४
 त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विराम सः ।
 तस्मिस्तूष्णीं स्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः ॥ ५५

ब्रह्मोवाच

तपस्त्वं कूरमापन्नो ह्यस्मच्छासनसंस्थितः ।
 अनया चित्तशुद्ध्या ते पर्यामं जन्मनः फलम् ॥ ५६
 इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायितलोचनाम् ।
 तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थं पद्मसम्भवः ॥ ५७
 वराङ्गीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः ।
 वज्राङ्गोऽपि तया सार्थं जगाम तपसे वनम् ॥ ५८

वहाँ उसने अपने अमोघवर्चस्वी पाशसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्रको बाँधकर माताके निकट लाकर उसी प्रकार खड़ा कर दिया, जैसे व्याघ्र छोटे-से मृगको पकड़ लेता है। इसी बीच ब्रह्मा और महातपस्वी महर्षि कश्यप—ये दोनों वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वे दोनों माता-पुत्र निर्भय हुए स्थित थे ॥ ३६—४८ ॥

वहाँ (इन्द्रको बाँधा हुआ) देखकर ब्रह्मा और कश्यपने उस वज्राङ्गसे इस प्रकार कहा—‘पुत्र! इन देवराजको छोड़ दे। इनको बाँधने अथवा मारनेसे तेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? बेटा! सम्मानित पुरुषका अपमान ही उसकी मृत्युसे बढ़कर बतलाया गया है। हमलोगोंके कहनेसे जो बन्धनमुक्त हो रहा है, उसे तू मरा हुआ ही जान। वत्स! दूसरेके गौरवसे मुक्त हुआ मनुष्य शत्रुओंका भारवाही अर्थात् आभारी हो जाता है। उसे दिन-प्रतिदिन जीते हुए मृतक-तुल्य ही समझना चाहिये। शत्रुके वशमें आ जानेपर महान् पुरुषोंका शत्रुके प्रति वैरभाव नहीं रह जाता।’ यह सुनकर वज्राङ्ग विनम्र होकर कहने लगा—‘देव! इन्द्रको बाँधनेसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो मैंने माताकी आज्ञाका पालन किया है। आप तो देवताओं और असुरोंके स्वामी तथा मेरे प्रपितामह हैं, अतः मैं अवश्य आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। यह लीजिये, इन्द्र बन्धन-मुक्त हो गये। देव! मेरे मनमें तपस्या करनेके लिये बड़ी लालसा है। भगवन्! वह आपकी कृपासे निर्विघ्न पूरा हो जाय।’ ऐसा कहकर वह चुप हो गया। तब उस दैत्यको चुपचाप सामने स्थित देखकर ब्रह्मा इस प्रकार बोले— ॥ ४९—५५ ॥

ब्रह्माने कहा—बेटा! (तूने) जो मेरी आज्ञाका पालन किया है, यही मानो तूने घोर तप कर लिया। इस चित्तशुद्धिसे तुझे अपने जन्मका फल प्राप्त हो गया। ऐसा कहकर पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माने एक विशाल नेत्रोंवाली कन्याकी सृष्टि की और उसे वज्राङ्गको पत्नीरूपमें प्रदान कर दिया। पुनः उस कन्याका वराङ्गी नाम रखकर ब्रह्मा वहाँसे चले गये। तत्पश्चात् वज्राङ्ग भी अपनी पत्नी वराङ्गीके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

ऊर्ध्वबाहुः स दैत्येन्द्रोऽचरदब्दसहस्रकम्।
कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः ॥ ५९

तावच्चावाङ्मुखः कालं तावत्पञ्चाग्निमध्यगः।
निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत ॥ ६०

ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसहस्रकम्।
जलान्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाब्रता ॥ ६१

तस्यैव तीरे सरसस्तप्यन्ती मौनमास्थिता।
निराहारा तपो घोरं प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ६२

तस्यां तपसि वर्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्।
भूत्वा तु मर्कटस्तत्र तदाश्रमपदं महान् ॥ ६३

चक्रे विलोलं निःशेषं तुम्बीघटकरण्डकम्।
ततस्तु मेषरूपेण कर्प्पं तस्याकरोन्महान् ॥ ६४

ततो भुजङ्गरूपेण बध्वा च चरणद्वयम्।
अपाकर्षत् ततो दूरं भ्रमस्तस्या महीमिमाम् ॥ ६५

तपोबलाङ्ग्या सा तस्य न वध्यत्वं जगाम ह।
ततो गोमायुरूपेण तस्यादूषयदाश्रमम् ॥ ६६

ततस्तु मेषरूपेण तस्याः क्लेदयदाश्रमम्।
भीषिकाभिरनेकाभिस्तां क्विलश्यन् पाकशासनः ॥ ६७

विराम यदा नैवं वज्राङ्गमहिषी तदा।
शैलस्य दुष्टां मत्वा शापं दातुं व्यवस्थिता ॥ ६८

स शापाभिमुखां दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः।
उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीरुचेतनः ॥ ६९

नाहं वराङ्गने दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम्।
विभ्रमं तु करोत्येष रुषितः पाकशासनः ॥ ७०

चला गया। वहाँ महातपस्वी दैत्यराज वज्राङ्ग, जिसके नेत्र कमलदलके समान थे तथा जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी, एक हजार वर्षतक दोनों हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करता रहा। पुनः उसने एक हजार वर्षतक पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर घोर तपस्या की। उस समय उसने भोजनका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार वह तपस्याकी राशि-जैसा हो गया था। तत्पश्चात् उसने एक हजार वर्षतक जलके भीतर बैठकर तप किया। जिस समय वह जलके भीतर प्रविष्ट होकर तप कर रहा था, उसी समय उसकी अत्यन्त सुन्दरी एवं महाब्रतपरायणा पत्नी वराङ्गी भी उसी सरोवरके तटपर मौन धारणकर तपस्या करती हुई घोर तपमें संलग्न हो गयी। उस समय वह निराहार ही रहती थी। उसके तपस्या करते समय (उसे तपसे डिगानेके निमित्त) इन्द्र तरह-तरहकी विभीषिकाएँ उत्पन्न करने लगे ॥ ५६—६२ ३ ॥

वे बन्दरका विशाल रूप धारणकर उसके आश्रमपर पहुँचे और वहाँके सम्पूर्ण तुंबी, घट और पिटारी आदिको तितर-वितर कर दिया। फिर मेषरूपसे उसे भलीभाँति कैंपाया। तत्पश्चात् सर्पका रूप बनाकर उसके दोनों चरणोंको अपने शरीरसे बाँधकर इस पृथ्वीपर घूमते हुए उसे दूरतक घसीटते रहे, किंतु वराङ्गी तपोबलसे सम्पन्न थीं, अतः इन्द्रद्वारा मारी न जा सकी। तब इन्द्रने शृगालका रूप धारणकर उसके आश्रमको दूषित कर दिया। फिर उन्होंने बादल बनकर उसके आश्रमको भिगो दिया। इस प्रकार इन्द्र अनेकों प्रकारकी विभीषिकाओंको दिखाकर उसे कष्ट पहुँचाते रहे। जब इन्द्र इस प्रकारके कुकर्मसे विरत नहीं हुए, तब वज्राङ्गकी पटरानी वराङ्गी इसे पर्वतकी दुष्टता मानकर उसे शाप देनेके लिये उद्यत हो गयी। इस प्रकार उसे शाप देनेके लिये उद्यत देखकर पर्वतका हृदय भयभीत हो गया। तब उसने पुरुषका शरीर धारणकर उस सुन्दरी वराङ्गीसे कहा—‘वराङ्गने! मैं दुष्ट नहीं हूँ। मैं तो सभी देहधारियोंके लिये सेवनीय हूँ। यह सब उपद्रव तो ये कुद्ध हुए इन्द्र कर रहे हैं।’ इसी बीच (जलके भीतर बैठकर तपस्या करते हुए वज्राङ्गका)

एतस्मिन्नन्तरे जातः कालो वर्षसहस्रिकः।
तस्मिन् गते तु भगवान् काले कमलसम्भवः।
तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाश्रयम्॥ ७१

ब्रह्मोवाच

ददामि सर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन।
एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसां निधिः।
उवाच प्राञ्छलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम्॥ ७२

वज्राङ्ग उवाच

आसुरो मास्तु मे भावः सन्तु लोका ममाश्रयाः।
तपस्येव रतिर्मेऽस्तु शरीरस्यास्तु वर्तनम्॥ ७३
एवमस्त्विति तं देवो जगाम स्वकमालयम्।
वज्राङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः॥ ७४
आहारमिच्छन्नभार्या स्वां न ददर्शश्रमे स्वके।
क्षुधाविष्टः स शैलस्य गहनं प्रविवेश ह॥ ७५
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन् व्यलोकयत्।
रुदतीं तां प्रियां दीनां तनुप्रच्छादिताननाम्।
तां विलोक्य स दैत्येन्द्रः प्रोवाच परिसान्त्वयन्॥ ७६

वज्राङ्ग उवाच

केन तेऽपकृतं भीरु यमलोकं यियासुना।
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं मे ब्रूहि भामिनि॥ ७७

एक हजार वर्ष पूरा हो गया। उस समयके पूर्ण हो जानेपर पद्मसम्भव भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न होकर उस जलाशयके तटपर आये और वज्राङ्गसे बोले॥ ६३—७१॥

ब्रह्माने कहा—दितिनन्दन! उठो। मैं तुम्हें तुम्हारी सारी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दे रहा हूँ। ऐसा कहे जानेपर तपोनिधि दैत्यराज वज्राङ्ग उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मासे इस प्रकार कहा॥ ७२॥

वज्राङ्गने कहा—देव! मेरे शरीरमें आसुर भावका संचार मत हो, मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो। तपस्यामें ही मेरी रति हो और मेरा यह शरीर वर्तमान रहे। 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने निवासस्थानको चले गये। वज्राङ्ग भी तपस्याके समाप्त हो जानेपर संयम-नियमसे निवृत्त हुआ। उस समय उसे भोजनकी इच्छा जाग्रत् हुई, परंतु उसे अपने आत्रममें अपनी पत्नी न दीख पड़ी। तब भूखसे पीड़ित हुआ वज्राङ्ग फल-मूल लानेके लिये उस पर्वतके बनमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने अपनी प्रिय पत्नीको देखा, जो थोड़ा मुख ढके हुए दीनभावसे रुदन कर रही थी। उसे देखकर दैत्यराज वज्राङ्ग उसे सान्त्वना देते हुए बोला॥ ७३—७६॥

वज्राङ्गने कहा—भीरु! यमलोकको जानेके लिये उद्यत किस व्यक्तिने तुम्हारा अपकार किया है? अथवा मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? भामिनि! तुम मुझे शीघ्र बतलाओ॥ ७७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें एक सौ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४६॥

एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माके वरदानसे तारकासुरकी उत्पत्ति और उसका राज्याभिषेक

वराङ्गन्युवाच

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितापि च ।
रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः ॥ १
दुःखपारमपश्यन्ती प्राणांस्त्यकुं व्यवस्थिता ।
पुत्रं मे तारकं देहि दुःखशोकमहार्णवात् ॥ २
एवमुक्तः स दैत्येन्द्रः कोपव्याकुललोचनः ।
शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः ॥ ३
तपः कर्तुं पुनर्देत्यो व्यवस्यत महाबलः ।
ज्ञात्वा तु तस्य संकल्पं ब्रह्मा कूरतरं पुनः ॥ ४
आजगाम तदा तत्र यत्रासौ दितिनन्दनः ।
उवाच तस्मै भगवान् प्रभुर्मधुरया गिरा ॥ ५

ब्रह्मोवाच

किमर्थं पुत्रं भूयस्त्वं नियमं कूरमिच्छसि ।
आहाराभिमुखो दैत्यं तत्त्वो ब्रूहि महाब्रत ॥ ६
यावदब्दसहस्रेण निराहारस्य यत्फलम् ।
क्षणेनैकेन तल्लभ्यं त्यक्त्वाऽहारमुपस्थितम् ॥ ७
त्यागो ह्यप्राप्तकामानां कामेभ्यो न तथा गुरुः ।
यथा प्राप्तं परित्यज्य कामं कमललोचन ॥ ८
श्रुत्वैतद् ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
चिन्तयंस्तपसा युक्तो हृदि ब्रह्ममुखेरितम् ॥ ९

वज्राङ्गु उवाच

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात् त्वदाज्ञया ।
महिषी भीषिता दीना रुदती शाखिनस्तले ॥ १०
सा मयोक्ता तु तन्वङ्गी दूयमानेन चेतसा ।
किमेवं वर्त्तसे भीरु वद त्वं किं चिकीर्षसि ॥ ११
इत्युक्ता सा मया देव प्रोवाच सखलिताक्षरम् ।
वाक्यं वाचस्पते भीता तन्वङ्गी हेतुसंहितम् ॥ १२

वराङ्गनी बोली—‘पतिदेव ! क्रूर स्वभाववाले देवराज इन्हने मुझे एक अनाथ विधवाकी तरह बहुत प्रकारसे डराया है, अपमानित किया है, ताडना दी है और कष्ट पहुँचाया है। इसलिये दुःखका अन्त न देखकर मैं अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये उद्यत हूँ। अतः मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो मेरा इस दुःख एवं शोकरूप महासागरसे उद्धार करनेमें समर्थ हो। पलीट्टारा ऐसा कहे जानेपर दैत्यराज वज्राङ्गका हृदय क्रोधसे व्याकुल हो गया। यद्यपि महासुर वज्राङ्ग देवराज इन्हसे बदला चुकानेमें समर्थ था, तथापि उस महाबली दैत्यने पुनः तप करनेका ही निश्चय किया। तब सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्मा उसके उस कूरतर विचारको जानकर फिर जहाँ यह दिति-पुत्र वज्राङ्ग स्थित था वहाँ आ पहुँचे और उससे मधुर वाणीमें बोले— ॥ १—५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! तुम तो तपसे निवृत्त हो भोजन करने जा रहे थे, फिर तुम पुनः कठोर नियममें किस कारणसे तत्पर होना चाहते हो ? महाब्रतधारी दैत्यराज ! वह कारण मुझे बतलाओ। कमललोचन ! एक हजार वर्षतक निराहार रहनेका जो फल होता है, वह सामने उपस्थित आहारका त्याग कर देनेसे क्षणमात्रमें ही प्राप्त हो जाता है; क्योंकि अप्राप्त मनोरथवालोंका त्याग उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता, जितना प्राप्त कामनावालेका त्याग वरिष्ठ होता है। ब्रह्माकी ऐसी बात सुनकर तपस्वी दैत्यराज वज्राङ्ग उस ब्रह्मवाणीका हृदयमें विचार करते हुए हाथ जोड़कर बोला ॥ ६—९ ॥

वज्राङ्गने कहा—भगवन् ! आपकी आज्ञासे समाधिसे विरत होनेपर मैंने देखा कि मेरी पटरानी वराङ्गी एक वृक्षके नीचे बैठी हुई दीनभावसे भयभीत होकर रो रही है। यह देखकर मेरा मन दुःखी हो गया। तब मैंने उस सुन्दरीसे पूछा—‘भीरु ! तुम क्यों ऐसी दशामें पड़ गयी हो ? मुझे बतलाओ तो सही, तुम क्या करना चाहती हो ?’ वाणीके अधीश्वर देव ! मेरे ऐसा पूछनेपर भयभीत हुई सुन्दरी वराङ्गने लड़खड़ते हुए शब्दोंमें कारण बतलाते हुए कहा

त्रासितास्यपविद्वास्मि कर्षिता पीडितास्मि च ।
 रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः ॥ १३
 दुःखस्यान्तमपश्यन्ते प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता ।
 पुत्रं मे तारकं देहि ह्यस्माद् दुःखमहार्णवात् ॥ १४
 एवमुक्तस्तु संक्षुब्धस्तस्याः पुत्रार्थमुद्यतः ।
 तपो घोरं करिष्यामि जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥ १५
 एतच्छुत्वा वचो देवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा ।
 उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः ॥ १६

ब्रह्मोवाच

अलं ते तपसा वत्स मा क्लेशे दुस्तरे विश ।
 पुत्रस्ते तारको नाम भविष्यति महाबलः ॥ १७
 देवसीमन्तिनीनां तु धम्मिल्लस्य विमोक्षणः ।
 इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणिपत्य पितामहम् ॥ १८
 आगत्यानन्दयामास महिषीं हर्षिताननः ।
 तौ दम्पती कृतार्थीं तु जग्मतुः स्वाश्रमं मुदा ॥ १९
 वत्राङ्गेणाहितं गर्भं वराङ्गीं वरवर्णिनी ।
 पूर्णं वर्षसहस्रं च दधारोदर एव हि ॥ २०
 ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गीं सुषुवे सुतम् ।
 जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिल्लोकभयङ्करे ॥ २१
 चचाल सकला पृथ्वीं समुद्राश्च चकम्पिरे ।
 चेलुर्महीधराः सर्वे ववुर्वाताश्च भीषणाः ॥ २२
 जेपुर्जप्यं मुनिवरा नेदुव्यालमृगा अपि ।
 चन्द्रसूर्यो जहुः कान्तिं सनीहारा दिशोऽभवन् ॥ २३
 जाते महासुरे तस्मिन् सर्वे चापि महासुराः ।
 आजग्मुहर्षितास्तत्र तथा चासुरयोषितः ॥ २४

है कि—‘नाथ ! देवराज इन्द्रने निर्दय होकर मुझे अनाथ नारीकी तरह अनेक प्रकारसे डराया, अपमानित किया, घसीटा है और कष्ट पहुँचाया है। दुःखका अन्त न देखकर मैं प्राण-त्याग करनेको उद्यत हो गयी हूँ। इसलिये मुझे इस दुःखरूपी महासागरसे उद्धार करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये।’ उसके ऐसा कहनेपर मेरा मन संक्षुब्ध हो उठा है। इसलिये मैं उसे पुत्र प्रदान करनेके लिये उद्यत हो देवताओंपर विजय पानेके लिये घोर तप करूँगा। उसकी यह बात सुनकर पदासम्भव चतुर्मुख ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उस दैत्यराजसे बोले ॥ १०—१६ ॥

ब्रह्माने कहा—वत्स ! तुम्हारी तपस्या पूरी हो चुकी है। अब तुम उस दुस्तर क्लेशपूर्ण कार्यमें मत प्रविष्ट होओ। तुम्हें तारक नामका ऐसा महाबली पुत्र प्राप्त होगा, जो देवाङ्गनाओंके केशकलापको खोल देनेवाला होगा (अर्थात् उन्हें विधवाकी परिस्थितिमें लादेगा)। ब्रह्माङ्गारा इस प्रकार कहे जानेपर दैत्यराज वत्राङ्गका मुख हर्षसे खिल उठा। तब वह ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणिपात करके अपनी पटरानी वराङ्गीके पास आया और उसने (पुत्र-प्राप्तिके वरदानकी बात बतलाकर) उसे आनन्दित किया। तत्पश्चात् दोनों पति-पत्नी कृतार्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको लौट गये। समयानुसार वत्राङ्गाङ्गारा स्थापित किये गये गर्भको सुन्दरी वराङ्गी पूरे एक हजार वर्षोंतक अपने उदरमें ही धारण किये रही। एक हजार वर्ष पूरा होनेपर वराङ्गीने पुत्र उत्पन्न किया। उस लोकभयंकर दैत्येन्द्रके जन्म लेते ही सारी पृथ्वी डगमगा उठी अर्थात् भूकम्प आ गया, समुद्रोंमें ज्वार-भाटा उठने लगा, सभी पर्वत विचलित हो उठे, भयावना झंझावात बहने लगा। श्रेष्ठ मुनिगण शान्त्यर्थ जप करने लगे, सर्प तथा वन्य पशु आदि भी उच्च स्वरसे शब्द करने लगे, चन्द्रमा और सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गयी तथा दिशाओंमें कुहासा छा गया। द्विजवरो ! उस महासुरके जन्म लेनेपर सभी प्रधान असुर हर्षसे भरे हुए वहाँ आ पहुँचे।

जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चासुराङ्गनाः ।
 ततो महोत्सवो जातो दानवानां द्विजोत्तमाः ॥ २५
 विषण्णमनसो देवाः समहेन्द्रास्तदाभवन् ।
 वराङ्गी स्वसुतं दृष्ट्वा हर्षेणापूरिता तदा ॥ २६
 बहु मे न देवेन्द्रविजयं तु तदैव सा ।
 जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्छण्डविक्रमः ॥ २७
 अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैः कुजम्भमहिषादिभिः ।
 सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमैः ॥ २८
 स तु प्राप्य महाराज्यं तारको मुनिसत्तमाः ।
 उवाच दानवश्रेष्ठान् युक्तियुक्तमिदं वचः ॥ २९

उनके साथ राक्षसियाँ भी थीं। हर्षसे फूली हुई उन असुराङ्गनाओंमें कुछ तो नाचने लगीं और कुछ गाने लगीं। इस प्रकार वहाँ दानवोंका महोत्सव प्रारम्भ हो गया। यह देखकर इन्द्रसहित सभी देवताओंका मन खिल हो गया। उधर वराङ्गी अपने पुत्रका मुख देखकर हर्षसे भर गयी। उसी समय वह देवराज इन्द्रकी विजयको तुच्छ मानने लगी। प्रचण्ड पराक्रमी दैत्यराज तारक जन्म लेते ही पृथ्वीको भी उठा लेनेमें समर्थ कुजम्भ और महिष आदि सभी प्रधान असुरोंद्वारा सम्पूर्ण असुरोंके सप्राट्पदपर अभिषिक्त कर दिया गया। मुनिवरो! तब उस महान् राज्यका अधिकार पाकर तारक उन दानवश्रेष्ठोंसे ऐसा युक्तिसंगत वचन बोला— ॥ १७—२९ ॥

इति श्रीमत्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने तारकोत्पत्तिनाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकासुरोपाख्यानमें तारकोत्पत्ति नामक एक सौ सेंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४७ ॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

तारकासुरकी तपस्या और ब्रह्माद्वारा उसे वरदानप्राप्ति, देवासुर-
 संग्रामकी तैयारी तथा दोनों दलोंकी सेनाओंका वर्णन

तारक उवाच

शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः ।
 श्रेयसे क्रियतां बुद्धिः सर्वैः कृत्यस्य संविधौ ॥ १
 वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः ।
 अस्माकं जातिधर्मो वै विरुद्धं वैरमक्षयम् ॥ २
 वयमद्य गमिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु ।
 स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्व एवमसंशयः ॥ ३
 किंतु नातपसा युक्तो मन्येऽहं सुरसंगमम् ।
 अहमादौ करिष्यामि तपो घोरं दितेः सुताः ॥ ४

तारकने कहा—महाबली असुरो! आपलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनें। आप सभी लोगोंको इस कार्यकी तैयारीमें सर्वप्रथम अपने कल्याणके लिये विचार कर लेना चाहिये। दानववृन्द! देवतालोग हम सभीके कुलका (सदा) संहार करते रहते हैं, इस कारण उनके साथ विरोध करना हमलोगोंका जातिगत धर्म है और उनके साथ हमारा (सदा) अक्षय वैर बँधा रहता है। हम सभी लोग अपने बाहुबलका आश्रय लेकर आज ही उन देवताओंका दमन करनेके लिये चलेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है, किंतु दिति-नन्दनो! तपोबलसे सम्पत्र हुए बिना मैं देवताओंके साथ लोहा लेना उचित नहीं समझता, अतः मैं पहले घोर तपस्या करूँगा, तत्पश्चात् हमलोग

ततः सुरान् विजेष्यामो भोक्ष्यामोऽथ जगत्रयम् ।
स्थिरोपायो हि पुरुषः स्थिरश्रीरपि जायते ॥ ५

रक्षितुं नैव शक्नोति चपलश्चपलां श्रियम् ।
तच्छुत्वा दानवाः सर्वे वाक्यं तस्यासुरस्य तु ॥ ६

साधु साधित्यवोचंस्ते तत्र दैत्याः सविस्मयाः ।
सोऽगच्छत् पारियात्रस्य गिरेः कन्दरमुत्तमम् ॥ ७

सर्वतुंकुसुमाकीर्ण नानौषधिविदीपितम् ।
नानाधातुरसस्नावचित्रं नानागुहागृहम् ॥ ८

गहनैः सर्वतो गूढं चित्रकल्पद्रुमाश्रयम् ।
अनेकाकारबहुलं पृथक् पक्षिकुलाकुलम् ॥ ९

नानाप्रस्त्रवणोपेतं नानाविधजलाशयम् ।
प्राप्य तत्कन्दरं दैत्यश्चार विपुलं तपः ॥ १०

निराहारः पञ्चतपाः पत्रभुग् वारिभोजनः ।
शतं शतं समानां तु तपांस्येतानि सोऽकरोत् ॥ ११

ततः स्वदेहादुकृत्य कर्ष कर्ष दिने दिने ।
मांसस्याग्नौ जुहावासौ ततो निर्मासितां गतः ॥ १२

तस्मिन् निर्मासितां याते तपोराशित्वमागते ।
जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः ॥ १३

उद्घिग्नाश्च सुराः सर्वे तपसा तस्य भीषिताः ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमं तोषमागतः ॥ १४

तारकस्य वरं दातुं जगाम त्रिदशालयात् ।
प्राप्य तं शैलराजानं स गिरेः कन्दरस्थितम् ।

उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया युतः ॥ १५

ब्रह्मोवाच

पुत्रालं तपसा तेऽस्तु नास्त्यसाध्यं तवाधुना ।
वरं वृणीष्व रुचिरं यत् ते मनसि वर्तते ॥ १६

देवताओंको पराजित करेंगे और त्रिलोकीके सुखका उपभोग करेंगे; क्योंकि सुदृढ़ उपाय करनेवाला पुरुष ही अनपायिनी लक्ष्मीका पात्र होता है। चञ्चल बुद्धिवाला पुरुष चञ्चला लक्ष्मीकी रक्षा नहीं कर सकता। तारकासुरके उस कथनको सुनकर वहाँ उपस्थित सभी दानव और दैत्य आश्वर्यचकित हो उठे और वे सभी 'ठीक हैं, ठीक हैं' ऐसा कहने लगे। तत्पश्चात् तारकासुर (तपस्या करनेके लिये) पारियात्र पर्वत (आरावली एवं विंध्यका पश्चिम भाग)-की उत्तम कन्दराके पास पहुँचा। वह पर्वत सभी ऋतुओंमें विकसित होनेवाले पुष्पोंसे व्यास, अनेक प्रकारकी ओषधियोंसे उद्दीप, विविध धातुओंके रसोंके चूते रहनेसे चित्र-विचित्र, अनेकों गुहारूपी गृहोंसे युक्त, सब ओरसे घने वृक्षोंसे घिरा, रंग-बिरंगे कल्पवृक्षोंसे आच्छादित और अनेकों प्रकारके आकारवाले बहुत-से पक्षि-समूहोंसे सर्वत्र व्यास था। उस पर्वतसे अनेकों झरने झार रहे थे तथा वह अनेकविध जलाशयोंसे सुशोभित था। उसकी कन्दरामें जाकर तारक दैत्य घोर तपस्यामें संलग्न हो गया ॥ १—१० ॥

पहले वह सौ-सौ वर्षोंके क्रमसे निराहार रहकर, फिर पञ्चाग्नि तापकर, पुनः पत्ते खाकर तत्पश्चात् केवल जल पीकर तपस्या करता रहा। इसके बाद उसने प्रतिदिन अपने शरीरसे सोलह माशा मांस काट-काटकर अग्निमें हवन करना प्रारम्भ किया, जिससे उसका शरीर मांसरहित हो गया। इस प्रकार उसके मांसरहित हो जानेपर वह तपःपुञ्च-सा दीख पड़ने लगा। उसके तेजसे चारों ओर सभी प्राणी संतप्त हो उठे। समस्त देवाण उसकी तपस्यासे भयभीत हो उद्घिग्र हो गये। इसी अवसरपर ब्रह्मा उसकी भीषण तपस्यासे परम प्रसन्न हो गये। तब वे तारकासुरको वर प्रदान करनेके लिये स्वर्गलोकसे चल पड़े और उस पर्वतराज पारियात्रपर जा पहुँचे। वहाँ वे देवाधिदेव उस पर्वतकी कन्दरामें स्थित तारकके निकट जाकर उससे मधुर वाणीमें बोले ॥ ११—१५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—पुत्र! तुम्हें अब तप करनेकी आवश्यकता नहीं, वह पूरी हो चुकी। अब तुम्हारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। अब तुम्हारे मनमें जो रुचे, वह उत्तम वर माँग लो।

इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्रणम्यात्मभुवं विभुम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणतः पृथुविक्रमः ॥ १७
तारक उवाच

देव भूतमनोवास वेत्सि जन्तुविचेष्टितम्।
कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी जिगीषुः प्रायशो जनः ॥ १८
वयं च जातिधर्मेण कृतवैराः सहामरैः।
तैश्च निःशेषिता दैत्याः क्रौरैः संत्यज्य धर्मिताम्।
तेषामहं समुद्धर्त्ता भवेयमिति मे मतिः ॥ १९
अवध्यः सर्वभूतानामस्त्राणां च महौजसाम्।
स्यामहं परमो ह्येष वरो मम हृदि स्थितः ॥ २०
एतन्मे देहि देवेश नान्यो मे रोचते वरः।
तमुवाच ततो दैत्यं विरिञ्छिः सुरनायकः ॥ २१
न युज्यन्ते विना मृत्युं देहिनो दैत्यसत्तम्।
यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे ॥ २२
ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात्।
वत्रे महासुरो मृत्युमवलेपनमोहितः ॥ २३
ब्रह्मा चास्मै वरं दत्त्वा यत्किञ्चिन्मनसेप्सितम्।
जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपि स्वकमालयम् ॥ २४
उत्तीर्ण तपसस्तं तु दैत्यं दैत्येश्वरास्तथा।
परिब्रुः सहस्राक्षं दिवि देवगणा यथा ॥ २५
तस्मिन् महति राज्यस्थे तारके दैत्यनन्दने।
ऋतवो मूर्तिमन्तश्च स्वकालगुणबृंहिताः ॥ २६
अभवन् किंकरास्तस्य लोकपालाश्च सर्वशः।
कान्तिर्द्युतिर्धृतिर्मेधा श्रीरवेक्ष्य च दानवम् ॥ २७
परिब्रुगुणाकीर्णा निश्छद्राः सर्व एव हि।
कालागुरुविलिमाङ्गं महामुकुटभूषणम् ॥ २८

ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी दैत्यराज तारकने स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको प्रणाम किया और विनप्रभावसे हाथ जोड़कर कहा ॥ १६-१७ ॥

तारक बोला—सभी प्राणियोंके मनमें निवास करनेवाले देव! आप सभी जीवोंकी चेष्टाको जानते हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य अपने शत्रुसे बदला लेनेकी भावनासे उसे जीतनेका इच्छुक रहता है। हमलोगोंका जातिधर्मानुसार देवताओंके साथ वैर है। उन क्रूरकर्मी देवताओंने धर्मको तिलाङ्गलि देकर प्रायः दैत्योंको निःशेष कर दिया है। मैं उनका उन्मूलन करनेवाला हो जाऊँ—ऐसा मेरा विचार है। साथ ही मैं समस्त प्राणियों तथा परम तेजस्वी अस्त्रोंद्वारा अवध्य हो जाऊँ—यही उत्तम वर मेरे हृदयमें स्थित है। देवेश! मुझे यही वर दीजिये। मुझे किसी अन्य वरकी अभिलाषा नहीं है। यह सुनकर सुरनायक ब्रह्मा उस दैत्यराजसे बोले—‘दैत्यश्रेष्ठ! कोई भी देहधारी जीव मृत्युसे नहीं बच सकता, अर्थात् जो जन्म धारण करता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है, इसलिये जिससे तुम्हें मृत्युकी आशङ्का न हो, उसीसे अपनी मृत्युका वर माँग लो।’ तब गर्वसे मूढ़ हुए महासुर दैत्यराज तारकने भलीभाँति सोच-विचारकर सात दिनके बालकके हाथसे अपनी मृत्युका वर माँगा। तदनन्तर देवाधिदेव ब्रह्मा उसके मनके अभिलाषानुसार उसे वर देकर स्वर्गलोकको चले गये। इधर दैत्यराज तारक भी अपने निवासस्थानको लौट आया। तब सभी दैत्याधिपति तपस्याको पूर्ण करके लौटे हुए उस दैत्यराज तारकको घेरकर इस प्रकार बातें करने लगे, जैसे स्वर्गलोकमें देवगण इन्द्रको घेरकर बातें करते हैं ॥ १८-२५ ॥

दैत्योंके उस महान् साप्राज्यपर दैत्यनन्दन तारकके अवस्थित होनेपर छहों ऋतुएँ शरीर धारण कर अपने-अपने कालके अनुसार सभी गुणोंसे युक्त हो उपस्थित हुईं। सभी लोकपाल उसका किंकर बनकर रहने लगे। कान्ति, द्युति, धृति, मेधा और श्री—ये सभी देवियाँ गुणयुक्त होकर निष्कपट भावसे उस दानवराजकी ओर देखती हुई उसे घेरकर खड़ी रहती थीं। जब वह दैत्यराज शरीरमें काला अगुरुका लेप कर बहुमूल्य मुकुटसे विभूषित हो

रुचिराङ्गदनद्वाङ्गं महासिंहासने स्थितम्।
वीजयन्त्यप्सरः श्रेष्ठा भृशं मुञ्चन्ति नैव ताः ॥ २९

चन्द्राकौं दीपमार्गेषु व्यजनेषु च मारुतः।
कृतान्तोऽग्रेसरस्तस्य बभूवुर्मुनिसत्तमाः ॥ ३०

एवं प्रयाति काले तु वितते तारकासुरः।
बभाषे सचिवान् दैत्यः प्रभूतवरदर्पितः ॥ ३१

तारक उवाच

राज्येन कारणं किं मे त्वनाक्रम्य त्रिविष्टपम्।
अनिर्याप्य सुरैर्वैरं का शान्तिर्हदये मम ॥ ३२

भुञ्जते द्यापि यज्ञांशानमरा नाक एव हि।
विष्णुः श्रियं न जहति तिष्ठते च गतध्यमः ॥ ३३

स्वस्थाभिः स्वर्गनारीभिः पीड्यन्ते ऽमरवल्लभाः।
सोत्पला मदिरामोदा दिवि क्रीडायनेषु च ॥ ३४

लब्ध्वा जन्म न यः कश्चिद् घटयेत् पौरुषं नरः।
जन्म तस्य वृथाभूतमजन्मा तु विशिष्यते ॥ ३५

मातापितृभ्यां न करोति कामान्
बन्धूनशोकान् न करोति यो वा।

कीर्ति हि वा चार्जयते हिमाभां
पुमान् स जातोऽपि मृतो मतं मे ॥ ३६

तस्माज्यायामरपुङ्गवानां
त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम्।

संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं
बलं च मे दुर्जयदैत्यचक्रम् ।

ध्वं च मे काञ्छनपट्टनद्वं
छत्रं च मे मौक्तिकजालबद्धम् ॥ ३७

तारकस्य चक्रः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः।
सेनानीदैत्यराजस्य तथा चक्रे बलान्वितः ॥ ३८

और मनोहर बाजूबंद बाँधकर विशाल सिंहासनपर बैठता तब श्रेष्ठ अप्सराएँ उसपर निस्तर पंखा झलती रहती थीं और क्षणमात्रके लिये भी उससे पृथक् नहीं होती थीं। मुनिवरो! उसके महलमें चन्द्रमा और सूर्य दीपके स्थानपर, वायुदेव पंखोंके स्थानपर तथा कृतान्त उसके अग्रेसरके स्थानपर नियुक्त हुए। इस प्रकार (सुखपूर्वक) बहुत-सा समय व्यतीत हो जानेपर एक दिन उत्कृष्ट वरप्राप्तिसे गर्वित हुआ दैत्यराज तारकासुर अपने मन्त्रियोंसे बोला ॥ २६—३१ ॥

तारकने कहा—अमात्यो! स्वर्गलोकपर आक्रमण किये बिना मुझे इस राज्यसे क्या लाभ? देवताओंसे वैरका बदला चुकाये बिना मेरे हृदयमें शान्ति कहाँ? अभी भी देवगण स्वर्गलोकमें यज्ञाशोंका उपभोग कर रहे हैं। विष्णु लक्ष्मीको नहीं छोड़ रहा है और निर्भय होकर स्थित है। स्वर्गलोकमें क्रीडागारोंमें मदिराकी गन्धसे युक्त दुबले-पतले शरीरवाले श्रेष्ठ देवगण सुन्दरी देवाङ्गनाओंद्वारा आलिङ्गित किये जा रहे हैं। कोई भी व्यक्ति यदि जन्म लेकर अपना पुरुषार्थ नहीं प्रकट करता तो उसका जन्म लेना व्यर्थ है, उससे तो जन्म न लेनेवाला ही विशिष्ट है। जो पुरुष माता-पिताकी कामनाओंको पूर्ण नहीं करता, अपने बन्धुओंका शोक नष्ट नहीं करता और हिमके समान उज्ज्वल कीर्तिका अर्जन नहीं करता, वह जन्म लेकर भी मेरे हुएके समान है—ऐसा मेरा विचार है। इसलिये श्रेष्ठ देवताओंको जीतने तथा त्रिलोकीकी लक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये शीघ्र ही मेरा आठ पहियेवाला रथ, अजेय दैत्य-सैन्यसमूह, स्वर्णपत्र-जटित ध्वज और मुक्ताकी लड़ियोंसे सुशोभित छत्र तैयार किया जाय ॥ ३२—३७ ॥

दैत्यराज तारककी बात सुनकर उसके सेनानायक महाबली ग्रसन नामक दानवने उसके आज्ञानुसार

आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहृय सत्वरः ।
तुरगाणां सहस्रेण चक्राष्टकविभूषितम् ॥ ३९

शुक्लाम्बरपरिष्कारं चतुर्योजनविस्तृतम् ।
नानाक्रीडागृह्युतं गीतवाद्यमनोहरम् ॥ ४०

विमानमिव देवस्य सुरभर्तुः शतक्रतोः ।
दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यास्ते चण्डविक्रमाः ॥ ४१

तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्ततः ।
महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा ॥ ४२

मथनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दश नायकाः ।
अन्येऽपि शतशस्तस्य पृथिवीदलनक्षमाः ॥ ४३

दैत्येन्द्रा गिरिवर्षाणः सन्ति चण्डपराक्रमाः ।
नानायुधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ ४४

तारकस्याभवत् केतू रौद्रः कनकभूषणः ।
केतुना मकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा ॥ ४५

पैशाचं यस्य वदनं जम्भस्यासीदयोमयम् ।
खरं विधूतलाङ्गूलं कुजम्भस्याभवद्ध्वजे ॥ ४६

महिषस्य तु गोमायुं केतोहैमं तदाभवत् ।
ध्वाङ्गं ध्वजे तु शुम्भस्य कृष्णायोमयमुच्छ्रुतम् ॥ ४७

अनेकाकारविन्यासाशान्येषां तु ध्वजास्तथा ।
शतेन शीघ्रवेगाणां व्याघ्राणां हेममालिनाम् ॥ ४८

ग्रसनस्य रथो युक्तो किञ्चिणौजालमालिनाम् ।
शतेनापि च सिंहानां रथो जम्भस्य दुर्जयः ॥ ४९

कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ।
रथस्तु महिषस्योद्गर्जस्य तु तुरङ्गमैः ॥ ५०

कार्य करना आरम्भ किया। उसने तुरंत ही गम्भीर शब्द करनेवाली भेरी बजाकर दैत्योंको बुलाया। फिर आठ पहियोंसे विभूषित रथमें एक हजार घोड़े जोत दिये गये। (वह उसपर सवार हुआ।) वह रथ चार योजन विस्तारवाला और अनेकों क्रीडागृहोंसे युक्त था। उसपर श्वेत वस्त्रका आच्छादन पड़ा हुआ था तथा वह गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे मनोहर लग रहा था। उस समय वह ऐसा दीख रहा था, मानो देवराज इन्द्रदेवका विमान हो। उस समय दस करोड़ दैत्याधिपति उपस्थित थे, वे सभी दैत्य प्रचण्ड पराक्रमी थे। उनका अगुआ जम्भ था। इसके बाद कुजम्भ, महिष, कुञ्जर, मेघ, कालनेमि, निमि, मथन, जम्भक और शुम्भ नामक दस दैत्येन्द्र सेनानायक थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों दैत्य थे जो पृथ्वीका मर्दन करनेमें समर्थ थे। ये सभी दैत्येन्द्र पर्वतके समान विशाल शरीरवाले, प्रचण्ड पराक्रमी, नाना प्रकारके आयुधोंका प्रयोग करनेमें निपुण और अनेकविधि शस्त्रास्त्रोंकी प्रयोगविधिमें पारंगत थे। तारकासुरका स्वर्णभूषित ध्वज अत्यन्त भयंकर था। शत्रुका विनाश करनेवाले सेनापति ग्रसनका ध्वज मकरके आकारसे युक्त था। जम्भका ध्वज लौहनिर्मित था और उसपर पिशाचके मुखका चिह्न बना हुआ था। कुजम्भके ध्वजपर हिलती हुई पूँछवाला गधा अङ्कित था। महिषके ध्वजपर स्वर्णनिर्मित शृगालका चित्र था। शुम्भका ध्वज काले लोहेका बना हुआ अत्यन्त ऊँचा था और उसपर फौलादका बना काकका आकार चित्रित था ॥ ३८—४७ ॥

इसी प्रकार अन्य दैत्योंके ध्वजोंपर भी अनेकों प्रकारके आकारका विन्यास किया गया था। ग्रसनके रथमें सौ शीघ्रगामी व्याघ्र जुते हुए थे, जिनके गलेमें सोनेकी मालाएँ पड़ी थीं और जो क्षुद्रघंटिकाओंसे सुशोभित थे। जम्भका दुर्जय रथ भी सौ सिंहोंद्वारा खींचा जा रहा था। कुजम्भका रथ पिशाच-सदृश मुखवाले गधोंसे युक्त था। महिषका रथ ऊँटों, कुञ्जरका घोड़ों, मेघका

मेघस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जैः कालनेमिनः ।
 पर्वताभैः समारूढो निमिर्तैर्महागजैः ॥ ५१

चतुर्दर्त्तैर्गन्धवद्धिः शिक्षितैर्मेघभैरवैः ।
 शतहस्तायतैः कृष्णैः तुरङ्गैर्हेमभूषणैः ॥ ५२

सितचामरजालेन शोभिते दक्षिणां दिशम् ।
 सितचन्दनचार्वङ्गो नानापुष्पस्त्रजोज्ज्वलः ॥ ५३

मथनो नाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तो व्यराजत ।
 जम्भकः किङ्किणीजालमालमुष्टं समास्थितः ॥ ५४

कालशुक्लमहामेषमारुढः शुभदानवः ।
 अन्येऽपि दानवा वीरा नानावाहनगामिनः ॥ ५५

प्रचण्डचित्रकर्मणः कुण्डलोष्णीषभूषणाः ।
 नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः ॥ ५६

नानासुगन्धिगन्धाद्या नानाबन्दिजनस्तुताः ।
 नानावाद्यपरिस्पन्दाश्चाग्रेसरमहारथाः ॥ ५७

नानाशौर्यं कथासक्तास्तस्मिन् सैन्ये महासुराः ।
 तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत ॥ ५८

प्रमत्तचण्डमातङ्गतुरङ्गं रथसङ्कुलम् ।
 प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपतिपताकिनम् ॥ ५९

एतस्मिन्नतरे वायुदेवदूतोऽम्बरालये ।
 दृष्ट्वा स दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम् ॥ ६०

स गत्वा तु सभां दिव्यां महेन्द्रस्य महात्मनः ।
 शशांस मध्ये देवानां तत्कार्यं समुपस्थितम् ॥ ६१

चीतों और कालनेमिका भयंकर हाथियोंसे संयुक्त था। दैत्यनायक निमि एक ऐसे रथपर सवार था जिसमें मतवाले गजराज जुते हुए थे, जो पर्वतके समान विशालकाय और चार दाँतोंसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलोंसे मदकी धारा बह रही थी, जो मेघ-सदृश भयंकर गर्जना करनेवाले और युद्धकलामें शिक्षित थे। जिसके शरीरमें श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा था और जो अनेकों प्रकारके उज्ज्वल पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित था, वह मथन नामक दैत्येन्द्र हाथमें पाश लिये हुए उस सैन्यसमूहकी दक्षिण दिशामें स्थित श्वेत चामरोंसे विभूषित रथपर शोभा पा रहा था। उसके रथमें सौ हाथ लम्बे शरीरवाले स्वर्णाभरणोंसे विभूषित काले रंगके घोड़े जुते हुए थे। जम्भक क्षुद्र घंटिकाओंसे सुशोभित ऊँटपर सवार था। शुम्भ नामक दानव कालके समान भयंकर एवं श्वेत वर्णवाले एक विशालकाय मेषपर आरूढ़ था। दूसरे भी दानववीर नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर चल रहे थे ॥ ४८—५५ ॥

वे सभी दैत्य अद्भुत पराक्रमपूर्ण कर्म करनेवाले, कुण्डल और पगड़ीसे विभूषित, अनेक प्रकारके दुष्टोंसे सुशोभित, नाना प्रकारकी मालाओंसे सुसज्जित और अनेकविधि सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित थे। उनके आगे-आगे वंदीगण स्तुति-गान कर रहे थे। उनके साथ अनेकों प्रकारके युद्धके बाजे बज रहे थे। और वे सभी अग्रेसर महारथी अनेकविधि शृङ्गारसे सुसज्जित थे। उस सेनामें प्रधान-प्रधान असुर पराक्रमपूर्ण कथाओंके कहने-सुननेमें आसक्त थे। दैत्यसिंह तारकासुरकी वह सेना मतवाले एवं पराक्रमी हाथियों, घोड़ों और रथोंसे व्यास होनेके कारण अत्यन्त भयंकर दीख रही थी। उसमें ध्वजाएँ फहरा रही थीं और बहुत-से पैदल सैनिक भी थे। इस प्रकार वह सेना देवताओंसे टक्कर लेनेके लिये प्रस्थित हुई। इसी अवसरपर देवदूत वायु दानवोंकी उस सेनाको प्रस्थित होते हुए देखकर इन्द्रको सूचित करनेके लिये स्वर्गलोकमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने महात्मा महेन्द्रकी दिव्य सभामें जाकर देवताओंके बीच उस उपस्थित हुए कार्यकी सूचना दी।

तच्छुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः ।
बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः ॥ ६२

इन्द्र उवाच

सम्प्राप्नोति विमर्देऽयं देवानां दानवैः सह ।
कार्यं किमत्र तद् ब्रूहि नीत्युपायसमन्वितम् ॥ ६३

एतच्छुत्वा तु वचनं महेन्द्रस्य गिरांपतिः ।
इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ६४
सामपूर्वा स्मृता नीतिश्तुरङ्गां पताकिनीम् ।
जिगीषतां सुरश्रेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी ॥ ६५

साम भेदस्तथा दानं दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम् ।
नीतौ क्रमादेशकालरिपुयोग्यक्रमादिम् ॥ ६६
साम दैत्येषु नैवास्ति यतस्ते लब्धसंश्रयाः ।
जातिधर्मेण वाभेद्या दानं प्राप्तश्रिये च किम् ॥ ६७

एकोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते ।
दुर्जनेषु कृतं साम महद्याति च बन्ध्यताम् ॥ ६८
भयादिति व्यवस्थन्ति क्रूराः साम महात्मनाम् ।
ऋजुतामार्यबुद्धित्वं दयानीतिव्यतिक्रमम् ॥ ६९

मन्यन्ते दुर्जना नित्यं साम चापि भयोदयात् ।
तस्माद् दुर्जनमाक्रान्तुं श्रेयान् पौरुषसंश्रयः ॥ ७०

आक्रान्ते तु क्रिया युक्ता सतामेतन्महाव्रतम् ।
दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन ॥ ७१
सुजनोऽपि स्वभावस्य त्यागं वा चेत्कदाचन ।
एवं मे बुध्यते बुद्धिर्भवन्तोऽत्राध्यवस्थताम् ॥ ७२

एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेवेत्युवाच तम् ।
कर्तव्यतां स संचिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ॥ ७३

उसे सुनकर उस समय महाबाहु देवराज इन्द्रने पहले तो अपनी आँखें बंद कर लीं, फिर वे बृहस्पतिसे इस प्रकार बोले ॥ ५६—६२ ॥

इन्द्रने कहा—गुरुदेव ! देवताओंका दानवोंके साथ यह अत्यन्त भयंकर संघर्ष आ पहुँचा है। अब इस विषयमें क्या करना चाहिये, उपायसहित वह नीति बतलाइये। इन्द्रके इस वचनको सुनकर वाणीके अधीक्षर उदार बुद्धिवाले महान् भाग्यशाली बृहस्पति इस प्रकार बोले—‘सुरश्रेष्ठ ! (इस प्रकारकी) चतुरंगिणी सेनापर विजय पानेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सामपूर्वक नीति बतलायी गयी है—यही सनातनी स्थिति है। नीतिके साम, भेद, दान और दण्ड—ये चार अङ्ग हैं। राजनीतिके प्रयोगमें क्रमशः देश, काल और शत्रुकी योग्यता आदिका क्रम देखना चाहिये। इनमें दैत्योंपर सामनीतिका प्रयोग तो हो नहीं सकता; क्योंकि उन्हें आश्रय प्राप्त हो चुका है (वे मदमत्त हैं), जातिधर्मके अनुसार भेदनीतिका प्रयोग करके उनमें फूट भी नहीं डाला जा सकता तथा जिन्हें लक्ष्मी प्राप्त है, उन्हें दान देनेसे भी क्या लाभ होगा ? अतः इनपर एकमात्र दण्डका ही उपाय उपयुक्त प्रतीत हो रहा है। यदि आपको मेरी बात रुचती हो तो इसीका अवलम्बन कीजिये; क्योंकि दुर्जनोंके साथ की गयी सामनीति एकदम निरर्थक होती है। क्रूर लोग महात्माओंद्वारा प्रयुक्त की गयी सामनीतिको भयवश की हुई मानते हैं, अतः उनके साथ की गयी सरलता, उदारबुद्धिका प्रयोग और दयानीतिका विपरीत परिणाम होता है। दुर्जनलोग सामनीतिको भी सदा भयभीत होनेके कारण प्रयुक्त की हुई मानते हैं। इसलिये दुर्जनोंपर आक्रमण करनेके लिये पुरुषार्थका ही आश्रय लेना श्रेयस्कर है। दुर्जनोंके आक्रान्त हो जानेपर ही उनपर प्रयुक्त की हुई क्रिया फलवती होती है। यह सत्पुरुषोंका महान् व्रत है। सुजन कभी (कुसङ्गवश) अपने उत्तम स्वभावका त्याग करनेकी इच्छा कर सकता है, परंतु दुर्जन कभी भी सुजन नहीं हो सकता। मेरी बुद्धिमें तो ऐसा ही आ रहा है, अब आपलोग इस विषयमें जैसा विचार करें। इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा—‘ऐसा ही होगा ।’ फिर वे अपने कर्तव्यके विषयमें भलीभाँति सोच-विचार कर उस देवसभामें बोले ॥ ६३—७३ ॥

इन्द्र उवाच

सावधानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः ।
भवन्तो यज्ञभोक्तारस्तुष्टात्मानोऽतिसात्विकाः ॥ ७४
स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः परिपालकाः ।
भवतश्चानिमित्तेन बाधन्ते दानवेश्वराः ॥ ७५
तेषां सामादि नैवास्ति दण्ड एव विधीयताम् ।
क्रियतां समरोद्योगः सैन्यं संयुज्यतां मम ॥ ७६
आधीयन्तां च शस्त्राणि पूज्यन्तामस्त्रदेवताः ।
वाहनानि च यानानि योजयन्तु सहामराः ॥ ७७
यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेवं दिवौकसः ।
इत्युक्ताः समनहृत्त देवानां ये प्रधानतः ॥ ७८
वाजिनामयुतेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतम् ।
नानाश्वर्यगुणोपेतं सम्प्राप्तं सर्वदैवतैः ॥ ७९
रथं मातलिना क्लृप्तं देवराजस्य दुर्जयम् ।
यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्तत ॥ ८०
चण्डकिङ्करवृन्देन सर्वतः परिवारितः ।
कल्पकालोद्घृतञ्चालापूरिताम्बरलोचनः ॥ ८१
हुताशनश्छागरूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः ।
पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः ॥ ८२
भुजगेन्द्र समारूढो जलेशो भगवान् स्वयम् ।
नरयुक्तरथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः ॥ ८३
तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः ।
महासिंहरवो देवो धनाध्यक्षो गदायुधः ॥ ८४

चन्द्रादित्यावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्वितौ ।
राजभिः सहितास्तस्थुर्गन्धर्वा हेमभूषणाः ॥ ८५

हेमपीठोत्तरासङ्गाश्वित्रवर्मरथायुधाः ।
नाकपृष्ठशिखण्डास्तु वैदूर्यमकरध्वजाः ॥ ८६

इन्द्रने कहा—स्वर्गवासियो ! आपलोग सावधानीपूर्वक मेरी बात सुनें। आपलोग यज्ञके भोक्ता, संतुष्ट आत्मावाले, अत्यन्त सात्त्विक, अपनी महिमामें स्थित और नित्य जगत्का पालन करनेवाले हैं, तथापि दानवेश्वरगण अकारण ही आपलोगोंको पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। उनपर साम आदि तीन नीतियोंके प्रयोगसे कोई लाभ है नहीं, अतः दण्डनीतिका ही विधान करना चाहिये। इसलिये अब आपलोग युद्धकी तैयारी कीजिये और मेरी सेना सुसज्जित की जाय। देवगण ! आपलोग संगठित होकर शस्त्रोंको धारण कीजिये, अस्त्र-देवताओंकी पूजा कीजिये और स्वारियोंको सुसज्जित करके रथोंको जोत दीजिये। इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवताओंमें जो प्रधान देव थे, वे लोग शीघ्र ही यमराजको सेनापतिके पदपर नियुक्त कर सेनाको संगठित करनेमें जुट गये। उस युद्धमें समस्त देवताओंके साथ दस हजार घोड़े सजाये गये, जो नाना प्रकारके आश्वर्ययुक्त गुणोंसे युक्त थे तथा जिनके गलेमें सोनेके घण्टे शोभा पा रहे थे। मातलिने देवराजके दुर्जय रथको सजाकर तैयार किया। यमराज अपने महिषपर सवार होकर सेनाके अग्रभागमें स्थित हुए। उस समय उनके नेत्र महाप्रलयके समय प्रचण्ड ज्वालासे धधकते हुए आकाशकी तरह धधक रहे थे और वे चारों ओरसे प्रचण्ड पराक्रमी किंकरोंसे घिरे हुए थे। अग्निदेव हाथमें शक्ति लिये हुए छागपर आरूढ़ हो उपस्थित हुए। अपने महान् वेगका विस्तार करनेवाले पवनदेवके हाथमें अङ्कुश शोभा पा रहा था। स्वयं भगवान् वरुण भुजगेन्द्रपर सवार थे। जो राक्षसोंके अधीश्वर, आकाशचारी और भयंकर रूपवाले हैं, जिनके हाथमें तेज तलवार शोभा पा रही थी, गदा जिनका आयुध है, जो सिंहके समान भयंकर रूपसे दहाड़नेवाले हैं, वे धनाध्यक्ष देवाधिदेव कुबेर पालकीपर बैठकर समरमें उपस्थित हुए ॥ ७४—८४ ॥

चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चन्द्रमा, सूर्य और दोनों अश्विनीकुमार भी सम्मिलित हुए। स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित गर्धर्वगण अपने अधिपतियोंके साथ उपस्थित हुए। उनके आसन स्वर्णनिर्मित थे, उनके उपरनोंमें सोनेकी पच्चीकारी की गयी थी, वे चित्र-विचित्र कवच, रथ और आयुधसे युक्त थे, उनके सिरोंपर स्वर्णीय मयूरपिच्छ शोभा पा रहा था और उनके ध्वजोंपर वैदूर्यमणिकी मकराकृति बनी हुई थी।

जवारक्तोत्तरासङ्गा राक्षसा रक्तमूर्धजाः ।
गृथध्वजा महावीर्या निर्मलायोविभूषणाः ॥ ८७
मुसलासिगदाहस्ता रथे चोष्णीषदंशिताः ।
महामेघरवा नागा भीमोल्काशनिहेतयः ॥ ८८
यक्षाः कृष्णाम्बरभृतो भीमबाणधनुर्धराः ।
ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा हेमरत्नविभूषणाः ॥ ८९
द्वीपिचर्मोत्तरासङ्गं निशाचरबलं बभौ ।
गार्धपत्रध्वजप्रायमस्थिभूषणभूषितम् ॥ ९०
मुसलायुधदुष्टेक्ष्यं नानाप्राणिमहारवम् ।
किन्नराः श्वेतवसनाः सितपत्रिपताकिनः ॥ ९१
मत्तेभवाहनप्रायास्तीक्ष्णतोमरहेतयः ।
मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो रजतनिर्मितः ॥ ९२
केतुर्जलाधिनाथस्य भीमधूमध्वजानलः ।
पद्मरागमहारत्नविटपं धनदस्य तु ॥ ९३
ध्वजं समुच्छ्रितं भाति गन्तुकाममिवाम्बरम् ।
वृकेण काष्ठलोहेन यमस्यासीन्महाध्वजः ॥ ९४
राक्षसेशस्य केतोवै प्रेतस्य मुखमाबभौ ।
हिमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कार्विमितद्युती ॥ ९५
कुम्भेन रत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत् ।
हेममातङ्गरचितं चित्ररत्नपरिष्कृतम् ॥ ९६
ध्वजं शतक्रतोरासीत् सितचामरमण्डितम् ।
सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचराः ॥ ९७
सेना सा देवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये ।
कोटयस्तास्त्रयस्त्रिशैवे देवनिकायिनाम् ॥ ९८
हिमाचलाभे सितकर्णचामरे
सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्त्रजि ।
कृताभिरागोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे
कपोललीलालिकदम्बसंकुले ॥ ९९

इधर महान् पराक्रमी राक्षसोंके उपरने जपा-कुसुमके समान लाल रंगके थे । उनके बाल भी लाल थे । उनकी ध्वजाओंपर गीधके आकार बने हुए थे । वे निर्मल लोहेके बने हुए आभूषणोंसे विभूषित थे । उनके हाथमें मूसल, गदा और तलवार शोभा पा रहे थे । वे पगड़ी बाँधे हुए रथपर सवार थे । वे हाथीके समान विशालकाय थे और मेघके समान भयंकर गर्जना कर रहे थे, जो ऐसा लग रहा था मानो भयंकर उल्कापात अथवा वज्रपात हो रहा हो । यक्षलोग काला वस्त्र पहने हुए थे और उनके हाथोंमें भयंकर धनुष-बाण शोभा पा रहे थे । वे बड़े भयंकर और स्वर्ण एवं रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित थे । उनकी ध्वजाओंपर ताँबेके उलूक बने हुए थे । निशाचरोंकी सेना गैंडेके चमड़ेका उपरना धारण किये हुए बड़ी शोभा पा रही थी । उनकी ध्वजाओंमें गीधोंके पंख लगे हुए थे । वे हड्डीके आभूषणोंसे विभूषित थे । वे आयुधरूपमें मूसल धारण किये हुए थे, जिससे देखनेमें बड़े भयंकर लग रहे थे । उनकी सेनामें बहुत-से प्राणियोंके भयंकर शब्द हो रहे थे । किंनरगण श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे । उनकी श्वेत पताकाओंपर बाणके चिह्न बने हुए थे । वे प्रायः मतवाले गजराजोंपर सवार थे और तेज तोमर उनके अस्त्र थे ॥ ८५—९१ ३ ॥

जलेश्वर वरुणकी ध्वजापर चाँदीका बना हुआ हंस अङ्गित था, जिसे मुक्तासमूहोंसे सुशोभित किया गया था । वह भयंकर धूमसे धिरे हुए अग्नि-ध्वज-जैसा दीख रहा था । कुबेरकी ध्वजापर पद्मरागमणि एवं बहुमूल्य रत्नोंसे वृक्षकी आकृति बनायी गयी थी । यमराजके महान् ध्वजपर काष्ठ और लोहेसे भेड़ियेका चिह्न अङ्गित किया गया था । वह ऊँचा ध्वज ऐसा लग रहा था मानो आकाशको पार कर जाना चाहता है । राक्षसेशके ध्वजपर प्रेतका मुख शोभा पा रहा था । अमित तेजस्वी चन्द्रदेव और सूर्यदेवके ध्वजपर सोनेके सिंह बने हुए थे । अश्विनीकुमारोंके ध्वजोंपर रत्नोंद्वारा कुष्ठका आकार बना हुआ था । इन्द्रके ध्वजपर सोनेका हाथी बना हुआ था, जिसे चित्र-विचित्र रत्नोंसे सजाया गया था और वह श्वेत चँवरसे सुशोभित था । नाग, यक्ष, गन्धर्व, महोरंग और निशाचरोंसे भरी हुई देवराज इन्द्रकी वह सेना त्रिभुवनमें अजेय थी । इस प्रकार उस देव-सेनामें देवताओंकी संख्या तैतीस करोड़ थी । उस समय स्वर्गलोकमें सहस्रनेत्रधारी महावली पाकशासन इन्द्र ऐरावत नामक गजराजपर, जो हिमालयके समान विशालकाय था, जिसके श्वेत कान चँवरके समान हिल रहे थे, जिसके गलेमें स्वर्णनिर्मित कमलोंकी निर्मल एवं सुन्दर माला लटक रही थी, जिसके उज्ज्वल मस्तकपर कुङ्कुमसे पत्रभंगीकी

स्थितस्तदैरावतनामकुञ्जे

महाबलश्चित्रविभूषणाम्बरः ।

विशालवस्त्रांशुवितानभूषितः

प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ।

सहस्रदृग्वन्दिसहस्रसंस्तुत-

स्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ॥ १००

तुरङ्गमातङ्गबलौघसंकुला

सितातपत्रध्वजराजिशालिनी ।

चमूश्च सा दुर्जयपत्रिसंतता

विभाति नानायुधयोधदुस्तरा ॥ १०१

रचना की गयी थी तथा जिसके कपोलपर भ्रमरसमूह क्रीड़ा करते हुए मँडरा रहे थे, बैठे हुए शोभा पा रहे थे। वे चित्र-चित्र आभूषण और वस्त्र पहने हुए थे, चमकीले वस्त्रोंके बने हुए विशाल छत्रसे सुशोभित थे, उनके बाजूबंदकी फैलती हुई प्रभा भुजाके अग्रभागको सुशोभित कर रही थी और हजारों बंदी उनकी स्तुति कर रहे थे। इसी प्रकार जो घोड़ों और हाथियोंके सैन्यसमूहसे व्याप्त, श्वेत छत्र और ध्वजसमूहोंसे सुशोभित, अजेय पैदल सैनिकोंसे भरी हुई तथा नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले योद्धाओंसे युक्त होनेके कारण दुस्तर वह देवसेना भी अत्यन्त शोभा पा रही थी ॥ १२—१०१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने रणयोजनो नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें रणयोजन नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४८ ॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

देवासुर-संग्रामका प्रारम्भ

सूत उवाच

सुरासुराणां सम्रद्स्तस्मिन्नत्यन्तदारुणे ।
तुमुलोऽतिमहानासीत् सेनयोरुभयोरपि ॥ १
गर्जतां देवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेण च ।
तूर्याणां चैव निर्घोषैर्मातङ्गानां च बृहितैः ॥ २
हेषतां हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च ।
ज्याघोषेण च शूराणां तुमुलोऽतिमहानभूत् ॥ ३
समासाद्योभये सेने परस्परजयैषिणाम् ।
रोषेणातिपरीतानां त्यक्तजीवितचेतसाम् ॥ ४
समासाद्य तु तेऽन्योन्यं प्रक्रमेण विलोमतः ।
रथेनासक्तपादातो रथेन च तुरङ्गमः ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! देवताओं और असुरोंके उस अत्यन्त भीषण संग्रामके अवसरपर दोनों ही सेनाओंमें घोर गर्जनाके साथ-साथ अत्यन्त भयंकर संघर्ष छिड़ गया। उस समय देवता और दैत्य सिंहनाद कर रहे थे, शङ्ख, भेरी और तुरहीका शब्द हो रहा था, हाथी चिंगाड़ रहे थे, यूथ-के-यूथ घोड़े हींस रहे थे, रथके पहियोंकी घरघराहट हो रही थी और वीरोंद्वारा खींची गयी प्रत्यक्षाके चटाचट शब्द हो रहे थे। इन सबके सम्मिलित हो जानेसे अत्यन्त भयानक ध्वनि होने लगी। अतिशय क्रोधसे युक्त हो जीवनकी आशाका परित्याग कर परस्पर एक-दूसरेपर विजय पानेकी इच्छासे युक्त वीरोंकी दोनों सेनाएँ आमने-सामने घमासान युद्ध करने लगीं। उस समय परस्पर अनुलोम और विलोमका क्रम नहीं रह गया। पैदल सैनिक रथीके साथ, घुड़सवार रथीके साथ,

हस्ती पदातिसंयुक्तो रथिना च क्वचिद् रथी ।
मातङ्गेनापरो हस्ती तुरङ्गैबुधुभिर्गजः ॥ ६
पदातिरेको बहुभिर्गजैर्मतैश्च युज्यते ।
ततः प्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः ॥ ७
शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्रैः कुणपैर्गडैः ।
चक्रैश्च शङ्खभिश्चैव तोमरङ्गुशैः सितैः ॥ ८
कर्णिनालीकनाराचवत्सदन्नार्थचन्द्रकैः ।
भल्लैश्च शतपत्रैश्च शुक्तुण्डैश्च निर्मलैः ॥ ९
वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगने समदृश्यत ।
सम्प्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाकरोत् ॥ १०
न प्राज्ञायत तेऽन्योऽन्यं तस्मिंस्तमसि संकुले ।
अलक्ष्यं विसृजन्तस्ते हेतिसंघातमुद्घतम् ॥ ११
पतितं सेनयोर्मध्ये निरीक्षन्ते परस्परम् ।
ततो ध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ १२
गजैस्तुरङ्गैः पादातैः पतद्विः पतितैरपि ।
आकाशसरसो भ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूः स्तृता ॥ १३
भग्रदन्ता भिन्नकुम्भाश्चिन्नदीर्घमहाकराः ।
गजाः शैलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिरस्त्रवाः ॥ १४
भग्रेषादण्डचक्राक्षा रथाश्च शकलीकृताः ।
पेतुः शकलतां यातास्तुरङ्गाश्च सहस्रशः ॥ १५
ततोऽसृग्धददुस्तारा पृथिवी समजायत ।
नद्यश्च रुधिरावर्ता हर्षदाः पिशिताशिनाम् ।
वेतालाक्रीडमभवत् तत्संकुलरणाजिरम् ॥ १६

हाथी पैदल सैनिकके साथ, कहीं एक रथी दूसरे रथीके साथ, एक हाथी दूसरे हाथीके साथ, एक हाथी बहुत-से घोड़ोंके साथ और अकेला पैदल सैनिक बहुत-से मतवाले हथियोंके साथ जूझने लगे ॥ १—६ ६ ॥

तदनन्तर आकाशमण्डलमें भाला, वज्र, गदा, ढेलवाँस, कुठर, शक्ति, पटा, त्रिशूल, मुद्गर, कुणप, गड, चक्र, शङ्ख, तोमर, चमकीले अङ्गुश, फलयुक्त बाण, बाण, पोला बाण, वत्सदन्त, अर्धचन्द्र, भाला, शतपत्र और निर्मल शुक्तुण्डोंके प्रहारसे अत्यन्त अद्भुत आकारवाली वृष्टि दीख पड़ी । उससे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गयीं और उसने सारे जगत्को अन्धकारमय बना दिया । उस घोर अन्धकारमें वे परस्पर एक-दूसरेको पहचानतक नहीं पाते थे; अतः वे बिना लक्ष्यके ही अपने भयंकर शस्त्रसमूहोंका प्रहार कर रहे थे । दोनों सेनाओंमें परस्पर कटकर धराशायी होते हुए वीरोंको देख रहे थे । उस समय कटकर गिरे हुए या गिरते हुए ध्वजों, भुजाओं, छत्रों, कुण्डलमण्डित मस्तकों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंसे युद्धभूमि इस प्रकार पट गयी थी, मानो आकाशरूपी सरोवरसे गिरे हुए कमल-पुष्पोंसे आच्छादित हो । जिनके दाँत टूट गये थे, कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे और लम्बे-लम्बे शुण्डदण्ड कटकर गिर गये थे ऐसे पर्वत-सदृश विशालकाय गजराज पृथ्वीपर पड़े हुए थे, जिनके शरीरसे खूनकी धाराएँ बह रही थीं । जिनके हरसे, पहिये और धुरे आदि विदीर्ण हो गये थे, ऐसे अनेकों रथ खण्ड-खण्ड होकर पड़े थे । हजारों घोड़े भी दुकड़े-दुकड़े हुए पड़े थे । इस प्रकार वहाँ रक्तसे भरे हुए बहुत-से गड्ढे बन गये थे, जिससे युद्धभूमिको पार करना कठिन हो गया था । खूनसे भरी हुई नदियाँ भँवर बनाती हुई बह रही थीं, जो मांसभोजियोंको हर्षोल्लसित कर रही थीं । इस प्रकार तरह-तरहकी लाशोंसे पटा हुआ वह युद्धस्थल वेतालोंका क्रीडास्थल बन गया था ॥ ७—१६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १४९ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें देवासुरयुद्ध नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४९ ॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

देवताओं और असुरोंकी सेनाओंमें अपनी-अपनी जोड़ीके साथ घमासान युद्ध, देवताओंके विकल होनेपर भगवान् विष्णुका युद्धभूमिमें आगमन और कालनेमिको परास्त कर उसे जीवित छोड़ देना

सूत उवाच

अथ ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्च्छितः।
 वर्वर्ष शरवर्षेण विशेषणाग्निवर्चसाम्॥ १
 स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः।
 कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुरानन्द्य भैरवम्॥ २
 शतैः पञ्चभिरत्युग्रैः शराणां यमर्दयत्।
 स विचिन्त्य यमो बाणान् ग्रसनस्यातिपौरुषम्॥
 बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमो ग्रसनमर्दयत्।
 कृतान्तशरवृष्टिं तां वियति प्रतिसर्पिणीम्॥ ४
 चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः।
 विफलां तां समालोक्य यमस्तां शरसंततिम्॥ ५
 स विचिन्त्य शरव्रातं ग्रसनस्य रथं प्रति।
 चिक्षेप मुद्रं धोरं तरसा तस्य चान्तकः॥ ६
 स तं मुद्ररमायान्तमुत्प्लुत्य गगनस्थितम्।
 जग्राह वामहस्तेन याम्य दानवनन्दनः॥ ७
 तमेव मुद्रं गृह्ण यमस्य महिषं रुषा।
 पातयामास वेगेन स पपात महीतले॥ ८
 उत्प्लुत्याथ यमस्तस्मान्महिषान्निष्ठतिष्ठतः।
 प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम्॥ ९
 स तु प्रासप्रहारेण मूर्च्छितो न्यपतद भुवि।
 ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमाः॥ १०
 यमस्य भिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि।
 यमस्तेन प्रहारेण सुस्त्राव रुधिरं मुखात्॥ ११
 कृतान्तमर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः।
 वृतो यक्षायुतशतैर्जम्भं प्रत्युद्यौ रुषा॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण ! तदनन्तर (रणभूमिमें असुर-सेनानी) ग्रसनको सम्मुख उपस्थित देखकर यमराज क्रोधसे क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने ग्रसनके ऊपर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। अत्यन्त पराक्रमी ग्रसन भी बहुसंख्यक बाणोंके प्रहारसे घायल होकर भयंकर धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अत्यन्त भीषण पाँच सौ बाणोंसे यमराजको बींध डाला। उन बाणोंके आधातसे ग्रसनके प्रबल पुरुषार्थका भलीभाँति विचार कर यमराज पुनः घोर बाणवृष्टिद्वारा ग्रसनको पीड़ा पहुँचाने लगे। तब दानवेश्वर ग्रसनने गगनमण्डलमें फैलती हुई यमराजकी उस बाणवृष्टिको अपने बाणोंकी वर्षासे छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार अपनी उस बाणवृष्टिको विफल हुई देखकर यमराज अपने बाणसमूहोंके विषयमें विचार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने उस ग्रसनके रथपर बड़े वेगसे अपना भयंकर मुद्रर फेंका। उस मुद्रको अपनी ओर आते देख दानवनन्दन ग्रसनने रथसे उछलकर ऊपर-ही-ऊपर यमराजके उस मुद्रको बायें हाथसे पकड़ लिया और उसी मुद्रको लेकर क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे यमराजके भैंसेपर दे मारा, जिसके आधातसे वह धराशायी हो गया। तब यमराज उस गिरते हुए भैंसेकी पीठसे उछलकर अलग हो गये। फिर तो उन्होंने भालेसे ग्रसनके मुखपर गहरी चोट पहुँचायी। तब भालेके प्रहारसे मूर्च्छित होकर ग्रसन भूतलपर गिर पड़ा। ग्रसनको धराशायी हुआ देखकर भयंकर पराक्रमी जम्भने भिन्दिपाल (ढेलवाँस)-से यमराजके हृदयपर प्रहार किया। उस प्रहारसे घायल होकर यमराज मुखसे खून उगलने लगे॥ १—११॥

इस प्रकार यमराजको घायल हुआ देखकर धनेश्वर कुबेरने हाथमें गदा लेकर दस लाख यक्षोंके साथ क्रोधपूर्वक जम्भपर धावा किया।

जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसंवृतः।
उवाच प्राज्ञो वाक्यं तु यथा स्निग्धेन भाषितम्॥ १३

ग्रसनो लब्धसंज्ञोऽथ यमस्य प्राहिणोद् गदाम्।
मणिहेमपरिष्कारां गुर्वीमरिविमर्दिनीम्॥ १४

तामप्रतक्या सम्प्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः।
गदायाः प्रतिधातार्थं जगद्वलनभैरवम्॥ १५

दण्डं मुमोच कोपेन ज्वालामालासमाकुलम्।
स गदां वियति प्राप्य ररासाम्बुधरो यथा॥ १६

संघट्मभवत् ताभ्यां शैलाभ्यामिव दुःसहम्।
ताभ्यां निष्पेषनिर्हादजडीकृतदिगन्तरम्॥ १७

जगद् व्याकुलतां यातं प्रलयागमशङ्ख्या।
क्षणात् प्रशान्तनिर्हादं ज्वलदुल्कासमाहितम्॥ १८

निष्पेषेण तयोर्भीममभूद् गमनगोचरम्।
निहत्याथ गदां दण्डस्ततो ग्रसनमूर्धनि॥ १९

हृत्वा श्रियमिवानर्थो दुर्वृत्तस्यापतद् दृढः।
स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरा दिशः॥ २०

पपात भूमौ निःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषितः।
ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत्॥ २१

ततो मुहूर्तमात्रेण ग्रसनः प्राप्य चेतनाम्।
अपश्यत् स्वां तनुं ध्वस्तां विलोलाभरणाम्बराम्॥ २२

स चापि चिन्तयामास कृते प्रतिकृतिक्रियाम्।
मद्विधे वस्तुनि पुंसि प्रभोः परिभवोदयाः॥ २३

मव्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि विनाशिता।
असम्भावित एवास्तु जनः स्वच्छन्दचेष्टितः॥ २४

तब क्रोधपूर्वक कुबेरको आक्रमण करते देखकर दानवोंकी सेनासे घिरा हुआ बुद्धिमान् जम्भ प्रेमीद्वारा कही गयी मधुर वाणीकी तरह वचन बोला। इतनेमें ही ग्रसनकी चेतना लौट आयी। फिर तो उसने यमराजपर ऐसी गदाका प्रहार किया, जो बड़ी वजनदार थी, जिसमें मणि और सुवर्ण जड़े हुए थे तथा जो शत्रुओंका विनाश करनेवाली थी। उस अप्रत्याशित गदाको अपनी ओर आती देखकर महिषवाहन यमराजने क्रोधपूर्वक उस गदाका प्रतिरोध करनेके लिये अपने उस दण्डको छोड़ दिया, जो संसारका विनाश करनेमें समर्थ और अत्यन्त भयंकर था तथा जिससे अग्निके समान लपटें निकल रही थीं। वह दण्ड आकाशमें गदासे टकराकर मेघकी-सी गर्जना करने लगा। फिर तो दण्ड और गदामें दो पर्वतोंकी भाँति दुःसह संघर्ष छिड़ गया। उन दोनों अस्त्रोंके टक्करसे उत्पन्न हुए शब्दसे सारी दिशाएँ जड़ हो गयीं और जगत् प्रलयके आगमनकी आशङ्कासे व्याकुल हो गया। क्षणमात्र पश्चात् शब्द शान्त हो गया और उन दोनोंके मध्य जलती हुई उल्काके समान प्रकाश होने लगा। उन दोनोंके संघर्षसे आकाशमण्डल अत्यन्त भयंकर दीख रहा था। तदनन्तर दण्डने गदाको तोड़-मरोड़कर ग्रसनके मस्तकपर ऐसा कठोर आघात किया, जैसे दुराचारीका अनिष्ट उसकी श्रीका नाश करके उसे समाप्त कर देता है। उस प्रहारसे व्याकुल हुए ग्रसनको सारी दिशाएँ अन्धकारमयी दिखायी देने लगीं अर्थात् उसकी आँखों-तले अँधेरा छा गया। वह चेतनारहित होकर भूतलपर गिर पड़ा और उसका शरीर पृथ्वीकी धूलसे धूसरित हो गया। तत्पश्चात् दोनों सेनाओंमें भयंकर हाहाकार मच गया॥ १२-२१॥

तदनन्तर दो घड़ीके पश्चात् जब ग्रसनकी चेतना बापस लौटी तब उसने देखा कि उसका शरीर ध्वस्त हो गया है और उसके आभूषण तथा वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं। फिर तो वह भी ऐसा करनेवालेसे बदला चुकानेका विचार करने लगा। वह मन-ही-मन सोचने लगा—मुझ—जैसे बली पुरुषके जीते-जी स्वामीके परिभवके लक्षण दिखायी पड़ रहे हैं। मेरे पराजित हो जानेपर मेरे आश्रित रहनेवाली सेनाएँ भी नष्ट हो जायेंगी। अयोग्य पुरुष ही स्वच्छन्दाचारी हो सकता है,

न तु व्यर्थशतोदघुष्टसम्भावितधनो नरः।
एवं संचिन्त्य वेगेन समुत्तस्थौ महाबलः॥ २५

मुद्रं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसंनिभः।
ग्रसनो घोरसंकल्पः संदष्टौष्ठपुटच्छदः॥ २६

रथेन त्वरितो गच्छन्नाससादान्तकं रणे।
समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्य मुद्ररम्॥ २७

वेगेन महता रौद्रं चिक्षेप यममूर्धनि।
विलोक्य मुद्रं दीसं यमः सम्भान्तलोचनः॥ २८

वञ्चयामास दुर्धर्षं मुद्रं स महाबलः।
तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम्॥ २९

याम्यानां किङ्कराणां तु सहस्रं निष्पिपेष ह।
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा घोरां किङ्करवाहिनीम्॥ ३०

अगमत् परमं क्षोभं नानाप्रहरणोद्यतः।
ग्रसनस्तु समालोक्य तां किङ्करमयीं चमूम्॥ ३१

मेने यमसहस्राणि सृष्टानि यममायया।
निग्राह्य ग्रसनः सेनां विसृजन्नस्त्रवृष्ट्यः॥ ३२

कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्च्छितः।
कांश्चिद्बिभेद शूलेन कांश्चिद्बाणैरजिह्वैः॥ ३३

कांश्चित्पिपेष गदया कांश्चिन्मुद्ररवृष्टिभिः।
केचित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितास्तदा॥ ३४

अपरे बहुशस्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले।
शिलाभिरपरे जघ्नुर्मैरन्यैर्महोच्छ्रयैः॥ ३५

किंतु जो पुरुष सैकड़ों बार योग्य घोषित किया जा चुका है, वह स्वच्छन्द नहीं हो सकता। (अर्थात् जिसकी जगत् में कोई प्रतिष्ठा नहीं है, वह स्वेच्छानुसार कार्य कर सकता है, किंतु जो सैकड़ों बार लब्धप्रतिष्ठ हो चुका है, उसे स्वामीके अधीन रहकर ही कार्य करना चाहिये।) ऐसा विचारकर महाबली ग्रसन वेगपूर्वक उठ खड़ा हुआ। उसका शरीर पर्वतके समान विशाल था। वह भयंकर विचारसे युक्त था और क्रोधवश दाँतोंसे होंठको दबाये हुए था। इस प्रकार वह शीघ्रतापूर्वक रथपर सवार हो हाथमें कालदण्डके सदृश मुद्रर लेकर रणभूमिमें यमराजके निकट आ पहुँचा। युद्धस्थलमें यमराजके सम्मुख आकर ग्रसनने उस भयानक मुद्ररको बड़े वेगसे घुमाकर यमराजके मस्तकपर फेंक दिया। उस प्रकाशमान मुद्ररको आते हुए देखकर यमराजके नेत्र चकमका गये। तत्पश्चात् महाबली यमराजने अपने स्थानसे हटकर उस दुर्धर्ष मुद्ररको लक्ष्यसे वञ्चित कर दिया। यमराजके दूर हट जानेपर उस मुद्ररने यमराजके हजारों पराक्रमी एवं भयंकर कर्म करनेवाले किंकरोंको पीस डाला। तत्पश्चात् उस भयंकर किंकर-सेनाको मारी गयी देखकर यमराजको परम क्षोभ हुआ। तब वे नाना प्रकारके अस्त्रोंका प्रहर करनेके लिये उद्यत हो गये॥ २२—३० १॥

उधर ग्रसनने उस सेनाको किंकरोंसे व्याप्त देखकर ऐसा समझा कि यमराजकी मायाद्वारा रचे गये ये हजारों यमराज ही हैं। फिर तो ग्रसन सेनाको रोककर उसपर अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगा। उस समय वह कल्पान्तके समय क्षुब्ध हुए भयंकर समुद्रकी भाँति क्रोधसे विहळ हो उठा था। उसने कुछ किंकरोंको त्रिशूलसे और कुछको सीधे जानेवाले बाणोंसे विदीर्ण कर दिया। कुछको गदाके प्रहारसे और कुछको मुद्रोंकी वर्षांसे पीस डाला। कुछ भयंकर भालोंके प्रहारसे घायल कर दिये गये। दूसरे बहुत-से उसकी बाहुओंपर लटके हुए थे। इधर किंकरोंमेंसे बहुत-से लोग शिलाओंद्वारा तथा अन्य कुछ लोग ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंद्वारा ग्रसनपर

तस्यापरे तु गात्रेषु दशनैरप्यदंशयन्।
अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किंकराः प्रहरन्ति च॥ ३६
अभिन्दुतस्तथा घोर्गेसनः क्रोधमूर्च्छितः।
उत्सृज्य गात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष सहस्रशः॥ ३७
कांश्चिदुत्थाय मुष्टीभिर्जघे किङ्करसंश्रयान्।
स तु किङ्करयुद्धेन ग्रसनः श्रममासवान्॥ ३८
तमालोक्य यमः श्रान्तं निहतां च स्ववाहिनीम्।
आजगाम समुद्घम्य दण्डं महिषवाहनः॥ ३९
ग्रसनस्तु समायान्तमाजघे गदयोरसि।
अचिन्तयित्वा तत्कर्म ग्रसनस्यान्तकोऽरिहा॥ ४०
जघे रथस्य मूर्धन्यान् व्याघ्रान् दण्डेन कोपनः।
स रथो दण्डमथितैर्व्याघ्रैरर्थैर्विकृष्टते॥ ४१
संशयः पुरुषस्येव चित्तं दैत्यस्य तद्रथम्।
समुत्सृज्य रथं दैत्यः पदातिर्धरणीं गतः॥ ४२
यमं भुजाभ्यामादाय योधयामास दानवः।
यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेष्ववर्तत॥ ४३
ग्रसनः कटिवस्त्रस्तु यमं गृह्य बलोद्धतः।
भ्रामयामास वेगेन प्रदीपमिव सम्भ्रमम्॥ ४४
यमोऽपि कण्ठेऽवष्ट्रभ्य दैत्यं बाहुयुगेन तु।
वेगेन भ्रामयामास समुत्कृष्य महीतलात्॥ ४५
ततो मुष्टिभिराजञ्चुर्दयन्तो परस्परम्।
दैत्येन्द्रस्यातिकायत्वात्तः श्रान्तभुजो यमः॥ ४६
स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत।
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमन्तकमोजसा॥ ४७

प्रहार कर रहे थे। कुछ उसके शरीराङ्गोंमें दाँतोंसे काट रहे थे। दूसरे किंकर उसकी पीठपर मुक्केसे प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार घोरकर्मा किंकरोंद्वारा पीछा किये जानेपर ग्रसन अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने अपने शरीरको भूतलपर गिराकर हजारों किंकरोंको उसके नीचे पीस डाला। फिर उठकर कुछ किंकरोंको मुक्केसे पीटकर मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार किंकरोंके साथ युद्ध करनेसे ग्रसन थकावटसे चूर हो गया था। तब ग्रसनको थका हुआ तथा अपनी सेनाको मारी गयी देखकर महिषवाहन यमराज हाथमें दण्ड लेकर आ पहुँचे। ग्रसनने सम्मुख आये हुए यमराजके वक्षःस्थलपर ग़दासे प्रहार किया। तब शत्रुसूदन यमराजने ग्रसनके उस प्रहारकी कुछ भी परवाह न कर उसके रथके अग्रभागमें जुते हुए बाधोंपर क्रोधपूर्वक दण्डसे प्रहार किया। उस दण्डप्रहारसे आधे बाधोंके मारे जानेपर वह रथ आधे बाधोंद्वारा ही खींचा जा रहा था॥ ३१—४१॥

उस समय दैत्यराज ग्रसनका वह रथ पुरुषके संशयग्रस्त चित्तकी भाँति अस्थिर हो गया था। अतः दैत्यराज ग्रसन रथको छोड़कर भूतलपर आ गया और पैदल ही आगे बढ़कर यमराजको दोनों भुजाओंसे पकड़कर युद्ध करने लगा। तब यमराज भी शस्त्रोंको छोड़कर बाहुयुद्धमें प्रवृत्त हो गये। बलाभिमानी ग्रसन यमराजके कमरबंदको पकड़कर उन्हें धूमते हुए दीपककी भाँति वेगपूर्वक धुमाने लगा। तब यमराज भी अपनी दोनों भुजाओंसे दैत्यके गलेको पकड़कर उसे वेगपूर्वक भूतलसे ऊपर खींचकर बड़ी देरतक धुमाते रहे। तत्पश्चात् वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पीड़ित करते हुए मुक्कोंसे प्रहार करने लगे। उस समय दैत्येन्द्र ग्रसनके विशालकाय होनेके कारण यमराजकी भुजाएँ शिथिल हो गयीं। तब वे उस दैत्यके कंधेपर अपना मुख रखकर विश्राम करनेकी इच्छा करने लगे। यमराजको इस प्रकार थका हुआ देखकर

निष्पिपेष महीपृष्ठे बहुशः पार्ष्णिपाणिभिः ।
 यावद्यमस्य वदनात् सुस्नाव रुधिरं बहु ॥ ४८
 निर्जीवितं यमं दृष्ट्वा ततः संत्यज्य दानवः ।
 जयं प्राप्योद्धतं दैत्यो नादं मुक्त्वा महास्वनः ॥ ४९
 स्वीयं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
 धनाधिपस्य जम्भेन सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ५०
 दिशोऽवरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यं चास्य निकृन्तितम् ।
 ततः क्रोधपरीतस्तु धनेशो जम्भदानवम् ॥ ५१
 हृदि विव्याध बाणानां सहस्रेणाग्निवर्चसाम् ।
 सारथिं च शतेनाजौ ध्वजं दशभिरेव च ॥ ५२
 हस्तौ च पञ्चसप्त्या मार्गणैर्दशभिर्धनुः ।
 मार्गणैर्बहिर्पत्राङ्गैस्तैलधौतैरजिह्वगैः ॥ ५३
 सिंहमेकेन तं तीक्ष्णैर्विव्याध दशभिः शरैः ।
 जम्भस्तु कर्म तददृष्ट्वा धनेशस्यातिदुष्करम् ॥ ५४
 हृदि धैर्यं समालम्ब्य किञ्चित्संत्रस्तमानसः ।
 जग्राह निशितान् बाणाञ्छत्रुमर्मविभेदिनः ॥ ५५
 आकर्णकृष्टचापस्तु जम्भः क्रोधपरिप्लुतः ।
 विव्याध धनदं तीक्ष्णौः शरैर्वक्षसि दानवः ॥ ५६
 सारथिं चास्य बाणेन दृढेनाभ्यहनद्धृदि ।
 चिच्छेद ज्यामथैकेन तैलधौतेन दानवः ॥ ५७
 ततस्तु निशितैर्बाणैर्दर्शरुणैर्मर्मभेदिभिः ।
 विव्याधोरसि वित्तेशं दशभिः कूरकर्मकृत् ॥ ५८
 मोहं परमतो गच्छन् दृढविद्धो हि वित्तपः ।
 स क्षणाद् धैर्यमालम्ब्य धनुराकृष्य भैरवम् ॥ ५९
 किरन् बाणसहस्राणि निशितानि धनाधिपः ।
 दिशः खं विदिशो भूमीरनीकान्यसुरस्य च ॥ ६०

ग्रसन उन्हें बलपूर्वक पृथ्वीपर पटककर बारम्बार रगड़े लगा और पैरोंकी ठोकरों और धूँसोंसे तबतक मारता रहा, जबतक यमराजके मुखसे बहुत-सा रक्त बहने लगा। तत्पश्चात् दानवराजने यमराजको प्राणहीन देखकर उन्हें छोड़ दिया। फिर गम्भीर गर्जना करनेवाला दैत्यराज ग्रसन विजयी होकर सिंहनाद करता हुआ अपनी सेनामें पहुँचकर पर्वतकी झाँति अटल होकर खड़ा हो गया ॥ ४२—४९ ९ ॥

उधर क्रोधसे भरे हुए जम्भने अपने मर्मभेदी बाणोंद्वारा कुबेरके सारे मार्ग (दिशाएँ) अवरुद्ध कर दिये और उनकी सेनाको काटना आरम्भ किया। यह देखकर धनेश क्रोधसे भर उठे। उन्होंने युद्धभूमिमें अग्निके समान वर्चस्वी एक हजार बाणोंसे दानवराज जम्भके हृदयको बींध दिया। फिर सौ बाणोंसे सारथिको, दस बाणोंसे ध्वजको, पचहत्तर बाणोंसे उसके दोनों हाथोंको, दस बाणोंसे धनुषको, एक बाणसे (उसके वाहन) सिंहको और दस तीखे बाणोंसे पुनः उस दानवराजको बींध दिया। इन सब बाणोंमें मोरके पंख लगे हुए थे तथा ये तेलमें डालकर साफ किये हुए और सीधे लक्ष्यवेध करनेवाले थे। धनेशके उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर जम्भका मन कुछ भयभीत हो उठा। फिर उसने हृदयमें धैर्य धारण कर शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले तीखे बाणोंको हाथमें लिया। उस समय दानवराज जम्भ क्रोधसे भरा हुआ था। उसने अपने धनुषको कानतक खींचकर तीखे बाणोंसे कुबेरके वक्षःस्थलको बींध दिया। फिर उनके सारथिके हृदयपर एक सुदृढ़ बाणसे आघात किया और तेलमें सफाये हुए एक बाणसे उनकी प्रत्यञ्चाको काट दिया। तदनन्तर क्रूरकर्मा दानवराज जम्भने तीखे एवं मर्मभेदी दस भयंकर बाणोंसे कुबेरके वक्षःस्थलको पुनः घायल कर दिया। तब बुरी तरह घायल हुए कुबेर मूर्च्छित हो गये। क्षणमात्रके बाद कुबेरकी मूर्च्छा भंग हुई, तब उन्होंने धैर्य धारणकर अपने भयंकर धनुषको वेगपूर्वक खींचकर हजारों तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए दिशाओं, विदिशाओं, आकाश, पृथ्वी और

पूरयामास वेगेन संछाद्य रविमण्डलम्।
 जम्भोऽपि परमेकैकं शरैर्बहुभिराहवे ॥ ६१
 चिच्छेद लघुसंधानो धनेशस्यातिपौरुषात्।
 ततो धनेशः संकुद्धो दानवेन्द्रस्य कर्मणा ॥ ६२
 व्यथमत् तस्य सैन्यानि नानासायकवृष्टिभिः।
 तद दृष्ट्वा दुष्कृतं कर्म धनाध्यक्षस्य दानवः ॥ ६३
 गृहीत्वा मुद्रां भीममायसं हेमभूषितम्।
 धनदानुचरान् यक्षान् निष्प्रियेष सहस्रशः ॥ ६४
 ते वध्यमाना दैत्येन मुञ्चन्तो भैरवान् रवान्।
 रथं धनपतेः सर्वे परिवार्य व्यवस्थिताः ॥ ६५
 दृष्ट्वा तानर्दितान् देवः शूलं जग्राह दारुणम्।
 तेन दैत्यसहस्राणि सूदयामास सत्वरः ॥ ६६
 क्षीयमाणेषु दैत्येषु दानवः क्रोधमूर्च्छितः।
 जग्राह परशुं दैत्यो मर्दनं दैत्यविद्विषाम् ॥ ६७
 स तेन शितधरेण धनभूर्महारथम्।
 चिच्छेद तिलशो दैत्यो ह्याख्युः स्निग्धमिवाम्बरम् ॥ ६८
 पदातिरथ वित्तेशो गदामादाय भैरवीम्।
 महाहवविमर्देषु दृप्तशत्रुविनाशिनीम् ॥ ६९
 अधृष्यां सर्वभूतानां बहुवर्षगणार्चिताम्।
 नानाचन्दनदिरधाङ्गां दिव्यपुष्पविवासिताम् ॥ ७०
 निर्मलायोमयीं गुर्वीममोघां हेमभूषणाम्।
 चिक्षेप मूर्धि संकुद्धो जम्भस्य तु धनाधिपः ॥ ७१
 आयान्तीं तां समालोक्य तडित्संधातमण्डिताम्।
 दैत्यो गदाभिघातार्थं शस्त्रवृष्टिं मुमोच ह ॥ ७२
 चक्राणि कुणपान् प्रासान् भुशुण्डीः पद्मिशानपि।
 हेमकेयूरनद्वाभ्यां बाहुभ्यां चण्डविक्रमः ॥ ७३

असुरकी सेनाओंको ढक दिया। यहाँतक कि उस बाणवर्षासे सूर्यमण्डल भी आच्छादित हो गया ॥ ५०—६० १ ॥
 तब शीत्रतापूर्वक बाण संधान करनेवाले जम्भने भी युद्धस्थलमें परम पुरुषार्थ प्रकट करके कुबेरके एक-एक बाणको बहुसंख्यक बाणोंसे काट गिराया। दानवेन्द्रके उस कर्मको देखकर धनेश अत्यन्त कुपित हो उठे, तब वे नाना प्रकारके बाणोंकी वृष्टि करके उसकी सेनाका विध्वंस करने लगे। कुबेरके दुष्कर कर्मको देखकर दानवराज जम्भने लौहनिर्मित एवं स्वर्णजटित भयंकर मुद्रको लेकर कुबेरके अनुचर हजारों यक्षोंको चकनाचूर कर दिया। दैत्यद्वारा मारे जाते हुए वे सभी यक्ष भयंकर चीत्कार करते हुए कुबेरके रथको घेरकर खड़े हो गये। उन यक्षोंको दुःखी देखकर कुबेरने अपना भीषण त्रिशूल हाथमें लिया और उससे शीत्र ही हजारों दैत्योंको मौतके हवाले कर दिया। इस प्रकार दैत्योंका विनाश होते देखकर दानवराज जम्भ क्रोधसे भर गया और उसने देवताओंका मर्दन करनेवाले तेज धारसे युक्त फरसेसे कुबेरके महान् रथको उसी प्रकार तिल-तिल करके काट डाला, जैसे चूहा रेशमी वस्त्रको कुतर डालता है। इससे कुबेर परम क्रुद्ध हो उठे, तब उन्होंने पैदल ही अपनी उस भयंकर गदाको, जो बड़े-बड़े युद्धोंमें गर्वाले शत्रुओंका विनाश करनेवाली, सभी प्राणियोंके लिये अधृष्य, बहुत वर्षोंसे पूजित, नाना प्रकारके चन्दनोंके अनुलेपसे युक्त, दिव्य पुष्पोंसे सुवासित, निर्मल लौहकी बनी हुई, वजनदार, अमोघ और स्वर्णभूषित थी, हाथमें लेकर जम्भके मस्तकको लक्ष्य बनाकर छोड़ दिया ॥ ६१—७१ ॥

विद्युत्समूहसे विभूषित-जैसी उस गदाको अपनी ओर आती देखकर दैत्यराज जम्भ उसको नष्ट करनेके लिये बाणोंकी वृष्टि करने लगा। यद्यपि प्रचण्ड पराक्रमी जम्भ स्वर्णनिर्मित बाजूबन्दोंद्वारा विभूषित भुजाओंसे चक्रों, कुणपों, भालों, भुशुण्डियों और पद्मिशोंका प्रहार

व्यर्थीकृत्य तु तान् सर्वानायुधान् दैत्यवक्षसि ।
प्रस्फुरन्ती पपातोग्रा महोल्केवाद्रिकन्दरे ॥ ७४

स तयाभिहतो गाढं पपात रथकूबरे ।
स्रोतोभिश्चास्य रुधिरं सुस्नाव गतचेतसः ॥ ७५
जम्भं तु निहतं मत्वा कुजम्भो भैरवस्वनः ।
धनाधिपस्य संकुद्धो वाक्येनातीव कोपितः ॥ ७६
चक्रे बाणमयं जालं दिक्षु यक्षाधिपस्य तु ।
चिच्छेद बाणजालं तदर्थचन्द्रैः शितैस्ततः ॥ ७७
मुमोच शरवृष्टिं तु तस्मै यक्षाधिपो बली ।
स तं दैत्यः शरव्रातं चिच्छेद निशितैः शैरैः ॥ ७८
व्यर्थीकृतां तु तां दृष्ट्वा शरवृष्टिं धनाधिपः ।
शक्तिं जग्राह दुर्धर्षा हेमघण्टाद्वहासिनीम् ॥ ७९
बाहुना रत्नकेयूरकान्तिसन्नाहनासिना ।
स तां निरूप्य वेगेन कुजम्भाय मुमोच ह ॥ ८०
सा कुजम्भस्य हृदयं दारयामास दारुणम् ।
वित्तेहा स्वल्पसत्त्वस्य पुरुषस्येव भाविता ॥ ८१
अथास्य हृदयं भित्त्वा जगाम धरणीतलम् ।
ततो मुहूर्तादस्वस्थो दानवो दारुणाकृतिः ॥ ८२
जग्राह पट्टिशं दैत्यः प्रांशुं शितशिलीमुखम् ।
स तेन पट्टिशेनाजौ धनदस्य स्तनान्तरम् ॥ ८३
वाक्येन तीक्ष्णरूपेण मर्मान्तरविसर्पिणा ।
निर्बिभेदाभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा ॥ ८४
तेन पट्टिशधातेन धनेशः परिमूर्च्छितः ।
निपपात रथोपस्थे जर्जरो धूर्वहो यथा ॥ ८५

तथागतं तु तं दृष्ट्वा धनेशं नरवाहनम् ।
खड्गास्त्रो निर्वृतिर्देवो निशाचरबलानुगः ॥ ८६

कर रहा था तथापि चमकती हुई वह भयंकर गदा उन सभी आयुधोंको विफल कर जम्भके वक्षःस्थलपर उसी प्रकार गिरी, मानो पर्वतकी कन्दरामें विशाल उल्का आ गिरी हो । उस गदाके आघातसे अत्यन्त धायल हुआ जम्भ रथके कूबरपर गिर पड़ा । उसके शरीरके छिद्रोंसे खूनकी धारा बहने लगी, जिससे वह चेतनारहित हो गया ॥ ७२—७५ ॥

जम्भको मरा हुआ समझकर भयंकर गर्जना करनेवाला क्रोधी कुजम्भ कुबेरके वाक्यसे अत्यन्त कुपित हो उठा । उसने यक्षराजके चारों ओर बाणोंका जाल बिछा दिया । तदनन्तर बलवान् यक्षराजने तीखे अर्धचन्द्र बाणोंके प्रहारसे उस बाणजालको छिन्न-भिन्न कर दिया और वे उस दैत्यपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे; परन्तु दैत्यराज कुजम्भने अपने तीखे बाणोंसे उस बाणवृष्टिको काट दिया । उस बाणवृष्टिको विफल हुई देखकर धनेशने अपनी उस दुर्धर्ष शक्तिको हाथमें उठाया, जिसमें स्वर्णनिर्मित घंटियोंके शब्द हो रहे थे । उन्होंने अपने रत्ननिर्मित बाजूबंदके कान्तिसमूहसे सुशोभित हाथसे उस शक्तिको आजमाकर वेगपूर्वक कुजम्भके ऊपर छोड़ दिया । उस शक्तिने कुजम्भके दारुण हृदयको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे निर्धन पुरुषकी अभिलिपित धनाशा नष्ट हो जाती है । इस प्रकार वह शक्ति उसके हृदयको विदीर्ण करके भूतलपर जा गिरी, जिससे भयंकर आकृतिवाला वह दानव दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा । (मूर्च्छा भङ्ग होनेपर) उस दैत्यने एक लम्बे एवं तेज मुखवाले पट्टिशको हाथमें लिया । उसने उस पट्टिशसे कुबेरके स्तनोंके मध्यभागको इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जैसे दुर्जन पुरुष अपने मर्मभेदी कठोर वाक्यसे सत्पुरुषके हृदयको विदीर्ण कर देता है । उस पट्टिशके आघातसे धनेश मूर्च्छित हो गये और रथके पिछले भागमें बूढ़े बैलकी तरह लुढ़क पड़े ॥ ७६—८५ ॥

उन नरवाहन कुबेरको मूर्च्छित हुआ देखकर निर्ऋतिदेवने हाथमें तलवार लेकर निशाचरोंकी सेनाके साथ वेगपूर्वक भयंकर पराक्रमी कुजम्भपर आक्रमण

अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमविक्रमम् ।
अथ दृष्ट्वा तु दुर्धर्षं कुजम्भो राक्षसेश्वरम् ॥ ८७
चोदयामास सैन्यानि राक्षसेन्द्रवधं प्रति ।
स दृष्ट्वा चोदितां सेनां भल्लनानास्त्रभीषणाम् ॥ ८८
रथादाप्लुत्य वेगेन भूषणद्युतिभास्वरः ।
खडगेन कमलानीव विकोशेनाम्बरत्विषा ॥ ८९
चिच्छेद रिपुवक्त्राणि विचित्राणि समंततः ।
तिर्यक्पृष्ठमधश्शोर्ध्वं दीर्घबाहुर्महासिना ॥ ९०
संदष्टौष्ठपुटाटोपभूकुटीविकटाननः ।
प्रचण्डकोपरक्ताक्षो न्यकृन्तद् दानवान् रणे ॥ ९१
ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वामनीकिनीम् ।
मुक्त्वा कुजम्भो धनदं राक्षसेन्द्रमभिद्रवत् ॥ ९२
लब्धसंज्ञोऽथ जम्भस्तु धनाध्यक्षपदानुगान् ।
जीवग्राहान् स जग्राह बध्वा पाशैः सहस्रशः ॥ ९३
मूर्तिमन्ति तु रत्नानि विविधानि च दानवाः ।
वाहनानि च दिव्यानि विमानानि सहस्रशः ॥ ९४
धनेशो लब्धसंज्ञोऽथ तामवस्थां विलोक्य तु ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णां च रोषात् ताम्रविलोचनः ॥ ९५
ध्यात्वास्त्रं गारुडं दिव्यं बाणं संधाय कार्मुके ।
मुमोच दानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम् ॥ ९६
प्रथमं कार्मुकात् तस्य निश्चेरुर्ध्मराजयः ।
अनन्तरं स्फुलिङ्गानां कोटयो दीसवर्चसाम् ॥ ९७
ततो ज्वालाकुलं व्योम चकारास्त्रं समन्ततः ।
ततः क्रमेण दुर्वारं नानास्त्रं तदाभवत् ॥ ९८
अमूर्तश्चाभवल्लोको ह्यन्धकारसमावृतः ।
ततोऽन्तरिक्षे शंसन्ति तेजस्ते तु परिष्कृतम् ॥ ९९

किया । तब दुर्धर्ष राक्षसेश्वर निर्वृतिको आक्रमण करते देख कुजम्भने उन राक्षसेन्द्रका वध करनेके लिये अपनी सेनाओंको ललकारा । भल्ल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेसे भयंकर रूपवाली उस सेनाको आगे बढ़ते देखकर आभूषणोंकी कान्तिसे उद्द्रसित होते हुए निर्वृतिदेव रथसे वेगपूर्वक कूद पड़े और नीली कान्तिवाले म्यानसे तलवार खींचकर उससे शत्रुओंके विचित्र आकारवाले मुखोंको कमल-पुष्पकी तरह काटने लगे । उस समय दाँतोंसे हॉठको चबाने एवं भौंहें चढ़ी होनेके कारण उनका मुख भयंकर दीख रहा था और प्रचण्ड क्रोधके कारण उनके नेत्र लाल हो गये थे । इस प्रकार लम्बी भुजाओंवाले निर्वृति रणभूमिमें आगे-पीछे, ऊपर-नीचे चारों ओर घूम-घूमकर उस विशाल तलवारसे दानवोंको टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे । इस प्रकार अपनी सेनाको समाप्तप्राय देखकर कुबेरको छोड़कर राक्षसेश्वर निर्वृतिपर धावा बोल दिया ॥ ८६—९२ ॥

इधर जब जम्भकी मूर्छा भंग हुई, तब उसने कुबेरके अनुचर हजारों यक्षोंको जीते-जी पकड़कर पाशोंसे बाँध लिया तथा दानवोंने उनके अनेकों प्रकारके मूर्तिमान् रलों, वाहनों और हजारों दिव्य विमानोंको अपने अधीन कर लिया । उधर जब कुबेरकी चेतना लौटी, तब उस दशाको देखकर क्रोधवश उनके नेत्र लाल हो गये और वे लम्बी एवं गरम साँस लेने लगे । तत्पश्चात् उन्होंने दिव्य गारुडास्त्रका ध्यान करके उस बाणका धनुषपर संधान किया और फिर उस शत्रुनाशक बाणको दानवोंकी सेनापर छोड़ दिया । पहले तो उनके धनुषसे धुएँकी पङ्कियाँ प्रकट हुईं । तदनन्तर उससे जलती हुई करोड़ों चिनगारियाँ निकलने लगीं । तत्पश्चात् उस अस्त्रने आकाशको चारों ओरसे लपटोंसे व्यास कर दिया । फिर वह नाना प्रकारके रूपोंमें फैलकर दुर्निवार हो गया । उस समय अन्धकारसे आच्छादित होनेके कारण सारा जगत् रूपरहित-सा दिखायी पड़ने लगा । तब आकाशमण्डलमें स्थित देवगण उस उत्कृष्ट तेजकी प्रशंसा करने लगे । यह

कुजम्भस्तसमालोच्य दानवोऽतिपराक्रमः ।
 अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनं नदन् ॥ १००
 अथाभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः ।
 बभूव सम्भ्रमाविष्टः पलायनपरायणः ॥ १०१
 ततः पलायतस्तस्य मुकुटं रत्नमण्डितम् ।
 पपात भूतले दीसं रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ १०२
 शूराणामधिजातानां भर्तर्युपसृते रणात् ।
 मर्तुं संग्रामशिरसि युक्तं तद्भूषणाग्रतः ॥ १०३
 इति व्यवस्थ्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ।
 युयुत्सवः स्थिता यक्षा मुकुटं परिवार्य तम् ॥ १०४
 अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः ।
 तानमर्षाच्च सम्प्रेक्ष्य दानवश्चण्डपौरुषः ॥ १०५
 भुशुण्डीं भैरवाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम् ।
 रक्षिणो मुकुटस्याथ निष्पिपेष निशाचरान् ॥ १०६
 तान् प्रमथ्याथ दनुजो मुकुटं तत् स्वके रथे ।
 समारोप्यामररिपुर्जित्वा धनदमाहवे ॥ १०७
 धनानि रत्नानि च मूर्तिमन्ति
 तथा निधानानि शरीरिणश्च ।
 आदाय सर्वाणि जगाम दैत्यो
 जम्भः स्वसैन्यं दनुजेन्द्रसिंहः
 धनाधिपो वै विनिकीर्णमूर्धजो
 जगाम दीनः सुरभर्तुरन्तिकम् ॥ १०८
 कुजम्भेनाथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः ।
 मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः ॥ १०९
 मोहयामास दैत्येन्द्रं जगत् कृत्वा तमोमयम् ।
 ततो विफलनेत्राणि दानवानां बलानि तु ॥ ११०
 न शेकुश्चलितुं तत्र पदादपि पदं तदा ।
 ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूर् ॥ १११

देखकर परम पराक्रमी दानवराज जम्भ सिंहनाद करता हुआ पैदल ही वेगपूर्वक कुबेरपर चढ़ दौड़ा ॥ ९३—१०० ॥
 इस प्रकार उस दैत्यको अपनी ओर आता हुआ देखकर कुबेर घबरा उठे और रणभूमिसे भाग खड़े हुए। भागते समय उनका रत्नजटित उद्दीप मुकुट इस प्रकार भूतलपर गिर पड़ा मानो आकाशसे सूर्यका बिम्ब गिर पड़ा हो। 'रणभूमिसे स्वामीके पलायन कर जानेपर उनके आभूषणोंके समक्ष उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीरोंका संग्रामके मुहानेपर मर जाना उचित है।' ऐसा निश्चयकर दुर्धर्ष यक्ष हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र धारणकर युद्धकी अभिलाषासे युक्त हो उस मुकुटको धेरकर खड़े हो गये; क्योंकि कुबेरके अनुचर वे वीरवर यक्ष स्वाभिमानके धनी थे। तदनन्तर उन्हें इस प्रकार युद्धोन्मुख देखकर प्रचण्ड पुरुषार्थी दानवराज जम्भ अमर्षसे भर गया। तब उसने पर्वतकी-सी गम्भीर एवं भयंकर आकारवाली भुशुण्ड लेकर उससे मुकुटके रक्षक निशाचरोंको पीस डाला। इस प्रकार उनका संहार कर उस देवशत्रु दानवने उस मुकुटको अपने रथपर रख लिया। तत्पश्चात् सिंहके समान पराक्रमी दैत्येन्द्र जम्भ युद्धभूमिमें कुबेरको जीतकर सैनिकोंके सभी आभूषणों, सम्पत्तियों तथा मूर्तिमान् रत्नोंको लेकर अपनी सेनाकी ओर चला गया। इधर कुबेर बाल बिखेरे हुए दीनभावसे देवराज इन्द्रके निकट चले गये ॥ १०१—१०८ ॥

उधर असुरनन्दन राक्षसेश्वर निर्वृति अपनी अमोघ राक्षसी मायाका आश्रय लेकर कुजम्भके साथ भिड़े हुए थे। उन्होंने जगत्को अन्धकारमय बनाकर दैत्यराज कुजम्भको मोहमें डाल दिया। उससे दानवोंकी सेनामें किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता था। वे एक पगसे दूसरे पगतक भी चलनेमें असमर्थ हो गये थे। तब उन्होंने अनेकों

जघान घननीहारतिमिरातुरवाहनाम्।
वध्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि॥ ११२

महिषो दानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताभोदसंनिभः।
अस्त्रं चकार सावित्रमुल्कासंघातमण्डितम्॥ ११३

विजृम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि।
प्रणाशमगमत् तीव्रं तमो घोरमनन्तरम्॥ ११४

ततोऽस्त्रं विस्फुलिङ्गाङ्कं तमः कृत्स्नं व्यनाशयत्।
प्रफुल्लारुणपद्मौधं शरदीवामलं सरः॥ ११५

ततस्तमसि संशान्ते दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः।
चक्षुः क्रूरेण मनसा देवानीकैः सहाद्भुतम्॥ ११६

शस्त्रैरमर्घान्निर्मुक्तैर्भुजङ्गास्त्रं विनोदितम्।

अथादाय धनुर्धोरमिषूश्वाशीविषोपमान्॥ ११७

कुजम्भोऽधावत क्षिप्रं रक्षोराजबलं प्रति।
राक्षसेन्द्रस्तमायान्तं विलोक्य सपदानुगः॥ ११८

विव्याध निशितैर्बणौः क्रूराशीविषभीषणौः।

तदादानं च संधानं न मोक्षश्वापि लक्ष्यते॥ ११९

चिच्छेदास्य शरव्रातान् स्वशैररतिलाघवात्।

ध्वजं परमतीक्षणेन चित्रकर्मामरद्विषः॥ १२०

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।

कुजम्भः कर्म तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य संयुगे॥ १२१

रोषरक्तेक्षणयुतो रथादाप्लुत्य दानवः।

खड्गं जग्राह वेगेन शरदम्बरनिर्मलम्॥ १२२

चर्म चोदयखण्डेन्दुदशकेन विभूषितम्।

अभ्यद्रवद् रणे दैत्यो रक्षोऽधिपतिमोजसा॥ १२३

तं रक्षोऽधिपतिः प्राप्तं मुद्ररेणाहनदधृदि।

स तु तेन प्रहारेण क्षीणः सम्भान्तमानसः॥ १२४

तस्थावचेष्टो दनुजो यथा धीरो धराधरः।

स मुहूर्तं समाश्वस्तो दानवेन्द्रोऽतिदुर्जयः॥ १२५

अस्त्रोंकी वर्षा करके घने कुहासेके अन्धकारसे व्याकुल हुए वाहनोंवाली दानवोंकी उस विशाल सेनाका संहार कर दिया। इस प्रकार दैत्योंके मारे जाने एवं कुजम्भके किंकर्तव्यविमूढ हो जानेपर प्रलयकालीन मेघके समान शरीरवाले दानवेन्द्र महिषने उल्कासमूहसे सुशोभित सावित्र नामक अस्त्रको प्रकट किया। उस प्रतापशाली सावित्र नामक परमास्त्रके प्रकट होते ही सारा निविड़ अन्धकार नष्ट हो गया। तत्पश्चात् उस अस्त्रसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिन्होंने सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर दिया। उस समय सारा जगत् शरद-ऋतुमें खिले हुए लाल कमलसमूहोंसे व्याप्त निर्मल सरोवरकी भाँति शोभा पाने लगा। इस प्रकार अन्धकारके नष्ट हो जानेपर जब दैत्योंको पुनः नेत्रज्योति प्राप्त हो गयी, तब वे क्रूर मनसे देवसेनाओंके साथ अद्भुत संग्राम करने लगे। क्रोधसे भेर हुए दैत्य शस्त्रोंका प्रहार तो कर ही रहे थे, साथ ही उन्होंने भुजंगास्त्रका भी प्रयोग किया॥१०९—११६॥

तदनन्तर कुजम्भने अपना भयंकर धनुष और सर्प-विषके समान विषेले बाणोंको लेकर शीघ्र ही राक्षसराजकी सेनापर धावा किया। तब अनुचरोंसहित राक्षसेन्द्र निर्ऋतिने उस दैत्यको आक्रमण करते देखकर उसे विषेले सर्पोंके समान भीषण एवं तीखे बाणोंसे बोंध दिया। उस समय वे इतनी फुर्तीसे बाण चला रहे थे कि बाणका लेना, संधान करना और छोड़ना दीख ही नहीं पड़ता था। विचित्र कर्म करनेवाले राक्षसेश्वरने बड़ी फुर्तीसे अपने बाणोंद्वारा उस देवद्रोही दैत्यके बाणसमूहोंको काट दिया और एक अत्यन्त तेज बाणसे उसके ध्वजको भी काट गिराया। साथ ही एक भाला मारकर उसके सारथिको भी रथपर बैठनेके स्थानसे नीचे गिरा दिया। युद्धस्थलमें राक्षसेश्वरके उस कर्मको देखकर कुजम्भके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, तब उस दानवने वेगपूर्वक रथसे कूदकर शरत्कालीन आकाशकी भाँति निर्मल तलवार और उदयकालीन चन्द्रमाके समान दस चिह्नोंसे सुशोभित ढाल हाथमें उठा लिया। फिर तो वह दैत्य रणभूमिमें बड़े पराक्रमसे राक्षसेश्वरकी ओर झपटा। उसे निकट आया हुआ देखकर राक्षसेश्वरने उसके हृदयपर मुद्रसे प्रहार किया। उस प्रहारसे कुजम्भ क्षतिग्रस्त होकर विक्षुव्य हो उठा। उस समय वह धैर्यशाली दानव निश्चेष्ट होकर पर्वतकी तरह खड़ा रह गया। दो घड़ीके बाद आश्वस्त

रथमारुह्य जंग्राह रक्षो वामकरेण तु।
केशेषु निर्झृतिं दैत्यो जानुनाक्रम्य धिष्ठितम्॥ १२६

ततः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदर्मर्षणः।
तस्मिस्तदन्तरे देवो वरुणोऽपाम्पतिर्द्रुतम्॥ १२७

पाशेन दानवेन्द्रस्य बबन्ध च भुजद्वयम्।
ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम्॥ १२८

ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य पाशधृक्।
स तु तेन प्रहारेण स्वोतोभिः क्षतजं वमन्॥ १२९

दधार रूपं मेघस्य विद्युन्मालालतावृतम्।
तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः॥ १३०

व्यावृत्तवदनेऽगाधे ग्रस्तुमैच्छत् सुरावुभौ।
निर्झृतिं वरुणं चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः॥ १३१

तावभिप्रायमालक्ष्य तस्य दैत्यस्य दूषितम्।
त्यक्त्वा रथपथं भीतौ महिषस्यातिरंहसा॥ १३२

भृशं द्रुतौ जवाद्विभ्यामुभाभ्यां भयविहूलौ।
जगाम निर्झृतिः क्षिप्रं शरणं पाकशासनम्॥ १३३

कुद्धस्तु महिषो दैत्यो वरुणं समभिद्रुतः।
तमन्तकमुखासक्तमालोक्य हिमवद्द्युतिः॥ १३४

चक्रे सोमास्त्रनिःसृष्टं हिमसंघातकण्टकम्।
वायव्यं चास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रे द्वितीयकम्॥ १३५

वायुना तेन चन्द्रेण संशुष्केण हिमेन च।
व्यथिता दानवाः सर्वे शीतोच्छिन्ना विपौरुषाः॥ १३६

न शेकुश्चलितुं पदभ्यां नास्त्राण्यादातुमेव च।
महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रचोदितैः॥ १३७

गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समंततः।
महिषो निष्प्रयत्नस्तु शीतेनाकम्पिताननः॥ १३८

कक्षावालम्ब्य पाणिभ्यामुपविष्टो हृथोमुखः।
सर्वे ते निष्प्रतीकारा दैत्याश्चन्द्रमसा जिताः॥ १३९

होनेपर अत्यन्त दुर्जय दानवेश्वरने रथपर आरूढ़ हो बाये हाथसे राक्षसेश्वरको पकड़ लिया। तब क्रोधसे भरा हुआ दैत्य कुजम्भ निर्झृतिके बालोंको पकड़कर और घुटनोंसे दबाकर खड़ा हो गया तथा तलवारसे उनका सिर काट लेनेके लिये उद्यत हो गया। इसी बीच जलेश वरुणदेवने शीघ्र ही अपने पाशसे दानवेन्द्रकी दोनों भुजाओंको बाँध दिया। इस प्रकार दोनों भुजाओंके बाँध जानेपर दैत्यका पुरुषार्थ विफल कर दिया गया॥ १२७—१२८॥

तदनन्तर पाशधारी वरुणने दयाको तिलाङ्गलि देकर उस दैत्यपर गदासे प्रहार किया। उस गदाधातसे घायल होकर कुजम्भ (मुख, नाक, कान आदि) छिद्रोंसे रक्त वमन करने लगा। उस समय उसका रूप ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो विद्युत्समूहोंसे आच्छादित मेघ हो। कुजम्भको ऐसी दशामें पड़ा देखकर तीक्ष्ण दाढ़ोंसे युक्त एवं विकराल मुखवाला महिषासुर अपने गहरे मुखको फैलाकर वरुण और निर्झृति—इन दोनों देवताओंको निगल जानेका प्रयास करने लगा। तब वे दोनों देव उस दैत्यके क्रूर अभिप्रायको समझकर भयभीत हो गये और बड़ी शीघ्रतासे महिषासुरके रथ-मार्गको छोड़कर हट गये। फिर भयसे व्याकुल होकर दोनों बड़े वेगसे दो भिन्न दिशाओंकी ओर भाग चले। उनमें निर्झृतिने तो तुरंत ही भागकर इन्द्रकी शरण ग्रहण की। उधर कुपित महिषासुरने वरुणका पीछा किया। इस प्रकार वरुणको मौतके मुखमें पड़ा हुआ देखकर शीतरश्म चन्द्रमाने अपने सोमास्त्रको प्रकट किया, जो हिमसमूहसे व्यास होनेके कारण अत्यन्त दुःसह था। उसी समय चन्द्रमाने अपने दूसरे अनुपम अख वायव्यास्त्रका भी प्रादुर्भाव किया। चन्द्रमाद्वारा छोड़े गये उस वायव्यास्त्र एवं सूखे हिमास्त्रसे सभी दानव व्यथित हो उठे। वे शीतसे जर्जर हो गये और उनका पुरुषार्थ जाता रहा। चन्द्रमाद्वारा चलाये गये अस्त्रोंसे महान् हिमराशिके गिरनेसे समस्त दानव न तो एक पग चल सकते थे और न अख ही उठानेमें समर्थ थे॥ १२९—१३७॥

इस प्रकार चारों ओर असुर-सैनिकोंके शरीर शीतसे ठिर गये। शीतसे काँपते हुए मुखवाला महिष भी प्रयत्नहीन हो गया। वह अपने दोनों हाथोंसे दोनों काँखोंको दबाकर नीचे मुख किये हुए बैठ गया। इस प्रकार चन्द्रमासे पराजित हुए वे सभी दैत्य बदला चुकानेमें असमर्थ हो गये।

रणोच्छं दूरतस्यक्त्वा तस्थुस्ते जीवितार्थिनः ।
 तत्राब्रवीत् कालनेमिदैत्यान् कोपेन दीपितः ॥ १४०
 भो भोः शृङ्गारिणः शूराः सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः ।
 एकैकोऽपि जगत्सर्वं शक्तस्तूलयितुं भुजैः ॥ १४१
 एकैकोऽपि क्षमो ग्रस्तुं जगत्सर्वं चराचरम् ।
 एकैकस्यापि पर्यासा न सर्वेऽपि दिवौकसः ॥ १४२
 कलां पूरयितुं यत्नात् षोडशीमतिविक्रमाः ।
 किं प्रयाताश्च तिष्ठधं समरेऽमरनिर्जिताः ॥ १४३
 न युक्तमेतच्छूराणां विशेषाद् दैत्यजन्मनाम् ।
 राजा चान्तरितोऽस्माकं तारको लोकमारकः ॥ १४४
 विरतानां रणादस्मात् कुद्धः प्राणान् हरिष्वति ।
 शीतेन नष्टश्रुतयो भ्रष्टवाक्पाटवास्तथा ॥ १४५
 मूकास्तदाभवन् दैत्या रणद्वशनपद्त्क्यः ।
 तान् दृष्ट्वा नष्टचेतस्कान् दैत्याज्ञीतेन सादितान् ॥ १४६
 मत्वा कालक्षमं कार्यं कालनेमिर्महासुरः ।
 आश्रित्य दानवीं मायां वितत्य स्वं महावपुः ॥ १४७
 पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च ।
 निर्ममे दानवेन्द्रेशः शरीरे भास्करायुतम् ॥ १४८
 दिशश्च मायया चण्डैः पूरयामास पावकैः ।
 ततो ज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत् क्षणात् ॥ १४९
 तेन ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमच्छमम् ।
 ततः क्रमेण विभ्रष्टशीतदुर्दिनमाबभौ ॥ १५०
 तद् बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः ।
 तं दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसंज्ञं दिवाकरः ।
 उवाचारुणमुद्भान्तः कोपाल्लोकैकलोचनः ॥ १५१

दिवाकर उवाच

नयारुण रथं शीघ्रं कालनेमिरथो यतः ।
 विमर्दस्तत्र विषमो भविता शूरसंक्षयः ॥ १५२
 जित एष शशाङ्कोऽत्र तद्वलं बलमाश्रितम् ।
 इत्युक्तश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः ॥ १५३

तब वे युद्धकी अभिलाषाको दूर छोड़कर जीवनकी रक्षाके लिये खड़े रहे। इसी बीच क्रोधसे उद्दीप हुए कालनेमिने दैत्योंको ललकारते हुए कहा—‘भो भो शृङ्गारसे सुसज्जित शूरवीरो! तुम सभी शस्त्रास्त्रके पारगामी विद्वान् हो। तुमलोगोंमेंसे एक-एक भी अपनी भुजाओंसे सारे जगत्को तौल सकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्को निगल जानेमें समर्थ है। सब-के-सब प्रबल पराक्रमी देवता एक साथ मिलकर भी यत्पूर्वक तुमलोगोंमेंसे किसी एककी सोलहवीं कलाकी समता नहीं कर सकते। फिर भी तुमलोग समरभूमिमें देवताओंसे पराजित होकर क्यों भागे जा रहे हो? ठहरो! ऐसा करना शूरवीरोंके लिये, विशेषतया दैत्यवंशियोंके लिये उचित नहीं है। सारे संसारका संहार करनेमें समर्थ हमलोगोंका राजा तारकासुर यहाँ उपस्थित नहीं है। वह कुद्ध होकर इस युद्धसे भागे हुए लोगोंके प्राणोंका हरण कर लेगा’॥ १३८—१४४ ३॥

उस समय शीतके प्रभावसे उन दैत्योंकी श्रवणशक्ति और वाक्-चातुरी नष्ट हो गयी थी, वे मूक हो गये थे तथा उनके दाँत कटकटा रहे थे। महासुर कालनेमिने उन दैत्योंको इस प्रकार शीतद्वारा व्यथित और चेतनारहित देखकर इस कार्यको कालद्वारा प्रेरित माना। फिर तो उसने आसुरी मायाका आश्रय लेकर अपने विशाल शरीरका विस्तार किया और उससे आकाशमण्डल, दिशाओं और विदिशाओंको व्याप कर लिया। फिर उस दानवेन्द्रने अपने शरीरमें दस हजार सूर्योंका निर्माण किया। उसने मायाके बलसे दसों दिशाओंको प्रचण्ड अग्निसे पूर्ण कर दिया, जिससे क्षणमात्रमें सारी त्रिलोकी अग्निकी लपटोंसे व्याप हो गयी। उस ज्वालासमूहसे चन्द्रमा शान्त हो गये। तदनन्तर कालनेमिकी मायासे दानवेन्द्रोंकी वह सेना क्रमशः शीतरूपी दुर्दिनके नष्ट हो जानेपर शोभा पाने लगी। इस प्रकार दानवोंकी सेनाको चेतनायुक्त देखकर जगत्के एकमात्र नेत्रस्वरूप सूर्य क्रोधसे तिलमिला उठे, तब उन्होंने अरुणसे कहा॥ १४५—१५१॥

सूर्य बोले—अरुण! मेरे रथको शीघ्र वहाँ ले चलो जहाँ कालनेमिका रथ खड़ा है। वहाँ (मेरा उसके साथ) शूरवीरोंका विनाश करनेवाला भीषण संग्राम होगा। जिनके बलपर हमलोग निर्भर थे, वे चन्द्रदेव तो इस युद्धमें परास्त हो गये। इस प्रकार कहे जानेपर गरुडके अग्रज

प्रयत्नविधृतैरश्वैः सितचामरमालिभिः ।
 जगदीपोऽथ भगवान् जग्राह विततं धनुः ॥ १५४
 शरौ च द्वौ महाभागो दिव्यावाशीविषद्युती ।
 संचारास्त्रेण संधाय बाणमेकं ससर्ज सः ॥ १५५
 द्वितीयमिन्द्रजालेन योजितं प्रमुमोच ह ।
 संचारास्त्रेण रूपाणां क्षणाच्चक्रे विपर्ययम् ॥ १५६
 देवानां दानवं रूपं दानवानां च दैविकम् ।
 मत्वासुरान् स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात् ॥ १५७
 कालनेमी रुषाविष्टः कृतान्त इव संक्षये ।
 कांश्चित् खड्गेन तीक्ष्णोन कांश्चिन्नाचवृष्टिभिः ॥ १५८
 कांश्चिद्दाभिर्घोराभिः कांश्चिद् घोरैः परश्वधैः ॥ १५९
 शिरांसि केषांचिदपातयच्च
 भुजान् रथान् सारथींश्चोग्रवेगः ।
 कांश्चित्पिपेषाथ रथस्य वेगात्
 कांश्चित् क्रुधा चोद्धतमुष्टिपातैः ॥ १६०
 रणे विनिहतान् दृष्ट्वा नेमिः स्वान् दानवाधिपः ।
 रूपं स्वं तु प्रपद्यन्त ह्यसुराः सुरधर्षिताः ॥ १६१
 कालनेमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान् ।
 नेमिदैत्यस्तु तान् दृष्ट्वा कालनेमिमुवाच ह ॥ १६२
 अहं नेमिः सुरो नैव कालनेमे विदस्व माम् ।
 भवता मोहितेनाजौ निहता भूरिविक्रमाः ॥ १६३
 दैत्यानां दशलक्षणि दुर्जयानां सुरैरिह ।
 सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्मस्त्रं त्वरान्वितः ॥ १६४
 स तेन बोधितो दैत्यः सम्भ्रमाकुलचेतनः ।
 योजयामास बाणं हि ब्रह्मास्त्रविहितेन तु ॥ १६५
 मुमोच चापि दैत्येन्द्रः स स्वयं सुरकण्टकः ।
 ततोऽस्त्रतेजसा व्यासं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १६६
 देवानां चाभवत् सैन्यं सर्वमेव भयान्वितम् ।
 संचारास्त्रं च संशान्तं स्वयमायोधने बभौ ॥ १६७
 तस्मिन् प्रतिहते ह्यस्त्रे भ्रष्टतेजा दिवाकरः ।
 महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रे स्वां कोटिशस्तनुम् ॥ १६८

अरुणने श्वेत कलंगियोंसे विभूषित एवं प्रयत्नपूर्वक वशमें किये गये अश्वोंसे जुते हुए रथको आगे बढ़ाया । तत्पश्चात् जगत्को उद्धासित करनेवाले महाभाग भगवान् सूर्यने अपना विशाल धनुष तथा सर्पकी-सी कान्तिवाले दो दिव्य बाणोंको हाथमें लिया । उनमेंसे एक बाणको संचारास्त्रसे संयुक्त करके चलाया तथा दूसरेको इन्द्रजालसे युक्त करके छोड़ दिया । संचारास्त्रके प्रयोगसे क्षणमात्रमें ही लोगोंके रूपोंका परिवर्तन हो गया । देवता दानवोंके और दानव देवताओंके रूपमें बदल गये । फिर तो दानव देवताओंको आत्मीय मानकर दैत्योंपर ही फुर्तीसे प्रहार करने लगे । प्रलयकालमें कृतान्तके समान क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि किन्हींको तीखी तलवारसे, किन्हींको बाणोंकी वृष्टिसे, किन्हींको भयंकर गदाओंसे और किन्हींको भीषण कुठारोंसे मार गिराया तथा किन्हींके मस्तकों, भुजाओं और सारथिसहित रथोंको धराशायी कर दिया । उस प्रचण्ड वेगशाली दैत्यने किन्हींको रथके वेगपूर्वक धक्केसे पीस दिया तथा किन्हींको क्रोधपूर्वक कठोर मुक्केके प्रहारसे यमलोकका पथिक बना दिया ॥ १५२—१६० ॥
 उस समय देवताओंसे पराजित हुए बहुत-से दैत्योंको अपने रूपकी प्राप्ति हो चुकी थी, परंतु क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि उनके रूपको नहीं जानता था । इस प्रकार रणभूमिमें अपने पक्षके उन दैत्योंको मारा गया देखकर दानवराज नेमि दैत्यने कालनेमिसे कहा—‘कालनेमि! मैं नेमि नामक असुर हूँ, देवता नहीं हूँ । तुम मुझे पहचानो । मायासे मोहित होनेके कारण तुमने युद्धस्थलमें बहुत-से प्रचण्ड पराक्रमी दैत्योंका सफाया कर दिया है । देवताओंने इस युद्धमें दस लाख दुर्जय दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया है । इसलिये अब तुम शीघ्रतापूर्वक सभी अस्त्रोंके निवारण करनेवाले ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करो ।’ इस प्रकार नेमिद्वारा समझाये जानेपर दैत्यराज कालनेमिका चित्त सम्भ्रमके कारण व्याकुल हो गया, तब उसने बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर संधान किया तथा उस सुरकण्टक दैत्येन्द्रने स्वयं उसे छोड़ भी दिया । फिर तो उस अस्त्रके तेजसे चराचरसहित त्रिलोकी व्यास हो गयी । देवताओंकी सारी सेना भयभीत हो गयी तथा युद्धभूमिमें संचारास्त्र स्वयं शान्त हो गया । उस अस्त्रके विफल हो जानेपर सूर्यका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने महेन्द्रजालका आश्रय लेकर अपने शरीरको करोड़ों रूपोंमें प्रकट किया ॥ १६१—१६८ ॥

विस्फुर्जत्करसम्पातसमाक्रान्तजगत्वयम् ।
 तताप दानवानीकं गतमजौघशोणितम्॥ १६९

ततश्चावर्षदनलं समन्तादतिसंहतम्।
 चक्षुष्णि दानवेन्द्राणां चकारान्थानि च प्रभुः॥ १७०

गजानामगलम्नेदः पेतुश्चाप्यरवा भुवि ।
 तुरगा निःश्वसन्तश्च घर्मार्ता रथिनोऽपि च॥ १७१

इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृष्णातुरा: ।
 प्रच्छायविटपांश्चैव गिरीणां गह्वराणि च॥ १७२

दावाग्निः प्रज्वलंश्चैव घोरार्चिर्दग्धपादपः ।
 तोयार्थिनः पुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालिनम्॥ १७३

पुरःस्थितमपि प्रासं न शेकुरवर्मदिता: ।
 अप्राप्य सलिलं भूमौ व्यात्तास्या गतचेतसः॥ १७४

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा भुवि ।
 रथा गजाश्च पतितास्तुरगाश्च समापिताः॥ १७५

स्थिता वर्मन्तो धावन्तो गलद्रक्तवसासृजः ।
 दानवानां सहस्राणि व्यदृश्यन्त मृतानि तु॥ १७६

संक्षये दानवेन्द्राणां तस्मिन् महति वर्तिते ।
 प्रकोपोद्भूतताप्राक्षः कालनेमी रुषातुरः॥ १७७

अभवत् कल्पमेघाभः स्फुरद्भूरिशतहृदः ।
 गम्भीरास्फोटनिर्हादजगद्वदयघट्कः॥ १७८

प्रच्छाद्य गगनाभोगं रविमायां व्यनाशयत् ।
 शीतं वर्वर्ष सलिलं दानवेन्द्रबलं प्रति॥ १७९

दैत्यास्तां वृष्टिमासाद्य समाश्वस्तास्ततः क्रमात् ।
 बीजाङ्कुरा इवाम्लानाः प्राप्य वृष्टिं धरातले॥ १८०

ततः स मेघरूपी तु कालनेमिर्महासुरः ।
 शस्त्रवृष्टिं वर्वर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयः॥ १८१

तया वृष्ट्या बाध्यमाना दैत्येन्द्राणां महौजसाम् ।
 गतिं कांचन पश्यन्तो गावः शीतार्दिता इव॥ १८२

उन रूपोंसे निकलती हुई किरणोंके गिरनेसे तीनों लोक आक्रान्त हो गये। उससे मज्जा और रक्तसे रहित दानवोंकी सेना संतप्त हो उठी। तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली सूर्यदेवने चारों ओर अग्निकी अत्यन्त घोर वृष्टि की और दानवेन्द्रोंके नेत्रोंको अंधा कर दिया। हाथियोंकी मज्जाएँ गल गयीं और वे चुपचाप धराशायी हो गये। धूपसे पीड़ित हुए घोड़े लम्बी साँस खींचने लगे। प्याससे व्याकुल हुए रथी भी इधर-उधर पानीकी खोज करते हुए छायादार वृक्षों और पर्वतोंकी गुफाओंकी शरण लेने लगे। उस समय दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी, जिसकी भयंकर ज्वालाने वृक्षोंको जलाकर भस्म कर दिया। जलाभिलाषी लोग सामने ही हिलोरें लेते हुए जलसे भरे हुए जलाशयको देखकर सामने स्थित रहनेपर भी दावाग्निसे पीड़ित होनेके कारण प्राप्त नहीं कर सकते थे, अतः जल न पाकर मुख फैलाये हुए भूतलपर गिरकर चेतनारहित हो जाते थे। भूतलपर जगह-जगह मरे हुए दैत्येश्वर दिखायी पड़ते थे। कहीं-कहीं टूटे हुए रथ तथा मरे हुए हाथी और घोड़े पड़े हुए थे। कहीं कुछ लोग बैठकर रक्त उगल रहे थे और कुछ दौड़ लगा रहे थे, जिनके शरीरसे रक्त, मज्जा और चर्बी टपक रही थी। कहीं हजारोंकी संख्यामें मरे हुए दानव दीख रहे थे। दानवेन्द्रोंके उस महान् विनाशके उपस्थित होनेपर कालनेमि क्रोधसे विहळ हो उठा। प्रचण्ड क्रोधके कारण उसके नेत्र लाल हो गये। उसकी शरीरकान्ति प्रलयकालीन मेघके समान हो गयी। वह उमड़ते हुए सैकड़ों जलाशयोंके सदृश उछल पड़ा और गम्भीररूपसे ताल ठोंककर एवं सिंहनाद करके जगत्के प्राणियोंके हृदयोंको कम्पित कर दिया। फिर उसने आकाशमण्डलको आच्छादित कर सूर्यकी मायाको नष्ट कर दिया। तदनन्तर दानवेन्द्रकी सेनापर शीतल जलकी वर्षा होने लगी। दैत्यगण उस वृष्टिका अनुभव कर क्रमशः उसी प्रकार समाश्वस्त हो गये, जैसे भूतलपर सूखते हुए बीजाङ्कुर जलकी वृष्टिसे हरे-भरे हो जाते हैं॥ १६९—१८०॥

तत्पश्चात् दुर्जय एवं महान् असुर कालनेमि मेघरूप होकर देवताओंकी सेनाओंपर भीषण शस्त्रवृष्टि करने लगा। प्रचण्ड पराक्रमी दैत्येन्द्रोंकी उस बाणवर्षासे पीड़ित हुए देवगणोंको शीतसे पीड़ित गौओंकी तरह कोई आश्रयस्थान नहीं दीख रहा था।

परस्परं व्यलीयन्त पृष्ठेषु व्यस्त्रपाणयः ।
 स्वेषु बाधे व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु च ॥ १८३
 रथेषु त्वमरास्त्रस्तास्त्रत्र तत्र निलिल्ये ।
 अपरे कुञ्जितैर्गात्रैः स्वहस्तपिहिताननाः ॥ १८४
 इतश्चेतश्च सम्भ्रान्ता बध्मुर्वै दिशो दश ।
 एवंविधे तु संग्रामे तुमुले देवसंक्षये ॥ १८५
 दृश्यन्ते पतिता भूमौ शस्त्रभिन्नाङ्गसंधयः ।
 विभुजा भिन्नमूर्धनिस्तथा छिन्नोरुजानवः ॥ १८६
 विपर्यस्तरथासङ्गा निष्पिष्टध्वजपङ्क्तयः ।
 निर्भिन्नाङ्गस्तुरङ्गस्तु गजैश्चाचलसन्निभैः ॥ १८७
 स्तुतरक्तहृदैर्भूमिविकृताविकृता बभौ ।
 एवमाजौ बली दैत्यः कालनेमिर्महासुरः ॥ १८८
 जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम् ।
 यक्षाणां पञ्चलक्षणि रक्षसामयुतानि षट् ॥ १८९
 त्रीणि लक्षणि जघ्ने स किन्नराणां तरस्विनाम् ।
 जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्तलक्षणि निर्भयः ॥ १९०
 इतरेषामसंख्याताः सुरजातिनिकायिनाम् ।
 जघ्ने स कोटीः संकुञ्जश्चित्रास्त्रैरस्त्रकोविदः ॥ १९१
 एवं परिभवे भीमे तदा त्वमरसंक्षये ।
 संकुञ्जावश्चिनौ देवौ चित्रास्त्रकवचोज्ज्वलौ ॥ १९२
 जघ्नतुः समरे दैत्यं कृतान्तानलसंनिभम् ।
 तमासाद्य रणे घोरमेकैकः षष्ठिभिः शैरः ॥ १९३
 जघ्ने मर्मसु तीक्ष्णाग्नैरसुरं भीमदर्शनम् ।
 ताभ्यां बाणप्रहारैः स किंचिदायस्तचेतनः ॥ १९४
 जग्राह चक्रमष्टारं तैलधौतं रणान्तकम् ।
 तेन चक्रेण सोऽश्चिभ्यां चिच्छेद रथकूबरम् ॥ १९५
 जग्राहाथ धनुर्दैत्यः शरांश्चाशीविषोपमान् ।
 ववर्ष भिषजो मूर्धिन् संछाद्याकाशगोचरम् ॥ १९६

वे अस्त्र छोड़कर अपने-अपने हाथियों और घोड़ोंकी पीठोंपर चिपककर छिप गये। कहीं-कहीं भयभीत हुए देवगण रथोंमें लुक-छिप रहे थे। कुछ अन्य देवताओंके शरीर भयसे सिकुड़ गये थे, वे भयवश अपने हाथसे मुखको ढके हुए दसों दिशाओंमें इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे थे। इस प्रकार उस देव-विनाशक भीषण संग्राममें शस्त्रोंके आघातसे जिनकी अङ्गसंधियाँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं, भुजाएँ कट गयी थीं, मस्तक विदीर्ण हो गये थे तथा जंघा और जानु कट गये थे, ऐसे सैनिक, टूटे हुए हरसेवाले रथ और चूर-चूर हुए ध्वजाओंकी कतारें भूतलपर पड़ी हुई दीख रही थीं। जिनके शरीरोंसे बहते हुए रक्तसे गड्ढे भर जाते थे, ऐसे विदीर्ण अङ्गोंवाले घोड़ों और पर्वत-सदृश विशालकाय गजराजोंसे पटी हुई वह रणभूमि विकृत और बीभत्स दिखायी पड़ रही थी। इस प्रकार उस युद्धमें महाबली महासुर कालनेमि दैत्यने दो ही घड़ीमें एक लाख गन्धर्वों, पाँच लाख यक्षों, साठ हजार राक्षसों, तीन लाख वेगशाली किंनरों और सात लाख प्रधान-प्रधान पिशाचोंको कालके हवाले कर दिया। इनके अतिरिक्त उसने निर्भय होकर अन्य देवजातियोंके असंख्य वीरोंका संहार किया तथा अस्त्रविद्यानिपुण कालनेमिने विचित्र ढंगसे अस्त्रोंके प्रहारसे करोड़ों देवताओंको यमलोकका पथिक बना दिया ॥ १८१—१९१ ॥

उस समय इस प्रकारकी भयंकर पराजय और देवताओंका संहार उपस्थित होनेपर चित्र-विचित्र अस्त्र और उज्ज्वल कवचसे सुसज्जित हो दोनों देवता अश्विनीकुमार क्रोधमें भरे हुए समरभूमिमें आगे बढ़े और कृत्तान्त एवं अग्निके समान पराक्रमी उस दैत्यपर प्रहार करने लगे। उस भयावनी आकृतिवाले भयंकर असुरको रणभूमिमें समुख पाकर एक-एकने तीखे अग्रभागवाले साठ-साठ बाणोंसे उसके मर्मस्थानोंपर आघात किया। उन दोनों अश्विनीकुमारोंके बाण-प्रहारसे उसका चित्र कुछ दुःखी हो गया। फिर उसने आठ अरोंवाले चक्रको हाथमें लिया, जो तेलसे सफाया हुआ तथा रणमें अन्तकके समान विकराल था। उसने उस चक्रसे अश्विनीकुमारोंके रथके कूबरको काट गिराया। तत्पश्चात् उस दैत्यने धनुष और सर्पके समान जहरीले बाणोंको उठाया और आकाशमण्डलको बाणोंसे आच्छादित

तावप्पस्त्रैश्चिच्छिदतुः शितैस्तैर्देत्यसायकान्।
तच्च कर्म तयोर्दृष्ट्वा विस्मितः कोपमाविशत्॥ १९७
महता स तु कोपेन सर्वायोमयसादनम्।
जग्राह मुद्रां भीमं कालदण्डविभीषणम्॥ १९८
स ततो भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाश्विरथं प्रति।
तं तु मुद्ररमायान्तमालोक्याम्बरगोचरम्॥ १९९
त्यक्त्वा रथौ तु तौ वेगादाप्लुतौ तरसाश्चिनौ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्रोऽचलसंनिभः॥ २००
दारयामास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः।
तस्य कर्माश्चिनौ दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ॥ २०१
वज्रास्त्रं तु प्रकुर्वाते दानवेन्द्रनिवारणम्।
ततो वज्रमयं वर्षं प्रावर्तदतिदारुणम्॥ २०२
घरवज्रप्रहारैस्तु दैत्येन्द्रः स परिष्कृतः।
रथो ध्वजो धनुश्चक्रं कवचं चापि काञ्छनम्॥ २०३
क्षणेन तिलशो जातं सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
तद् दृष्ट्वा दुष्करं कर्म सोऽश्चिभ्यां भीमविक्रमः॥ २०४
नारायणास्त्रं बलवान् मुमोच रणमूर्धनि।
वज्रास्त्रं शमयामास दानवेन्द्रोऽस्त्रतेजसा॥ २०५
तस्मिन् प्रशान्ते वज्रास्त्रे कालनेमिरनन्तरम्।
जीवग्राहं ग्राहयितुमश्चिनौ तु प्रचक्रमे॥ २०६
तावश्चिनौ रणाद् भीतौ सहस्राक्षरथं प्रति।
प्रयातौ वेपमानौ तु पदा शस्त्रविवर्जितौ॥ २०७
तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः।
प्राप्येन्द्रस्य रथं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः॥ २०८
तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि वित्रेसुविह्वलानि तु।
दृष्ट्वा दैत्यस्य तत् क्रौर्यं सर्वभूतानि मेनिरे॥ २०९

करके उन दोनों देववैद्योंके मस्तकोंपर बाणवृष्टि प्रारम्भ की। तब उन दोनों देवोंने भी अपने तीखे अस्त्रोंसे उस दैत्यके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन दोनोंके उस कर्मको देखकर आश्र्यचकित हुआ कालनेमि कुद्ध हो उठा। फिर तो उसने बड़े क्रोधसे अपने भयंकर मुद्रारको, जिसका सर्वाङ्गभाग लोहेका बना हुआ था तथा कालदण्डके समान अत्यन्त भीषण था, हाथमें लिया और बड़े वेगसे घुमाकर उसे अश्विनीकुमारोंके रथपर फेंक दिया। आकाशमार्गसे उस मुद्रारको अपनी ओर आते देखकर दोनों अश्विनीकुमार अपने-अपने रथको छोड़कर बड़े वेगसे भूतलपर कूद पड़े। तब स्वर्णसमूहसे सुसज्जित एवं पर्वतके समान विशाल उस मुद्रारने उन दोनों रथोंको चूर-चूर करके पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया। उसके उस कर्मको देखकर विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले देववैद्य अश्विनीकुमारोंने दानवेन्द्रोंको विमुख करनेवाले वज्रास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो अत्यन्त भीषण वज्रमयी वृष्टि होने लगी ॥ १९२—२०२ ॥

उस समय दैत्येन्द्र कालनेमि भयंकर वज्र-प्रहारोंसे आच्छादित हो उठा। क्षणमात्रमें ही सभी सैनिकोंके देखते-देखते उसके रथ, ध्वज, धनुष, चक्र और स्वर्णनिर्मित कवचके तिलके समान टुकड़े-टुकड़े हो गये। अश्विनीकुमारोंद्वारा किये गये उस दुष्कर कर्मको देखकर भयंकर पराक्रमी एवं महाबली दानवेन्द्र कालनेमिने उस युद्धके मुहानेपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया और उस अस्त्रके तेजसे वज्रास्त्रको शान्त कर दिया। उस वज्रास्त्रके शान्त हो जानेके बाद कालनेमि दोनों अश्विनीकुमारोंको जीते-जी पकड़ लेनेका प्रयत्न करने लगा। तब वे दोनों अश्विनीकुमार भयभीत होकर पैदल ही रणभूमिसे भागकर इन्द्रके रथके निकट जा पहुँचे। उस समय उनके शरीर काँप रहे थे और उन्होंने अस्त्रका भी त्याग कर दिया था। उस समय महाबली एवं क्रूर स्वभाववाला दैत्यराज कालनेमि भी दैत्योंकी सेनाके साथ अश्विनीकुमारोंका पीछा करते हुए इन्द्रके रथके निकट पहुँचा। उसे देखकर सभी प्राणी विह्वल हो गये और सबके मनमें भय छा गया। दैत्यराज कालनेमिके उस क्रूर कर्मको देखकर सभी प्राणियोंने

पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम्।
चेलुः शिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात्॥ २१०

जगर्जुर्जलदा दिक्षु हृदूताश्च महार्णवाः।
तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा भगवान् गरुडध्वजः॥ २११
व्यबुद्ध्यताहिपर्यङ्के योगनिद्रां विहाय तु।
लक्ष्मीकरयुगाजस्त्वलालितादिघसरोरुहः॥ २१२
शरदम्बरनीलाब्जकान्तदेहच्छविर्विभुः ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को कान्तकेयूरभास्वरः॥ २१३
विमृश्य सुरसंक्षोभं वैनतेयं समाहृयत्।
आहूतेऽवस्थिते तस्मिन् नागावस्थितवर्षणि॥ २१४
दिव्यनानास्त्रतीक्षणार्चिरारुह्यागात् सुरान् स्वयम्।
तत्रापश्यत देवेन्द्रमभिद्रुतमभिप्लुतैः॥ २१५
दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः पौरुषोत्कटैः।
यथा हि पुरुषं घोरभाग्यैर्वर्शशालिभिः॥ २१६
परित्राणायाशु कृतं सुक्षेत्रे कर्म निर्मलम्।
अथापश्यन्त दैतेया वियति ज्योतिर्मण्डलम्॥ २१७
स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं सूर्यमुष्णात्विषा इव।
प्रभावं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्य तेजसः॥ २१८
गरुत्मन्तमपश्यन्तः कल्पान्तानलसंनिभम्।
तमास्थितं च मेघौघद्युतिमक्षयमच्युतम्॥ २१९
तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः।
अयं वै देवसर्वस्वं जितेऽस्मिन् निर्जिताः सुराः॥ २२०
अयं स दैत्यचक्राणां कृतान्तः केशवोऽरिहा।
एनमाश्रित्य लोकेषु यज्ञभागभुजोऽमराः॥ २२१

इत्युक्त्वा दानवाः सर्वे परिवार्य समंततः।
निजच्छुर्विविधैरस्त्रैस्ते तमायान्तमाहवे॥ २२२

महेन्द्रकी पराजय मान ली, जो सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करनेवाली थी। उस समय प्रधान-प्रधान पर्वत विचलित हो उठे, आकाशमण्डलसे उल्काएँ गिरने लगीं, दसों दिशाओंमें बादल गरजने लगे और महासागरोंमें ज्वार उठने लगा॥ २०३—२१० ३ ॥

उस समय पञ्चभूतोंके उस विकारको देखकर शेषशश्यापर शयन करते हुए भगवान् गरुडध्वज योगनिद्राका त्याग कर सहसा जाग पड़े। लक्ष्मी अपने दोनों हाथोंसे जिनके चरणकमलोंकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं, जिनके शरीरकी कान्ति शरत्कालीन आकाश एवं नीले कमल-सी सुन्दर हैं, जिनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणिसे उद्भासित होता रहता है, जो चमकीले बाजूबंदसे प्रकाशित होते रहते हैं, उन सर्वव्यापी भगवान्ने देवताओंकी अस्त-व्यस्तताका विचार कर गरुडका आह्वान किया। बुलाते ही हाथीके समान विशाल शरीरवाले गरुडके उपस्थित होनेपर भगवान् उनपर सवार होकर स्वयं देवताओंके निकट गये, उस समय उनके नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रचण्ड प्रकाश फैल रहा था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि नूतन मेघकी-सी कान्तिवाले एवं उत्कट पुरुषार्थी दानवेन्द्रोंद्वारा खदेढ़े जाते हुए देवराज इन्द्र उसी प्रकार भाग रहे हैं, जैसे भयंकर अभाग्यसे युक्त विस्तृत परिवारसे घिरा हुआ पुरुष कष्ट पाता है। फिर तो उस सुन्दर अवसरपर भगवान्ने तुरंत ही इन्द्रकी रक्षाके लिये निर्मल कर्म किया। उस समय दैत्योंको आकाशमें एक ज्योतिर्मण्डल दिखायी पड़ा, जो उदयाचलपर स्थित उष्ण कान्तिवाले सूर्यके समान चमक रहा था। तब दानवगण उस तेजके प्रभावको जाननेके इच्छुक हो उठे। इतनेमें ही उन्हें प्रलयकालीन अग्निकी भाँति भयंकर गरुड दीख पड़े। तत्पश्चात् गरुडपर बैठे हुए मेघसमूहकी-सी कान्तिवाले अविनाशी भगवान् अच्युतका दर्शन हुआ। उन्हें देखकर असुरेन्द्रोंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया (और वे कहने लगे—) ‘यही तो देवताओंका सर्वस्व है। इसे जीत लेनेपर देवताओंको पराजित हुआ ही समझना चाहिये। यही वह दैत्यसमूहोंका विनाश करनेवाला शत्रुसूदन केशव है। इसीका आश्रय ग्रहण कर देवगण लोकोंमें यज्ञ-भागके भोक्ता बने हुए हैं’॥ २११—२२१ ॥

ऐसा कहकर कालनेमि प्रभृति दस महारथी दैत्य तथा वे सभी दानव युद्धस्थलमें आते हुए भगवान् विष्णुको चारों ओरसे घेरकर उनपर विविध प्रकारके अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे।

कालनेमिप्रभृतयो दश दैत्या महारथाः।
 षष्ठ्या विव्याध बाणानां कालनेमिर्जनार्दनम्॥ २२३
 निमिः शतेन बाणानां मथनोऽशीतिभिः शरैः।
 जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च॥ २२४
 शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः शरैः।
 दशभिश्चैव यत्तास्ते जघ्नुः सगरुडं रणे॥ २२५
 तेषाममृष्य तत् कर्म विष्णुर्दानवसूदनः।
 एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्वगैः॥ २२६
 आकर्णकृष्टेर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिः शरैः।
 विष्णुं विव्याध हृदये क्रोधाद् रक्तविलोचनः॥ २२७
 तस्याशोभन्त ते बाणा हृदये तसकाञ्छनाः।
 मयूखानीव दीपानि कौस्तुभस्य स्फुटत्विषः॥ २२८
 तैर्बाणैः किंचिदायस्तो हरिर्जग्राह मुद्ररम्।
 सततं भ्राम्य वेगेन दानवाय व्यसर्जयत्॥ २२९
 दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शतैः शरैः।
 चिच्छेद तिलशः कुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ २३०
 ततो विष्णुः प्रकुपितः प्रासं जग्राह भैरवम्।
 तेन दैत्यस्य हृदयं ताडयामास गाढतः॥ २३१
 क्षणेन लब्धसंज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः।
 शक्तिं जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघणटाङ्गुहासिनीम्॥ २३२
 तया वामभुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः।
 भिन्नः शक्त्या भुजस्तस्य स्तुतशोणित आबभौ॥ २३३
 पद्मरागमयेनेव केयूरेण विभूषितः।
 ततो विष्णुः प्रकुपितो जग्राह विपुलं धनुः॥ २३४
 सप्त दश च नाराचांस्तीक्ष्णान् मर्मबिभेदिनः।
 दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याध च त्रिभिः शरैः॥ २३५
 चतुर्भिः सारथिं चास्य ध्वजं चैकेन पत्रिणा।
 द्वाभ्यां ज्याधनुषी चापि भुजं सव्यं च पत्रिणा॥ २३६
 स विद्धो हृदये गाढं दैत्यो हरिशिलीमुखैः।
 स्तुतरक्तारुणप्रांशुः पीडाकुलितपानसः॥ २३७

उस समय कालनेमिने भगवान् जनार्दनको साठ बाणोंसे, निमिने सौ बाणोंसे, मथनने असी बाणोंसे, जम्भकने सत्तर और शुम्भने दस बाणोंसे बींध दिया। शेष सभी प्रयत्नशील दैत्येश्वरोंमेंसे एक-एकने रणभूमिमें गरुडसहित भगवान् विष्णुको दस-दस बाणोंसे चोटें पहुँचायीं। तब उनके उस कर्मको सहन न कर दानवोंके विनाशक भगवान् विष्णुने एक-एक दानवको सीधे चोट करनेवाले छः-छः बाणोंसे घायल कर दिया। यह देखकर कालनेमिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। तब उसने पुनः कानतक खींचकर छोड़े गये तीन बाणोंसे भगवान् विष्णुके हृदयपर चोट की। तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले कालनेमिके वे बाण विष्णुके हृदयपर उसी प्रकार शोभित हो रहे थे मानो फैलती हुई कान्तिवाले कौस्तुभ मणिकी उद्दीप किरणें हों। उन बाणोंके आघातसे कुछ कष्टका अनुभव कर श्रीहरिने अपना मुद्रर उठाया और उसे लगातार वेगपूर्वक घुमाकर उस दानवपर फेंक दिया। वह मुद्रर अभी उसके निकटतम पहुँचा भी न था कि क्रोधसे भेरे हुए दानवराजने अपने हाथकी फुर्ती दिखलाते हुए आकाशमार्गमें ही सैकड़ों बाणोंके प्रहारसे उसे तिल-तिल करके काट डाला। यह देखकर विशेषरूपसे कुपित हुए भगवान् विष्णुने भयंकर भाला हाथमें लिया और उससे उस दैत्यके हृदयपर गहरी चोट पहुँचायी (जिसके आघातसे वह मूर्च्छित हो गया)॥ २२२—२३१॥

क्षणभरके पश्चात् जब उसकी चेतना लौटी, तब महासुर कालनेमिने तीखे अग्रभागवाली शक्ति हाथमें ली, जिसमें स्वर्णनिर्मित क्षुद्र घंटिकाएँ बज रही थीं। उस शक्तिसे दैत्य कालनेमिने भगवान् विष्णुकी बायीं भुजाको विदीर्ण कर दिया। शक्तिके आघातसे घायल हुई भगवान् विष्णुकी भुजा रक्त बहाती हुई ऐसी शोभा पा रही थी। मानो पद्मरागमणिके बने हुए बाजूबंदसे विभूषित की गयी हो। तब कुपित हुए भगवान् विष्णुने विशाल धनुष और सतरह तीखे एवं मर्मभेदी बाणोंको हाथमें लिया। उनमेंसे उन्होंने नौ बाणोंसे उस दैत्यके हृदयको, चार बाणोंसे उसके सारथिको, एक बाणसे ध्वजको, दो बाणोंसे प्रत्यञ्चासहित धनुषको और एक बाणसे उसकी दाहिनी भुजाको बींध दिया। उस समय भगवान् विष्णुके बाणोंसे उस दैत्यका हृदय गम्भीररूपसे घायल हो गया था, उससे रक्तकी मोटी धाराएँ निकल रही थीं, उसका मन पीडासे व्याकुल हो गया था और

चकम्पे मारुतेनेव नोदितः किंशुकद्रुमः ।
 तमाकम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः ॥ २३८
 तां च वेगेन चिक्षेप कालनेमिरथं प्रति ।
 सा पपात शिरस्युग्रा विपुला कालनेमिनः ॥ २३९
 स चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोऽसुरः ।
 स्वुतरक्तौधरन्ध्रस्तु स्वुतधातुरिवाचलः ॥ २४०
 प्रापतत् स्वे रथे भग्ने विसंजः शिष्टजीवितः ।
 पतितस्य रथोपस्थे दानवस्याच्युतोऽरिहा ॥ २४१
 स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यं चक्रायुधः प्रभुः ।
 गच्छासुर विमुक्तोऽसि साम्प्रतं जीव निर्भयः ॥ २४२
 ततः स्वल्पेन कालेन अहमेव तवान्तकः ।
 एतच्छूत्वा वचस्तस्य सारथिः कालनेमिनः ।
 अपवाहा रथं दूरमनयत् कालनेमिनम् ॥ २४३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे कालनेमिपराजयो नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें कालनेमिपराजय नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५० ॥

वह झंझावातसे झकझोरे हुए पलाश-वृक्षकी भाँति काँप रहा था । उसे काँपता हुआ देखकर भगवान् केशवने गदा उठायी और उसे वेगपूर्वक कालनेमिके रथपर फेंक दिया । वह भयंकर एवं विशाल गदा कालनेमिके मस्तकपर जा गिरी । उसके आघातसे उस असुरका मस्तक चूर्ण हो गया, मुकुट पिस गया और शरीरके छिद्रोंसे रक्तकी धाराएँ बहने लगीं । उस समय वह ऐसा दीख रहा था मानो चूते हुए गेरु आदि धातुओंसे युक्त पर्वत हो । तत्पश्चात् वह मूर्छित होकर अपने टूटे हुए रथपर गिर पड़ा । उसके प्राणमात्र अवशेष थे । इस प्रकार रथके पिछले भागमें पड़े हुए उस दानवके प्रति चक्रायुधधारी एवं सामर्थ्यशाली शत्रुसूदन अच्युतने मुसकराते हुए यह बात कही—‘असुर! जाओ, इस समय तुम छोड़ दिये गये हो, अतः निर्भय होकर जीवन धारण करो । फिर थोड़े ही समयके बाद मैं ही तुम्हारा विनाश करूँगा ।’ भगवान् विष्णुके उस वचनको सुनकर कालनेमिका सारथि रथको लौटाकर कालनेमिको रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ २३२—२४३ ॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुपर दानवोंका सामूहिक आक्रमण, भगवान् विष्णुका अद्भुत युद्ध-कौशल और उनके द्वारा दानवसेनापति ग्रसनकी मृत्यु

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा दानवाः क्रुद्धाश्वेरुः स्वैः स्वैर्बलैर्वृताः ।	
सरधा इव माक्षीकहरणे सर्वतो दिशम् ॥ १	
कृष्णचामरजालाढ्ये	सुधाविरचिताङ्गुरे ।
चित्रपञ्चपताकेषु	प्रभिन्नकरटामुखे ॥ २
पर्वताभे गजे भीमे मदस्त्राविणि दुर्धरे ।	
आरुह्याजी निमिदंत्यो हरिं प्रत्युद्ययौ बली ॥ ३	
तस्यासन् दानवा रौद्रा गजस्य पदरक्षिणः ।	
समविंशतिसाहस्राः किरीटकवचोज्ज्वलाः ॥ ४	

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् विष्णुको देखकर क्रोधमें भरे हुए सभी दानवेन्द्र अपनी-अपनी सेनाके साथ उनके ऊपर इस प्रकार टूट पड़े जैसे मधु निकालते समय मधु निकालनेवालेको मधुमक्खियाँ चारों ओरसे घेर लेती हैं । उस समय महाबली दैत्यराज निमिने जो काले चँबरोंसे सुशोभित था, जिसके मस्तकपर उज्ज्वल पत्रभंगी की गयी थी, जिसके गण्डस्थलका मुख फूट जानेसे मद चू रहा था, जो पर्वतके समान विशालकाय था और जिसपर रंग-विरंगी पाँच पताकाएँ फहरा रही थीं, ऐसे दुर्धर्ष एवं भयंकर गजराजपर चढ़कर युद्धस्थलमें श्रीहरिपर आक्रमण किया । उसके हाथीकी पदरक्षामें सत्ताईस हजार भयंकर दानव नियुक्त थे, जो उज्ज्वल

अश्वारूढश्च मथनो जम्भकश्चोष्टवाहनः।
शुम्भोऽपि विपुलं मेषं समारुह्यान्नजद् रणम्॥ ५

अपरे दानवेन्नास्तु यत्ता नानास्त्रपाणयः।
आजञ्जुः सपरे कुद्धा विष्णुमक्लिष्टकारिणम्॥ ६

परिघेण निमिदैत्यो मथनो मुद्गरेण तु।
शुम्भः शूलेन तीक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा॥ ७

चक्रेण महिषः कुद्धो जम्भः शक्त्या महारणे।
जघुर्नारायणं सर्वे शेषास्तीक्ष्णैश्च मार्गणैः॥ ८

तान्यस्त्राणि प्रयुक्तानि शरीरं विविशुहरैः।
गुरुक्तान्युपदिष्टानि सच्छिष्यस्य श्रुताविव॥ ९

असम्भ्रान्तो रणे विष्णुरथं जग्राह कार्मुकम्।
शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्वगान्॥ १०

ततोऽभिसंध्य दैत्यांस्तानाकण्ठकृष्टकार्मुकः।
अभ्यद्रवद् रणे कुद्धो दैत्यानीके तु पौरुषात्॥ ११

निमिं विव्याध विंशत्या बाणानामनिवर्चसाम्।
मथनं दशभिर्बाणैः शुम्भं पञ्चभिरेव च॥ १२

एकेन महिषं कुद्धो विव्याधोरसि पत्रिणा।
जम्भं द्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वाशैकैकशोऽष्टभिः॥ १३

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा दानवाः क्रोधमूर्च्छिताः।
नर्दमानाः प्रयत्नेन चक्रुत्यद्धुतं रणम्॥ १४

चिच्छेदाथ धनुर्विष्णोर्निमिर्भल्लेन दानवः।
संध्यमानं शरं हस्ते चिच्छेद महिषासुरः॥ १५

पीडयामास गरुडं जम्भस्तीक्ष्णैस्तु सायकैः।
भुजं तस्याहनद् गाढं शुम्भो भूधरसंनिभः॥ १६

छिन्ने धनुषि गोविन्दो गदां जग्राह भीषणाम्।
तां प्राहिणोत् स वेगेन मथनाय महाहवे॥ १७

तामप्राप्तां निमिर्बाणैश्चिच्छेद तिलशो रणे।
तां नाशमागतां दृष्ट्वा हीनाग्रे प्रार्थनामिव॥ १८

किरीट और कवचसे लैस थे। साथ ही घोड़ेपर चढ़ा हुआ मथन, ऊंटपर बैठा हुआ जम्भक और विशालकाय मेषपर सवार हुआ शुम्भ भी रणभूमिमें पहुँचे। कुद्ध हुए अन्यान्य दानवेन्द्र भी विभिन्न प्रकारके अस्त्र हाथमें लिये हुए सतर्क होकर समरभूमिमें अक्लिष्टकर्मा विष्णुपर प्रहार कर रहे थे। उस भयंकर युद्धमें दैत्यराज निमिने परिघसे, मथनने मुद्गरसे, शुम्भने त्रिशूलसे, ग्रसनने तीखे भालेसे, महिषने चक्रसे, क्रोधसे भरे हुए जम्भने शक्तिसे तथा शेष सभी दानवराज तीखे बाणोंसे नारायणपर चोट कर रहे थे। दैत्योंद्वारा चलाये गये वे अस्त्र श्रीहरिके शरीरमें उसी प्रकार प्रवेश कर रहे थे, जैसे गुरुद्वारा उपदिष्ट वाक्य उत्तम शिष्यके कानमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ १—९ ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुने रणभूमिमें स्थिरचित्त हो अपने धनुष तथा तेलसे धुले हुए एवं सीधे लक्ष्यवेद्ध करनेवाले सर्पाकार बाणोंको हाथमें लिया और उन दैत्योंको लक्ष्य बनाकर धनुषको कानतक खींचकर उसपर उन बाणोंका संधान किया। तत्पश्चात् वे क्रोधमें भरकर रणभूमिमें पुरुषार्थपूर्वक दैत्योंकी सेनापर चढ़ आये। उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी बीस बाणोंसे निमिको, दस बाणोंसे मथनको और पाँच बाणोंसे शुम्भको बींध दिया। फिर कुद्ध हो एक बाणसे महिषकी छातीपर चोट पहुँचायी तथा बारह तीखे बाणोंसे जम्भको घायल कर शेष सभी दानवेश्वरोंमेंसे प्रत्येकको आठ-आठ बाणोंसे छेद डाला। भगवान् विष्णुके उस हस्तलाघवको देखकर दानवगण क्रोधसे तिलमिला उठे और सिंहनाद करते हुए प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे। उस समय दानवराज निमिने भल्ल नामक बाण मारकर भगवान् विष्णुके धनुषको काट दिया। फिर महिषासुरने संधान किये जाते हुए बाणको उनके हाथमें ही काट गिराया। जम्भने तीखे बाणोंके प्रहारसे गरुड़को पीड़ित कर दिया। पर्वताकार शुम्भने उनकी भुजापर गम्भीर आघात किया। धनुषके कट जानेपर भगवान् गोविन्दने भीषण गदा हाथमें ली और उस भयंकर युद्धके समय उसे वेषपूर्वक घुमाकर मथनके ऊपर छोड़ दिया। वह उसके निकटतक पहुँच भी न पायी थी कि निमिने रणभूमिमें अपने बाणोंके प्रहारसे उसके तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर दिये। दयाहीन पुरुषके समक्ष विफल हुई प्रार्थनाकी

जग्राह मुद्रं घोरं दिव्यरलपरिष्कृतम्।
 तं मुमोचाथ वेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥ १९
 तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या न्यवारयन्।
 गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु॥ २०
 शक्त्या च महिषो दैत्यः रूपक्षजयकाङ्क्षया।
 निराकृतं तमालोक्य दुर्जने प्रणवं यथा॥ २१
 जग्राह शक्तिमुग्राग्रामष्टघण्टोत्कटस्वनाम्।
 जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद रणभीषणः॥ २२
 तामम्बरस्थां जग्राह गजो दानवनन्दनः।
 गृहीतां तां समालोक्य शिक्षामिव विवेकिभिः॥ २३
 दृढं भारसहं सारमन्यदादाय कार्मुकम्।
 रौद्रास्त्रमभिसंधाय तस्मिन् बाणं मुमोच ह॥ २४
 ततोऽस्त्रतेजसा सर्वं व्यासं लोकं चराचरम्।
 ततो बाणमयं सर्वमाकाशं समदृश्यत॥ २५
 भूर्दिशो विदिशश्वैव बाणजालमया बभुः।
 दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः॥ २६
 ब्राह्मस्त्रं चकारासौ सर्वास्त्रविनिवारणम्।
 तेन तत् प्रशमं यातं रौद्रास्त्रं लोकघस्मरम्॥ २७
 अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन् विष्णुर्दानवसूदनः।
 कालदण्डास्त्रमकरोत् सर्वलोकभयंकरम्॥ २८
 संधीयमाने तस्मिस्तु मारुतः परुषो ववौ।
 चक्रप्ये च मही देवी दैत्या भिन्नधियोऽभवन्॥ २९
 तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः।
 चक्रुरस्त्राणि दिव्यानि नानारूपाणि संयुगे॥ ३०
 नारायणास्त्रं ग्रसनो गृहीत्वा
 चक्रं निमिः स्वास्त्रवरं मुमोच।
 ऐषीकमस्त्रं च चकारजम्भ-
 स्तत्कालदण्डास्त्रनिवारणाय ॥ ३१
 यावन्न संधानदशां प्रयान्ति
 दैत्येश्वराश्वास्त्रनिवारणाय ।
 तावत्क्षणेनैव जघान कोटी-
 दैत्येश्वराणां सगजान् सहाधान्॥ ३२

तरह उस गदाको नष्ट हुई देखकर भगवान् दिव्य रत्नोंसे सुसज्जित भयंकर मुद्रर उठाया और दानवराज निमि को लक्ष्य करके उसे वेगपूर्वक फेंक दिया॥ १०—१९॥

उस मुद्ररको आते हुए देखकर तीन दैत्योंने—जम्भ दैत्यने गदासे, ग्रसने पट्टिशसे और महिष दैत्यने शक्तिसे प्रहार करके आकाशमार्गमें ही उसका निवारण कर दिया। क्योंकि उनके मन अपने पक्षकी विजयकी अभिलाषासे पूर्ण थे। तब दुर्जनके प्रति किये गये प्रेमालापकी भाँति उस मुद्ररको विफल हुआ देखकर रणभूमिमें भयानक कर्म करनेवाले भगवान् आठ घंटियोंके उत्कट शब्दसे युक्त एवं कठोर अग्रभागवाली शक्ति हाथमें ली और उसे जम्भको लक्ष्य करके छोड़ दिया। दानवनन्दन गजने उस शक्तिको आकाशमार्गमें ही पकड़ लिया। विवेकियोंद्वारा धारण की गयी शिक्षाकी भाँति उस शक्तिको पकड़ी गयी देखकर भगवान् एक दूसरा धनुष उठाया, जो सुदृढ़, सारयुक्त और भार सहन करनेमें सक्षम था। उसपर रौद्रास्त्रका अभिसंधान करके उन्होंने उस बाणको छोड़ दिया। उस अस्त्रके तेजसे सारा चराचर जगत् व्यास हो गया और सारा आकाशमण्डल बाणमय दिखायी पड़ने लगा। सारी पृथ्वी, दिशाएँ और विदिशाएँ बाणसमूहसे आच्छादित हो गयीं। उस अस्त्रके प्रभावको देखकर सेनापति असुरराज ग्रसने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण अस्त्रोंको निवारण करनेमें समर्थ था। उसके प्रभावसे वह लोकभक्षक रौद्रास्त्र शान्त हो गया। उस अस्त्रके विफल हो जानेपर दानवोंके संहारक विष्णुने कालदण्डास्त्रको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उस अस्त्रके संधान करते ही प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वीदेवी काँप उठीं और दैत्योंकी बुद्धि विकृत हो गयी। युद्धस्थलमें उस भयंकर अस्त्रको देखकर युद्धदुर्मद दानव नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे॥ २०—३०॥

उस कालदण्डास्त्रका निवारण करनेके लिये ग्रसने नारायणास्त्रको और निमिने अपने श्रेष्ठ अस्त्र चक्रको लेकर उसपर फेंका तथा जम्भने ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके निवारणार्थ जबतक दैत्येश्वरण अपने बाणोंका संधान भी नहीं कर पाये थे, उतनी ही देरमें कालदण्डास्त्रने दैत्येश्वरोंके घोड़े-हाथीसहित करोड़ों सैनिकोंका सफाया कर दिया।

अनन्तरं शान्तमभूत् तदस्त्रं
दैत्यास्त्रयोगेन तु कालदण्डम्।

शान्तं तदालोक्य हरिः स्वशस्त्रं
स्वविक्रमे मन्युपरीतमूर्तिः ॥ ३३

जग्राह चक्रं तपनायुताभ-
मुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।

चिक्षेप सेनापतयेऽभिसंध्य
कण्ठस्थलं वच्रकठोरमुग्रम् ॥ ३४

चक्रं तदाकाशगतं विलोक्य
सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्यैः।

नाशकनुवन् वारयितुं प्रचण्डं
देवं यथा कर्म मुधा प्रपन्नम् ॥ ३५

तमप्रतकर्य जनयन्नजय्य
चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे।

द्विधा तु कृत्वा ग्रसनस्य कण्ठं
तद्रक्तधारारुणघोरनाभि ।

जगाम भूयोऽपि जनार्दनस्य
पाणिं प्रवृद्धानलतुल्यदीपि ॥ ३६

इति श्रीमात्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे ग्रसनवधो नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें ग्रसन-वध नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५१ ॥

तदनन्तर दैत्योंद्वारा प्रयुक्त किये गये अस्त्रोंके संयोगसे वह कालदण्डाख्य शान्त हो गया। अपने उस अख्यको शान्त हुआ देखकर श्रीहरि अपने पराक्रममें ठेस लगी समझकर क्रोधसे उबल पड़े। फिर तो उन्होंने उस चक्रको हाथमें लिया, जो दस हजार सूर्योंके समान तेजोमय, कठोर अरोंसे युक्त और प्रभावमें अपनी द्वितीय मूर्तिके समान था। उन्होंने उस वज्रकी भाँति कठोर एवं भयंकर चक्रको सेनापति ग्रसनके कण्ठस्थलको लक्ष्य करके छोड़ दिया। उस चक्रको आकाशमें पहुँचा हुआ देखकर दैत्येश्वरगण अपने पराक्रमसे पूरा बल लगानेपर भी उसी प्रकार निवारण करनेमें समर्थ न हो सके, जैसे अनिष्ट कर्मसे निष्पत्र हुए प्रचण्ड दुर्भाग्यको हटाया नहीं जा सकता। परिणामस्वरूप वह अतकर्य महिमाशाली एवं अजेय चक्र ग्रसनके कण्ठपर जा गिरा और उसके गलेको दो भागोंमें विभक्त कर दिया। उससे बहते हुए रक्तकी धारासे उस चक्रकी कठोर नाभि लाल हो गयी थी। तत्पश्चात् धधकती हुई अग्निके समान वह उद्दीप चक्र पुनः भगवान् जनार्दनके हाथमें लौट गया ॥ ३१—३६ ॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका मथन आदि दैत्योंके साथ भीषण संग्राम और अन्तमें घायल होकर युद्धसे पलायन

सूत उवाच

तस्मिन् विनिहते दैत्ये ग्रसने बलनायके।
निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः ॥ १

पद्मिशैर्मुसलैः पाशैर्गदाभिः कुणपैरपि।
तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चकुः शक्तिभिरेव च ॥ २

तानस्त्रान् दानवैर्मुक्तांश्चित्रयोधी जनार्दनः।
एकैकं शतशशक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः ॥ ३

ततः क्षीणायुधप्राया दानवा भ्रान्तचेतसः।
अस्त्राण्यादातुमभवन्न समर्था यदा रणे ॥ ४

सूतजी कहते हैं— ऋषियो ! उस सेनानायक दैत्यराज ग्रसनके मारे जानेपर दानवगण श्रीहरिके साथ युद्ध-मर्यादाका परित्याग कर (भयंकर) युद्ध करने लगे। उस समय वे पट्टिश, मुसल, पाश, गदा, कुणप, तीखे मुखवाले बाण, चक्र और शक्तियोंसे प्रहार कर रहे थे। तब विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले भगवान् जनार्दनने अपने अग्निकी लपटोंके समान उद्दीप बाणोंसे दैत्योंद्वारा छोड़े गये उन अस्त्रोंमें प्रत्येकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये। तब दानवोंके अख्य प्रायः नष्ट हो गये और उनका चित्त व्याकुल हो गया। इस प्रकार जब वे रणभूमिमें अख्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये,

तदा मृतैर्गजैरश्वैर्जनार्दनमयोधयन् ।
 समन्तात्कोटिशो दैत्याः सर्वतः प्रत्ययोधयन् ॥ ५
 बहु कृत्वा वपुर्विष्णुः किंचिच्छान्तभुजोऽभवत् ।
 उवाच च गरुत्मन्तं तस्मिन् सुतुमुले रणे ॥ ६
 गरुत्मन्कच्चिदश्रान्तस्त्वमस्मिन्नपि साम्प्रतम् ।
 यद्यश्रान्तोऽसि तद्याहि मथनस्य रथं प्रति ॥ ७
 श्रान्तोऽस्यथ मुहूर्तं त्वं रणादपसृतो भव ।
 इत्युक्तो गरुडस्तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ८
 आसपाद रणे दैत्यं मथनं घोरदर्शनम् ।
 दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ९
 जघान भिन्दिपालेन शितबाणेन वक्षसि ।
 तत्प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन् महाहवे ॥ १०
 जघान पञ्चभिर्बाणैर्मार्जितैश्च शिलाशितैः ।
 पुनर्दशभिराकृष्टैस्तं तताड स्तनान्तरे ॥ ११
 विद्धो मर्मसु दैत्येन्द्रो हरिबाणैरकम्पत ।
 स मुहूर्तं समाश्वास्य जग्राह परिधं तदा ॥ १२
 जघे जनार्दनं चापि परिधेणाग्निवर्चसा ।
 विष्णुस्तेन प्रहारेण किंचिदाधूर्णितोऽभवत् ॥ १३
 ततः क्रोधविवृत्ताक्षो गदां जग्राह माधवः ।
 मथनं सरथं रोषात्रिष्ठिपेषाथ रोषतः ॥ १४
 स पपाताथ दैत्येन्द्रः क्षयकालेऽचलो यथा ।
 तस्मिन् निपतिते भूमौ दानवे वीर्यशालिनि ॥ १५
 अवसादं ययुदैत्याः कर्दमे करिणो यथा ।
 ततस्तेषु विपन्नेषु दानवेष्वतिमानिषु ॥ १६
 प्रकोपाद् रक्तनयनो महिषो दानवेश्वरः ।
 प्रत्युद्यौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमास्थितः ॥ १७
 तीक्ष्णधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयत् ।
 शक्त्या च गरुडं वीरो महिषोऽभ्यहनद्वृदि ॥ १८
 ततो व्यावृत्य वदनं महाचलगुहानिभम् ।
 ग्रस्तुमैच्छद् रणे दैत्यः सगरुत्मन्तमच्युतम् ॥ १९

तब मे हुए हाथियों और घोड़ोंकी लाशोंसे जनार्दनके साथ युद्ध करने लगे । इस तरह करोड़ों दैत्य चारों ओरसे घेरकर उनके साथ युद्ध कर रहे थे । उस समय उस भयंकर संग्राममें भगवान् विष्णुको, जो अनेकों विग्रह (शरीर) धारण कर उनके साथ युद्ध कर रहे थे, भुजाएँ कुछ शिथिल पड़ गयीं । तब वे गरुडसे बोले—‘गरुड ! तुम इस युद्धमें थक तो नहीं गये हो ? यदि थके न हो तो तुम मुझे मथनके रथके निकट ले चलो और यदि तुम थक गये हो तो दो घड़ीके लिये रणभूमिसे दूर हट चलो ।’ शक्तिशाली भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर गरुड रणभूमिमें भयंकर आकृतिवाले दैत्यराज मथनके निकट जा पहुँचे । दैत्यराज मथनने शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए विष्णुको समुख उपस्थित देखकर उनके वक्षःस्थलपर भिन्दिपाल (देलवाँस) एवं तीखे बाणसे प्रहार किया ॥१—१९॥

उस महायुद्धमें दैत्यद्वारा किये गये उस प्रहारकी कुछ भी परवा न कर विष्णुने उसे ऐसे पाँच बाणोंसे धायल किया, जो पत्थरपर रगड़कर तेज किये गये थे । पुनः कानतक खींचकर छोड़े गये दस बाणोंसे उसके स्तनोंके मध्यभागमें चोट पहुँचायी । श्रीहरिके बाणोंसे मर्मस्थानोंके धायल हो जानेपर दैत्येन्द्र मथन काँपने लगा । फिर दो घड़ीके बाद आश्वस्त होकर उसने परिध उठाया और उस अग्निके समान तेजस्वी परिधसे जनार्दनपर भी आघात किया । भगवान् विष्णु उस प्रहारसे कुछ चक्कर-सा काटने लगे । तत्पश्चात् माधवकी आँखें क्रोधसे चढ़ गयीं, तब उन्होंने गदा हाथमें ली और क्रोधपूर्वक उसके आघातसे रथसहित मथनको पीस डाला । दैत्येन्द्र मथन इस प्रकार धराशायी हो गया, जैसे प्रलयकालमें पर्वत ढह जाते हैं । उस पराक्रमशाली दानवके धराशायी हो जानेपर दैत्योंमें उसी प्रकार विषाद छा गया, मानो हाथियोंका समूह दलदलमें फँस गया हो । उन अत्यन्त अभिमानी दानवोंके इस प्रकार विपत्तिग्रस्त हो जानेपर दानवेश्वर महिषने, जिसके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे और जो अत्यन्त उग्र स्वभाववाला था, अपने बाहुबलका आश्रय लेकर श्रीहरिपर आक्रमण किया । उस समय महिषने श्रीहरिपर तीखी धारवाले शूलसे आघात किया । फिर वीरवर महिषने गरुडके हृदयपर शक्तिसे प्रहार किया । तत्पश्चात् उस दैत्यने रणभूमिमें विशाल पर्वतकी गुफाके समान अपने मुखको फैलाकर गरुडसहित अच्युतको निगल जानेकी चेष्टा करने लगा ॥१०—१९॥

अथाच्युतोऽपि विज्ञाय दानवस्य चिकीर्षितम्।
 वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ २०
 महिषस्याथ ससृजे बाणौघं गरुडध्वजः।
 पिथाय वदनं दिव्यैर्दिव्यास्त्रपरिमन्त्रितैः ॥ २१
 स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसंनिभः।
 परिवर्तितकायोऽधः पपात न ममार च ॥ २२
 महिषं पतितं दृष्ट्वा भूमौ प्रोवाच केशवः।
 महिषासुर मत्स्त्वं वथं नास्त्रैरिहार्हसि ॥ २३
 योषिद्वृद्ध्यः पुरोक्तोऽसि साक्षात्कमलयोनिना।
 उत्तिष्ठ जीवितं रक्ष गच्छास्मात्सङ्गराद् द्रुतम् ॥ २४
 तस्मिन् पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुभदानवः।
 संदृष्टैष्टपुटः कोपाद् भूकुटीकुटिलाननः ॥ २५
 निर्मश्य पाणिना पाणिं धनुरादाय भैरवम्।
 सञ्ज्यं चकार स धनुः शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ २६
 स चित्रयोधी दृढमुष्टिपात-
 स्ततस्तु विष्णुं गरुडं च दैत्यः।
 बाणौञ्चलद्विशिखानिकाशैः
 क्षिसैरसंख्यैः परिधातहीनैः ॥ २७
 विष्णुश्च दैत्येन्द्रशराहतोऽपि
 भुशुण्डमादाय कृतान्ततुल्याम्।
 तया भुशुण्डग्ना च पिषेष मेषं
 शुभस्य पत्रं धरणीधराभम् ॥ २८
 तस्मादवप्लुत्य हताच्य मेषाद्
 भूमौ पदातिः स तु दैत्यनाथः।
 ततो महीस्थस्य हरिः शरौधान्
 मुमोच कालानलतुल्यभासः ॥ २९
 शरैस्त्रिभिस्तस्य भुजं बिभेद
 षद्भिश्च शीर्षं दशभिश्च केतुम्।
 विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं
 दैत्यस्य विव्याध विवृत्तनेत्रः ॥ ३०

तदनन्तर जब महाबली विष्णुको उस दानवकी चेष्टा जात हुई, तब उन्होंने दिव्यास्त्रोंसे उसके मुखको भर दिया। इस प्रकार भगवान् गरुडध्वजने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित दिव्य बाणोंद्वारा महिषासुरके मुखको ढककर उसपर बाणसमूहोंकी वृष्टि करने लगे। उन बाणोंसे आहत हुए पर्वत-सदृश विशालकाय महिषासुरका शरीर विकृत हो गया और वह रथसे नीचे गिर पड़ा, परंतु मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ। महिषको भूमिपर पड़ा हुआ देखकर केशवने कहा—‘महिषासुर! इस युद्धमें तुम मेरे अस्त्रोंद्वारा मृत्युको नहीं प्राप्त हो सकते; क्योंकि कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माने तुमसे पहले कह ही दिया है कि तुम्हारी मृत्यु किसी स्त्रीके हाथसे होगी। अतः उठो, अपने जीवनकी रक्षा करो और शीघ्र ही इस युद्धस्थलसे दूर हट जाओ।’ इस प्रकार उस दैत्यराज महिषके युद्धविमुख हो जानेपर शुभ नामक दानव कुपित हो उठा। उसकी भौंहें तन गर्यां और मुख विकराल हो गया। वह दाँतोंसे होंठको चबाता हुआ हाथ-से-हाथ मलने लगा। तत्पश्चात् उसने अपने भयंकर धनुषको हाथमें लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी तथा सर्पके समान जहरीले बाणोंको हाथमें लिया ॥ २०—२६ ॥

फिर तो सुदृढ़ मुष्टिसे युक्त एवं विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले उस दैत्यने धधकती हुई अग्निकी लपटोंके समान विकराल एवं अचूक लक्ष्यवाले असंख्य बाणोंके प्रहारसे विष्णु और गरुडको घायल कर दिया। तब दैत्येन्द्र शुभके बाणोंसे आहत हुए विष्णुने भी कृतात्तके समान भुशुण्ड हाथमें ली और उस भुशुण्डसे शुभके वाहन पर्वतके समान विशालकाय मेषको पीसकर चूर्ण कर दिया। तब वह दैत्यराज मरे हुए मेषसे कूदकर पृथ्वीपर आ गया और पैदल ही युद्ध करने लगा। इस प्रकार पृथ्वीपर खड़े हुए उस दानवपर श्रीहरि प्रलयकालीन अग्निके तुल्य चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। उस समय (उस दैत्यकी ओर) आँख फाड़कर देखते हुए विष्णुने प्रत्यञ्चाको कानतक खोंचकर छोड़े गये तीन बाणोंसे उस दैत्यकी भुजाको, छः बाणोंसे मस्तकको और दस बाणोंसे ध्वजको विदीर्ण कर दिया। इस

स तेन विद्धो व्यथितो बभूव
दैत्येश्वरो विस्तुतशोणितौघः।
ततोऽस्य किंचिच्चलितस्य धैर्या-
दुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः ॥ ३१
कुमारिवध्योऽसि रणं विमुच्छ
शुभ्मासुर स्वल्पतरैरहोभिः।
वधं न मत्तोऽर्हसि चेह मूढ
वृथेव किं युद्धसमुत्सुकोऽसि ॥ ३२
जम्भो वचो विष्णुमुखान्निशम्य
निमिश्च निष्पेष्टमियेष विष्णुम्।
गदामथोद्यम्य निमिः प्रचण्डां
जघान गाढां गरुडं शिरस्तः ॥ ३३
शुभ्मोऽपि विष्णुं परिधेण मूर्धि
प्रमृष्टरत्नौधविचित्रभासा।
तौ दानवाभ्यां विषमैः प्रहारै-
निपेतुरुव्या घनपावकाभौ ॥ ३४
तत्कर्म दृष्टा दितिजास्तु सर्वे
जगर्जुरुच्यैः कृतसिंहनादाः।
धनूंषि चास्फोट्य खुराभिघातै-
र्वदारयन्धूमिमपि प्रचण्डाः।
वासांसि चैवादुधुवुः परे तु
दध्मुश्च शङ्खानकगोमुखौद्यान् ॥ ३५
अथ संज्ञामवाप्याशु गरुडोऽपि सकेशवः।
पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः ॥ ३६

प्रकार विष्णुद्वारा बींधा गया दैत्येश्वर शुभ्म व्यथित हो उठा। उसके शरीरसे रक्तकी धाराएँ बहने लगीं। तत्पश्चात् जब वह कुछ धैर्य धारणकर उठ खड़ा हुआ, तब हाथमें शङ्ख, कमल और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले विष्णुने उससे कहा—‘शुभ्मासुर! तुम थोड़े ही दिनोंमें किसी कुमारी कन्याके हाथों मारे जाओगे, अतः रणभूमिको छोड़कर हट जाओ। मूर्ख! इस युद्धमें तुम्हारा मेरे हाथों वध नहीं हो सकता, फिर व्यर्थ ही मेरे साथ युद्ध करनेके लिये क्यों समुत्सुक हो रहे हो?’ ॥ २७—३२ ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुके मुखसे निकले हुए उस वचनको सुनकर जम्भ और निमि—दोनों दैत्य विष्णुको पीस डालनेके लिये आ पहुँचे। तब निमिने अपनी प्रचण्ड गुर्वाली गदाको उठाकर गरुड़के मस्तकपर प्रहार किया। उधर शुभ्मने भी चमकीले रत्नसमूहोंकी विचित्र कान्तिसे सुशोभित परिघद्वारा विष्णुके मस्तकपर आघात किया। इस प्रकार उन दोनों दानवोंके भीषण प्रहारसे क्रमशः मेघ एवं अग्निकी-सी कान्तिवाले दोनों विष्णु और गरुड पृथ्वीपर गिर पड़े। उन दोनों दैत्योंके उस कर्मको देखकर सभी दैत्य सिंहनाद करते हुए उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे। कुछ प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य अपने धनुषोंको हिलाते हुए पैरोंके आघातसे पृथ्वीको भी विदीर्ण करने लगे। कुछ दैत्य हर्षमें भरकर अपने वस्त्रोंको हिलाने लगे तथा कुछ शङ्ख, नगाड़ा और गोमुख आदि बाजे बजाने लगे। तदनन्तर थोड़ी देर बाद केशवसहित गरुडकी भी चेतना लौट आयी। तब वे उस युद्धसे विमुख हो बड़े वेगसे भाग खड़े हुए। ३३—३६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे मथनादिसंग्रामो नाम द्विपञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें मथनादि-संग्राम नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५२ ॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णु और इन्द्रका परस्पर उत्साहवर्धक वार्तालाप, देवताओंद्वारा पुनः सैन्य-संगठन, इन्द्रका असुरोंके साथ भीषण युद्ध, गजासुर और जम्भासुरकी मृत्यु, तारकासुरका घोर संग्राम और उसके द्वारा भगवान् विष्णुसहित देवताओंका बंदी बनाया जाना

सूत उवाच

तमालोक्य पलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम्।
हरिं देवः सहस्राक्षो मेने भग्नं दुराहवे ॥ १

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उस भयंकर युद्धमें उन श्रीहरिको ध्वज और धनुषसे रहित हो भागते हुए देखकर सहस्र नेत्रधारी देवराज इन्द्रने उन्हें पराजित हुआ मान लिया।

दैत्यांशु मुदितान् दृष्टा कर्तव्यं नाध्यगच्छत ।
 अथायान्निकटे विष्णोः सुरेशः पाकशासनः ॥ २
 उवाच चैनं मधुरं प्रोत्साहपरिबृहकम् ।
 किमेभिः क्रीडसे देव दानवैर्दुष्टमानसैः ॥ ३
 दुर्जनैर्लब्ध्वरन्धस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः ।
 शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः ॥ ४
 तस्मान्न नीचं मतिमान् दुर्गहीनं हि संत्यजेत् ।
 अथाग्रेसरसम्पत्त्या रथिनो जयमानुयुः ॥ ५
 कस्ते सखाभवच्चाग्रे हिरण्याक्षवधे विभो ।
 हिरण्यकशिपुदैत्यो वीर्यशाली मदोद्धतः ॥ ६
 त्वां प्राप्यापश्यदसुरो विषमं स्मृतिविभ्रमम् ।
 पूर्वेऽप्यतिबला ये च दैत्येन्द्राः सुरविद्विषः ॥ ७
 विनाशमागताः प्राप्य शलभा इव पावकम् ।
 युगे युगे च दैत्यानां त्वमेवान्तकरो हरे ॥ ८
 तथैवाद्येह भग्नानां भव विष्णो सुराश्रयः ।
 एवमुक्तस्ततो विष्णुर्वर्वर्धत महाभुजः ॥ ९
 ऋद्धया परमया युक्तः सर्वभूताश्रयोऽरिहा ।
 अथोवाच सहस्राक्षं कालक्षममधोक्षजः ॥ १०
 दैत्येन्द्राः स्वैर्वधोपायैः शक्या हन्तुं हि नान्यतः ।
 दुर्जयस्तारको दैत्यो मुक्त्वा सप्तदिनं शिशुम् ॥ ११
 कश्चित् स्त्रीवध्यतां प्राप्तो वधेऽप्यस्य कुमारिका ।
 जम्भस्तु वध्यतां प्राप्तो दानवः क्रूरविक्रमः ॥ १२
 तस्माद् वीर्येण दिव्येन जहि जम्भं जगञ्ज्वरम् ।
 अवध्यः सर्वभूतानां त्वां विना स तु दानवः ॥ १३
 मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर ।
 तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्राक्षोऽमरारिहा ॥ १४
 समादिशत् सुरान् सर्वान् सैन्यस्य रचनां प्रति ।

उधर दैत्योंको हर्षसे उछलते देखकर इन्द्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । तदनन्तर पाकशासन देवराज इन्द्र भगवान् विष्णुके निकट आये और इस प्रकार उत्साहवर्धक मधुर वाणीमें बोले—‘देव ! आप इन दुष्ट चित्तवाले दानवोंके साथ क्यों खिलवाड़ कर रहे हैं ? भला जिसके भेदको दुर्जन जान लेते हैं, उस पुरुषकी क्रियाएँ कैसे सफल हो सकती हैं ? समर्थ पुरुषद्वारा उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा गया नीच मनुष्य उसे अपना बल मानने लगता है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे आश्रयहीन नीच शत्रुकी कभी उपेक्षा न करे । विभो ! प्रथम आक्रमण करनेपर रथियोंकी विजय होती है । पहले हिरण्याक्षका वध करते समय आपने यही किया । वहाँ कौन आपका मित्र हुआ था ? दैत्यराज हिरण्यकशिपु परम पराक्रमी एवं गर्वोन्मत्त था, किंतु आपको अपने समक्ष पाकर उस असुरके भी होश उड़ गये और उसने आपको भयंकर रूपमें देखा । पूर्वकालमें जितने भी देवद्रोही महाबली दैत्येन्द्र हुए हैं, वे सभी आपके निकट पहुँचकर अग्निके समीप गये हुए पतंगोंकी तरह विनाशको प्राप्त हो गये । हरे ! प्रत्येक युगमें आप ही दैत्योंके विनाशकर्ता होते आये हैं । विष्णो ! उसी प्रकार आज इस युद्धमें पराजित हुए देवताओंके लिये आश्रयदाता होइये’ ॥ १—८ ॥

इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर महाबाहु विष्णुका उत्साह विशेषरूपसे बढ़ गया और वे परमोत्कृष्ट ऋद्धिसे सम्पन्न हो गये । तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रयस्थान एवं शत्रुसूदन विष्णुने इन्द्रसे (यह) समयोपयोगी बात कही—‘देवराज ! ये दैत्येन्द्र अपने द्वारा प्राप्त किये गये वधोपायोंसे ही मारे जा सकते हैं, किसी अन्य उपायसे इनकी मृत्यु नहीं हो सकती । इनमें दैत्यराज तारक तो सात दिनके बालकके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियोंसे अजेय है । किसीका वध स्त्रीद्वारा होनेवाला है तो दूसरेके वधमें कुमारी कन्या कारण है, किंतु भयंकर पराक्रमी दानवराज जम्भ तो मारा जा सकता है । अतः आप दिव्य पराक्रम प्रकट करके जगत्को संतस करनेवाले जम्भका वध कीजिये; क्योंकि वह दानव आपके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियोंके लिये अवध्य है । युद्धभूमिमें मेरे द्वारा सुरक्षित होकर आप जगत्के लिये कण्टकभूत जम्भको उखाड़ फेंकिये ।’ भगवान् विष्णुके उस कथनको सुनकर असुरहन्ता सहस्राक्ष इन्द्रने सम्पूर्ण देवताओंको पुनः सेना-संगठनके लिये आदेश दिया ॥ ९—१४ ॥

यत्सारं सर्वलोकेषु वीर्यस्य तपसोऽपि च ॥ १५
 तदेकादशरुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान् हरिः ।
 व्यालभोगाङ्गसंनद्वा बलिनो नीलकन्धराः ॥ १६
 चन्द्रखण्डनृमुण्डालीमण्डितोरुशिखण्डिनः ।
 शूलञ्चालावलिसाङ्गा भुजमण्डलभैरवाः ॥ १७
 पिङ्गोत्तङ्गजटाजूटाः सिंहचर्मानुषङ्गिणः ।
 कपालीशादयो रुद्रा विद्रावितमहासुराः ॥ १८
 कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः ।
 अजेशः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो ध्रुवस्तथा ॥ १९
 एते एकादशानन्तबला रुद्राः प्रभाविणः ।
 पालयन्तो बलस्याग्रे दारयन्तश्च दानवान् ॥ २०
 आप्याययन्तस्त्रिदशान् गर्जन्त इव चाम्बुदाः ।
 हिमाचलाभे महति काञ्छनाम्बुरुहस्तजि ॥ २१
 प्रचलच्चामरे हेमधण्टासङ्घातमण्डिते ।
 ऐरावते चतुर्दन्ते मातङ्गेऽचलसंस्थिते ॥ २२
 महामदजलस्त्रावे कामरूपे शतक्रतुः ।
 तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीसिमान् ॥ २३
 तस्यारक्षत्पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः ।
 जुगोपापरमग्निस्तु ज्वालापूरितदिमुखः ॥ २४
 पृष्ठरक्षोऽभवद् विष्णुः ससैन्यस्य शतक्रतोः ।
 आदित्या वसवो विश्वे मरुतश्चास्विनावपि ॥ २५
 गन्धर्वा राक्षसा यक्षाः सकिन्नरमहोरगाः ।
 नानाविधायुधाश्चित्रा दधाना हेमभूषणाः ॥ २६
 कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम् ।
 विश्रामयन्तः स्वां कीर्तिं बन्दिवृन्दपुरःसराः ।
 चेरुदैत्यवधे हृष्टाः सहेन्द्राः सुरजातयः ॥ २७
 शतक्रतोरमरनिकायपालिता
 पताकिनी गजशतवाजिनादिता ।
 सितातपत्रध्वजकोटिमण्डिता
 बभूव सा दितिसुतशोकवर्धिनी ॥ २८

उस समय श्रीहरिने कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजेश, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड तथा ध्रुव—इन एकादश रुद्रोंको आगे कर दिया, जो सम्पूर्ण लोकोंमें पराक्रम और तपस्याके सारभूत थे । इन महाबली रुद्रोंके अङ्ग सर्पोंके फणोंसे कसकर बँधे हुए थे । इनके कंधे नीले थे । ये बाल चन्द्रमा, मनुष्योंके मुण्डोंकी माला और मयूरपिंछसे सुशोभित थे । इनके अङ्ग त्रिशूलकी ज्वालासे उद्भासित तथा भुजमण्डल भयंकर थे । ये पीली तथा ऊँची जटाजूटोंसे विभूषित एवं सिंहचर्म पहने हुए थे । इन कपालीश आदि रुद्रोंने अनेकों बार प्रधान-प्रधान असुरोंको खदेड़ दिया था । अनन्त बलसम्पन्न एवं प्रभावशाली ये ग्यारहों रुद्र सेनाके अग्रभागकी रक्षा करते हुए दानवोंको विदीर्ण कर रहे थे और देवताओंको आश्वस्त करते हुए मेघकी भाँति गरज रहे थे । तत्पश्चात् हिमाचलके समान विशालकाय, गलेमें स्वर्णनिर्मित कमलोंकी मालासे सुशोभित, चँवरोंसे संवीजित, स्वर्णनिर्मित घंटासमूहोंसे विभूषित एवं युद्धस्थलमें पर्वतकी भाँति अडिग, चार दाँतवाले, महामदस्तावी कामरूपी ऐरावत गजराजपर इन्द्र सवार हुए । उस समय उनकी शोभा हिमालय पर्वतके शिखरपर स्थित प्रकाशमान सूर्यकी भाँति हो रही थी ॥ १५—२३ ॥

उस ऐरावतके दाहिने पैरकी रक्षामें अमित पराक्रमशाली वायुदेव तथा अपनी ज्वालासे दिशाओंके मुखको परिपूर्ण कर देनेवाले अग्निदेव उसके बायें पैरकी रक्षामें नियुक्त थे । भगवान् विष्णु सेनासहित इन्द्रके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे । आदित्यगण, वसुगण, विश्वदेवगण, मरुदगण और दोनों अश्विनीकुमार तथा गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर और प्रधान-प्रधान नाग, जो नाना प्रकारके आयुधधारी, स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित और रंग-विरंगे वस्त्र धारण किये हुए थे, अपने-अपने चिह्नोंसे उपलक्षित एक-एक करोड़का यूथ बनाकर उसपर आगे-आगे बन्दियोंद्वारा गायी जाती हुई अपनी कीर्तिकी छाप डाल रहे थे । इस प्रकार वे सभी देव-जातियाँ इन्द्रके साथ हर्षपूर्वक दैत्योंका वध करनेके लिये चल रही थीं । देवसमूहोंसे सुरक्षित, सैकड़ों हाथियों और घोड़ोंके शब्दोंसे निनादित एवं करोड़ों श्वेत छत्र और ध्वजाओंसे सुशोभित इन्द्रकी वह सेना दैत्योंका शोक बढ़ानेवाली थी ।

आयान्तीमवलोक्याथ सुरसेनां गजासुरः ।
गजस्त्रपी महाभोदसङ्घातो भाति भैरवः ॥ २९
परश्वधायुधो दैत्यो दंशितोष्ठकसम्पुटः ।
ममर्द चरणे देवांश्चिक्षेपान्यान् करेण तु ॥ ३०
परान् परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः ।
तस्य पातयतः सेनां यक्षगन्धर्वकिंनराः ॥ ३१
मुमुचुः संहताः सर्वे चित्रशस्त्राख्रसंहतिम् ।
पाशान् परश्वधांश्चक्रान् भिन्दिपालान् समुद्धरान् ॥ ३२
कुन्तान् प्रासानसीस्तीक्ष्णान् मुद्धरांश्चापि दुःसहान् ।
तान् सर्वान् सोऽग्रसद् दैत्यः कवलानिव यूथपः ॥ ३३
कोपास्फालितदीर्घाग्रकरास्फोटेन पातयन् ।
विचचार रणे देवान् दुष्ट्रेक्ष्ये गजदानवः ॥ ३४
यस्मिन् यस्मिन् निपतति सुरवृन्दे गजासुरः ।
तस्मिस्तस्मिन् महाशब्दो हाहाकारकृतोऽभवत् ॥ ३५
अथ विद्रवमाणं तद्बलं प्रेक्ष्य समंततः ।
रुद्राः परस्परं प्रोचुरहंकारोत्थितार्चिषः ॥ ३६
भो भो गृहीत दैत्येन्द्रं मर्दतैनं हताश्रयम् ।
कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनं च मर्मसु ॥ ३७
कपाली वाक्यमाकर्ण्य शूलं शितशिखामुखम् ।
सम्मार्ज्य वामहस्तेन संरभविवृतेक्षणः ॥ ३८
अधावद् भृकुटीवक्रो दैत्येन्द्राभिमुखो रणे ।
दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्ट्रभ्य निर्मलम् ॥ ३९
जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम् ।
ततो दशापि ते रुद्रा निर्मलायोमयै रणे ॥ ४०
जघुः शूलैश्च दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्णाणमाहवे ।
स्तुतशोणितरन्धस्तु शितशूलमुखार्दितः ॥ ४१
बभौ कृष्णच्छविदैत्यः शरदीवामलं सरः ।
प्रोत्फुल्लारुणनीलाङ्गसङ्घातं सर्वतोदिशम् ॥ ४२

तदनन्तर उस देव-सेनाको आती हुई देखकर गजासुरने घने मेघसमूहकी भाँति भयंकर हाथीका रूप धारण कर लिया । फिर तो उस भयंकर पराक्रमी दैत्येन्द्रने क्रोधसे होठोंको दाँतोंतले दबाये हुए कुठार हाथमें लेकर कुछ देवोंको चरणोंसे रोंद डाला, कुछको हाथसे पकड़कर दूर फेंक दिया तथा कुछको फरसेसे काट डाला ॥ २४—३०३

इस प्रकार उसे सेनाका संहार करते हुए देखकर यक्ष, गन्धर्व और किंनर—ये सभी संगठित होकर चित्र-विचित्र शस्त्राख्रसमूहोंकी वर्षा करने लगे । उस समय वे पाश, कुठार, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्धर, बर्ढा, भाला, तीखी तलवार और दुःसह मुद्धरोंको फेंक रहे थे, किंतु उन सबको उस यूथपति दैत्यने कौरकी भाँति निगल लिया । फिर उस दुर्दर्श युद्धमें गजासुर क्रोधसे फैलाये हुए अपने लम्बे सूँड़की चपेटसे देवताओंको धराशायी करते हुए विचरण करने लगा । वह गजासुर जिस-जिस सुरयूथपर आक्रमण करता था, उस-उस यूथमें हाहाकारपूर्वक चीत्कार होने लगता था । तदनन्तर उस देव-सेनाको चारों ओर भागती हुई देखकर अहंकारसे भरे हुए रुद्राण परस्पर कहने लगे—‘भो भो सैनिको ! इस दैत्येन्द्रको पकड़ लो । इस आश्रयहीनको रोंद डालो । इसे पकड़कर खोंच लो और तीखे शूलोंसे इसके मर्मस्थानोंको छेद डालो ।’ ऐसा ललकार सुनकर कपालीके नेत्र क्रोधसे चढ़ गये और उनकी भाँहें टेढ़ी हो गयीं । तब वे तीखे एवं चमकीले मुखवाले शूलको बायें हाथसे पोंछकर रणभूमिमें दैत्येन्द्र गजासुरके सम्मुख दौड़े । फिर कपालीने उस निर्मल शूलको सुदृढ़ मुट्ठीसे पकड़कर गजासुरके गण्डस्थलपर प्रहार किया ॥ ३१—३९३ ॥

तदनन्तर वे दसों रुद्र रणभूमिमें युद्ध करते समय निर्मल लोहेके बने हुए शूलोंसे पर्वत-सदृश विशालकाय दैत्येन्द्र गजपर आघात करने लगे । तीखे मुखवाले शूलोंके आघातसे पीड़ित हुए गजासुरके शरीरछिद्रोंसे रक्त बहने लगा । उस समय काली कान्तिवाला वह दैत्य शरद-ऋतुमें सब ओरसे खिले हुए लाल और नीले कमलोंसे भरे हुए निर्मल सरोवरकी भाँति शोभा पा रहा था तथा

भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हसैरिवावृतः ।
उपस्थितार्तिदैत्योऽथ प्रचलत्कर्णपल्लवः ॥ ४३

शम्भुं बिभेद दशनैर्नाभिदेशे गजासुरः ।
दृष्ट्वा सक्तं तु रुद्राभ्यां नव रुद्रास्ततोऽद्भुतम् ॥ ४४

ततक्षुर्विविधैः शस्त्रैः शरीरममरद्विषः ।
निर्भया बलिनो युद्धे रणभूमौ व्यवस्थिताः ॥ ४५

मृतं महिषमासाद्य वने गोमायवो यथा ।
कपालिनं परित्यज्य गतश्चासुरपुंगवः ॥ ४६

वेगेन कुपितो दैत्यो नवरुद्रानुपाद्रवत् ।
ममर्दं चरणाधातैर्दन्तैश्चापि करेण च ॥ ४७

स तैस्तुमुलयुद्धेन श्रममासादितो यदा ।
तदा कपाली जग्राह करं तस्यामरद्विषः ॥ ४८

भ्रामयामास वेगेन ह्यतीव च गजासुरम् ।
दृष्ट्वा श्रमातुरं दैत्यं किंचित्पुरितजीवितम् ॥ ४९

निरुत्साहं रणे तस्मिन् गतयुद्धोत्सवोद्यमम् ।
ततः पतत एवास्य चर्मं चोक्तृत्य भैरवम् ॥ ५०

स्त्रवत्सर्वाङ्गरक्तौधं चकाराम्बरमात्मनः ।
दृष्ट्वा विनिहतं दैत्यं दानवेन्द्रा महाबलाः ॥ ५१

वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जग्मुर्निपेतुश्च सहस्रशः ।
दृष्ट्वा कपालिनो रूपं गजचर्माम्बरावृतम् ॥ ५२

दिक्षु भूमौ तमेवोग्रं रुद्रं दैत्या व्यलोकयन् ।
एवं विलुलिते तस्मिन् दानवेन्द्रे महाबले ॥ ५३

द्विपाधिरुढो दैत्येन्द्रो हतदुन्दुभिना ततः ।
कल्पान्ताम्बुधराभेण दुर्धरेणापि दानवः ॥ ५४

निमिरभ्यपतत् तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन् ।
यां यां निमिगजो याति दिशं तां तां सवाहनाः ॥ ५५

संत्यज्य दुद्रुवुर्देवा भयार्तास्त्यक्तहेतयः ।
गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः ॥ ५६

पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः ।
तस्थौ दिक्पालकैः सार्थमष्टभिः केशवेन च ॥ ५७

हंसोंकी तरह शरीरमें श्वेत भस्म रमाये हुए रुद्रोंसे धिरा हुआ था । इस प्रकार विपत्तिमें फँसे हुए दैत्यराज गजासुरे अपने कर्णपल्लवोंको हिलाते हुए शम्भुके नाभिदेशको दाँतोंसे विदीर्ण कर दिया । तत्पश्चात् गजासुरको कपाली और शम्भु—इन दोनों रुद्रोंके साथ उलझा हुआ देख शेष नवों रुद्र, जो रण-भूमिमें उपस्थित थे तथा महाबली एवं युद्धमें निर्भय होकर लड़नेवाले थे, उस देवद्रोहीके शरीरको विविध प्रकारके शस्त्रोंसे उसी प्रकार काटने लगे, जैसे वनमें मरे हुए भैंसेको पाकर शृगाल नोचने लगते हैं । यह देखकर असुरश्रेष्ठ गज कपालीको छोड़कर हट गया । फिर कुपित हुए उस दैत्यने बड़े वैगसे नवों रुद्रोंपर धावा किया । उसने पैरोंके आधातसे, दाँतोंके प्रहारसे तथा सूँड़की चपेटोंसे उन्हें राँद डाला । इस प्रकार उनके साथ द्वन्द्ययुद्ध करनेसे जब वह थक गया, तब कपालीने उस देवद्रोहीके सूँड़को पकड़ लिया और वे गजासुरको बड़े वैगसे घुमाने लगे । जब उन्होंने देखा कि यह दैत्य परिश्रमसे आतुर हो गया है, उसकी युद्धके लिये अभिलाषा एवं उद्यम समाप्त हो चुके हैं, यह रणमें उत्साहीन हो गया है और अब इसके प्राणमात्र अवशेष हैं, तब उसे भूतलपर पटक दिया । उसके सभी अङ्गोंसे रक्तकी धारा बह रही थी । तब कपालीने भूतलपर पड़े हुए उस गजासुरके भयंकर चर्मको उधेड़कर अपना वस्त्र बना लिया ॥ ४०—५० ॥

इस प्रकार दैत्यराज गजासुरको मारा गया देखकर हजारों महाबली दानवेन्द्र भयभीत हो गये । कुछ तो रणभूमि छोड़कर भाग गये, कुछ धीरेसे खिसक गये और कुछ वर्ही गिर पड़े । गजासुरके चर्मसे आच्छादित कपालीके रूपको देखकर दैत्यगण सभी दिशाओंमें तथा भूतलपर सर्वत्र उर्ही भयंकर रुद्रोंको ही देख रहे थे । इस प्रकार उस महाबली दानवेन्द्र गजासुरके नष्ट हो जानेपर गजराजपर आरूढ़ हुआ दैत्येन्द्र निमि शीघ्र ही देव-सेनाओंको विलोड़ित करता हुआ वहाँ आ पहुँचा । उस समय उस दानवके साथ प्रलयकालीन मेघके समान दुर्धर्ष शब्द करनेवाली दुन्दुभि भी बज रही थी । निमिका वह गजराज जिस-जिस दिशाकी ओर बढ़ता था, उधर-उधरसे वाहनसहित देवगण भयभीत हो अख डालकर युद्धभूमिसे भाग खड़े होते थे । उस दैत्यके हाथीका गन्ध पाकर देवताओंके हाथी भी भागने लगे । इस प्रकार देव-सेनाओंमें भगदड़ पड़ जानेपर पाकशासन इन्द्र आठों दिक्पालों तथा भगवान् केशवके साथ खड़े रहे, किंतु

सम्प्राप्तो निमिमातङ्गो यावच्छक्रगजं प्रति ।
 तावच्छक्रगजो यातो मुक्त्वा नादं स भैरवम् ॥ ५८
 ध्रियमाणोऽपि यत्नेन स रणे नैव तिष्ठति ।
 पलायिते गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः ॥ ५९
 विपरीतमुखोऽयुध्यद् दानवेन्द्रबलं प्रति ।
 शतक्रतुस्तु वत्रेण निमिं वक्षस्यताडयत् ॥ ६०
 गदया दन्तिनश्चास्य गण्डदेशोऽहनद् दृढम् ।
 तत्प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः ॥ ६१
 ऐरावतं कटीदेशे मुद्ररेणाभ्यताडयत् ।
 स हतो मुद्ररेणाथ शक्रकुञ्जर आहवे ॥ ६२
 जगाम पश्चाच्चरणैर्धरणीं भूधराकृतिः ।
 लाघवात् क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः ॥ ६३
 रणादपससर्पाशु भीषितो निमिहस्तिना ।
 ततो वायुर्वौ रुक्षो बहुशक्तरपांसुलः ॥ ६४
 सम्पुखो निमिमातङ्गो जवनाचलकम्पनः ।
 स्वुतरक्तो बभौ शैलो घनधातुहृदो यथा ॥ ६५
 धनेशोऽपि गदां गुर्वीं तस्य दानवहस्तिनः ।
 चिक्षेप वेगाद् दैत्येन्द्रो निपपातास्य मूर्धनि ॥ ६६
 गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्छितः ।
 दन्तैर्भित्त्वा धरां वेगात् पपाताचलसंनिभः ॥ ६७
 पतिते तु गजे तस्मिन् सिंहनादो महानभूत् ।
 सर्वतः सुरसैन्यानां गजबृहितबृहितैः ॥ ६८
 हेषारवेण चाश्वानां गुणास्फोटैश्च धन्विनाम् ।
 गजं तं निहतं दृष्ट्वा निमिं चापि पराङ्मुखम् ॥ ६९
 श्रुत्वा च सिंहनादं च सुराणामतिकोपनः ।
 जम्भो जज्वाल कोपेन पीताञ्ज्य इव पावकः ॥ ७०
 स सुरान् कोपरक्ताक्षो धनुष्यारोप्य सायकम् ।
 तिष्ठतेत्यब्रवीत्तावत् सारथिं चाप्यचोदयत् ॥ ७१
 वेगेन चलतस्तस्य तद्रथस्याभवद् द्युतिः ।
 यथाऽदित्यसहस्रस्याभ्युदितस्योदयाचले ॥ ७२

निमिका गजराज ज्यों ही इन्द्रके गजराजके पास पहुँचा त्यों ही इन्द्रका गज ऐरावत भयंकर चिंगधाड़ करता हुआ भाग खड़ा हुआ। प्रयत्नपूर्वक रोके जानेपर भी वह रणभूमिमें नहीं खड़ा हुआ। तब उस भागते हुए गजराजपर आरूढ़ हुए इन्द्र पीछे मुख करके दानवेन्द्रोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५१—५९ ३ ॥

उस समय इन्द्रने वज्रसे निमिके वक्षःस्थलपर आघात किया और गदासे उसके हाथीके गण्डस्थलपर गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो निर्भय पुरुषार्थी निमिने उस प्रहारकी कुछ भी परवाह न कर ऐरावतके कटिप्रदेशपर मुद्ररसे चोट की। युद्धमें मुद्ररसे आहत हुआ पर्वत-सरीखा विशालकाय इन्द्रका हाथी ऐरावत अपने पिछले पैरोंसे पृथ्वीपर बैठ गया। फिर निमिके हाथीसे डरा हुआ इन्द्रका वह महागज बड़ी फुर्तीसे शीघ्र ही उठकर वेगपूर्वक रणभूमिसे दूर हट गया। उस समय प्रचुर मात्रामें बालू और धूलसे भरी हुई रुखी वायु बहने लगी। ऐसी दशामें भी अपने वेगसे पर्वतको भी कम्पित कर देनेवाला निमिका गजराज सम्मुख खड़ा था। उसके शरीरसे रक्त बह रहा था, जिसके कारण वह गेरु आदि धातुओंके गहरे कुण्डसे युक्त पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था। तब धनेशने भी दानवके उस हाथीपर वेगपूर्वक अपनी भारी गदा चलायी, जो उसके मस्तकपर जा गिरी, जिससे दैत्येन्द्र तो भूतलपर गिर पड़ा और वह हाथी उस गदाके आघातसे मूर्छित हो गया। वह वेगपूर्वक दाँतोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करके पर्वत-सरीखे धराशायी हो गया। उस गजराजके गिर जानेपर देवताओंकी सेनाओंमें सब ओर महान् सिंहनाद होने लगा। उस समय हर्षसे भरे हुए गजसमूह चिंगधाड़ने लगे, घोड़े होंसने लगे और धनुर्धारियोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ चटचटाने लगीं। इस प्रकार उस हाथीको मारा गया और निमिको भी युद्धविमुख देखकर तथा देवताओंका सिंहनाद सुनकर प्रचण्ड क्रोधी जम्भ घीकी आहुति पड़े हुए अग्निकी तरह क्रोधसे जल उठा ॥ ६०—७० ॥

उस समय क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले जम्भासुरने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर देवताओंको ललकारते हुए कहा—‘खड़े रहो! (भागकर कहाँ जाओगे)।’ साथ ही अपने सारथिको आगे बढ़नेके लिये प्रेरित किया। तब वेगपूर्वक चलते हुए उसके रथकी ऐसी शोभा हो रही थी मानो उदयाचलपर उदित हुए हजारों सूर्य हों।

पताकिना रथेनाजौ किङ्गिणीजालमालिना ।
 शशिशुभ्रातपत्रेण स तेन स्यन्दनेन तु ॥ ७३
 घट्यन् सुरसैन्यानां हृदयं समदृश्यत ।
 तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकः ॥ ७४
 शतक्रतुरदीनात्मा दृढमाधत्त कार्मुकम् ।
 बाणं च तैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्वगम् ॥ ७५
 तेनास्य सशरं चापं रणे चिच्छेद वृत्रहा ।
 क्षिप्रं संत्यज्य तच्चापं जम्भो दानवनन्दनः ॥ ७६
 अन्यत् कार्मुकमादाय वेगवद् भारसाधनम् ।
 शरांश्वाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्वगान् ॥ ७७
 शक्रं विव्याध दशभिर्जत्रुदेशे तु पत्रिभिः ।
 हृदये च त्रिभिश्वापि द्वाभ्यां च स्कन्धयोर्द्वयोः ॥ ७८
 शक्रोऽपि दानवेन्द्राय बाणजालमपीदूशम् ।
 अप्रासान् दानवेन्द्रस्तु शराञ्छक्रभुजेरितान् ॥ ७९
 चिच्छेद दशधाऽऽकाशे शरैरग्निशिखोपमैः ।
 ततस्तु शरजालेन देवेन्द्रो दानवेश्वरम् ॥ ८०
 आच्छादयत यत्नेन वर्षास्त्विव घनैर्नभः ।
 दैत्योऽपि बाणजालं तद्व्यधमत् सायकः शितैः ॥ ८१
 यथा वायुर्धनाटोपं परिवार्य दिशो मुखे ।
 शक्रोऽथ क्रोधसंरभान्न विशेषयते यदा ॥ ८२
 दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्वृतम् ।
 तदुथतेजसा व्यासमभूद् गगनगोचरम् ॥ ८३
 गन्धर्वनगरैश्वापि नानाप्राकारतोरणैः ।
 मुञ्चद्विरद्वृताकारैरस्त्रवृष्टिं समंततः ॥ ८४
 अथास्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमाना महाचमूः ।
 जम्भं शरणमागच्छदप्रमेयपराक्रमम् ॥ ८५
 व्याकुलोऽपि स्वयं दैत्यः सहस्राक्षास्त्रपीडितः ।
 सस्मरन् साधुमाचारं भीतत्राणपरोऽभवत् ॥ ८६

वह रथ क्षुद्र घटिकाओंके समूहसे सुशोभित था, उसमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र लगा हुआ था और उसपर पताका फहरा रही थी। ज्यों ही रथपर सवार जम्भासुर सुर-सैनिकोंके हृदयोंको धर्षित करता हुआ रणभूमिमें दिखायी पड़ा त्यों ही उदाहरहदय इन्द्रने अपना सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया और उसपर तेलसे साफ किये गये एवं सीधे लक्ष्यवेध करनेवाले अर्धचन्द्राकार बाणका संधान किया। वृत्रासुरका हनन करनेवाले इन्द्रने उस बाणसे रणभूमिमें जम्भासुरके बाणसहित धनुषको काट दिया। तब दानवनन्दन जम्भने शीघ्र ही उस धनुषको फेंककर दूसरा वेगशाली एवं भार सहन करनेमें समर्थ धनुष तथा तेलसे सफाये गये, सीधा लक्ष्यवेध करनेवाले एवं सर्पके समान जहरीले बाणोंको हाथमें लिया। उनमेंसे उसने दस बाणोंसे इन्द्रकी हँसलीको, तीन बाणोंसे हृदयको और दो बाणोंसे दोनों कंधोंको बींध दिया ॥ ७१—७८ ॥

इसी प्रकार इन्द्रने भी उस दानवेन्द्रपर बाणसमूह चलाये, परंतु इन्द्रके हाथसे छोड़े गये उन बाणोंके अपने पास पहुँचनेके पूर्व ही दानवेन्द्र जम्भने अपने अग्निकी लपटोंके समान तेजस्वी बाणोंसे आकाशमें ही काटकर दस-दस टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने यत्पूर्वक दानवेश्वरको बाणसमूहोंसे इस प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे वर्षा-ऋतुमें बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है। तब दैत्यने भी अपने तीखे बाणोंसे उस बाण-समूहको इस प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे वायु दिशाओंके मुखपर छाये हुए बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है। तदनन्तर जब इन्द्र क्रोधवश उस दानवेन्द्रसे आगे न बढ़ सके, तब उन्होंने महान् अद्भुत गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया। उससे निकले हुए तेजसे सारा आकाशमण्डल व्यास हो गया। उससे अनेकों परकोटों एवं फाटकोंसे युक्त अद्भुत आकारवाले गन्धर्वनगर भी प्रकट हुए, जिनसे चारों ओर अस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। उस अस्त्रवृष्टिसे मारी जाती हुई दैत्योंकी विशाल सेना अतुल पराक्रमी जम्भकी शरणमें आ गयी। यद्यपि उस समय इन्द्रके अस्त्रसे पीड़ित होकर दैत्यराज जम्भ स्वयं भी व्याकुल हो गया था, तथापि सज्जनोंके सदाचारका—अर्थात् शरणागतकी रक्षा करनी चाहिए—इस नियमका स्मरण कर वह उन भयभीतोंकी रक्षामें तत्पर हो गया।

अथात्रं मौसलं नाम मुमोच दितिनन्दनः ।
ततोऽयोमुसलैः सर्वमभवत् पूरितं जगत् ॥ ८७
एकप्रहारकरणैरप्रधृष्यैः समंततः ।
गन्धर्वनगरं तेषु गन्धर्वास्त्रविनिर्मितम् ॥ ८८
गान्धर्वमत्रं संधाय सुरसैन्येषु चापरम् ।
एकैकेन प्रहारेण गजानश्चान् महारथान् ॥ ८९
रथाश्चान् सोऽहनत् क्षिप्रं शतशोऽथ सहस्रशः ।
ततः सुराधिपस्त्वाष्टमत्रं च समुदीरयत् ॥ ९०
संध्यमाने ततस्त्वाष्टे निश्चेषुः पावकार्चिषः ।
ततो यन्त्रमयान् दिव्यानायुधान् दुष्प्रधर्षिणः ॥ ९१
तैर्यन्त्रैरभवद् बद्धमन्तरिक्षे वितानकम् ।
वितानकेन तेनाथ प्रशमं मौसले गते ॥ ९२
शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसङ्घातताडनम् ।
व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततो वर्षमर्वतं ॥ ९३
त्वाष्टस्य निमितान्याशु यन्त्राणि तदनन्तरम् ।
तेनोपलनिपातेन गतानि तिलशस्ततः ॥ ९४
यन्त्राणि तिलशः कृत्वा शैलास्त्रं परमूर्धसु ।
निपपातातिवेगेनादारयत् पृथिवीं ततः ॥ ९५
ततो वज्रास्त्रमकरोत् सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
तदोपलमहावर्ष व्यशीर्यत समंततः ॥ ९६
ततः प्रशान्ते शैलास्त्रे जम्भो भूधरसंनिभः ।
ऐषीकमस्त्रमकरोदभीतोऽतिपराक्रमः ॥ ९७
ऐषीकेणागमन्नाशं वज्रास्त्रं शक्रवल्लभम् ।
विजृम्भत्यथ चैषीके परमास्त्रेऽतिदुर्धरे ॥ ९८
जञ्चलुदेवसैन्यानि सस्यन्दनगजानि तु ।
दह्यमानेष्वनीकेषु तेजसा सुरसत्तमः ॥ ९९
आग्नेयमस्त्रमकरोद बलवान् पाकशासनः ।
तेनास्त्रेण तदस्त्रं च बध्यंशे तदनन्तरम् ॥ १००
तस्मिन् प्रतिहते चास्त्रे पावकास्त्रं व्यजम्भत ।
जञ्चाल कायं जम्भस्य सरथं च ससारथिम् ॥ १०१

फिर तो उस दैत्यने मौसल नामक अस्त्रका प्रयोग किया। उससे निकले हुए लोहनिर्मित मुसलोंसे सारा जगत् व्याप हो गया। एक-एकपर प्रहार करनेवाले उन दुर्धर्ष मुसलोंद्वारा गन्धर्वास्त्रद्वारा निर्मित गन्धर्वनगर भी चारों ओरसे आच्छादित हो गया ॥ ७९—८८ ॥

तदनन्तर जम्भासुरने दूसरे गन्धर्वास्त्रका संधान करके उसे देवताओंकी सेनाओंपर छोड़ दिया। उसने शीघ्र ही क्रमशः एक-एक प्रहारसे सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें गजराजों, घोड़ों, महारथियों एवं रथके घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब देवराज इन्द्रने त्वाष्ट्र नामक अस्त्रको प्रकट किया। उस त्वाष्ट्रास्त्रके संधान करते ही अग्निकी लपटें निकलने लगीं। तत्पश्चात् उन्होंने अन्यान्य दुर्धर्ष यन्त्रमय दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया। उन यन्त्रमय अस्त्रोंसे आकाशमें वितान-सा बँध गया। उस वितानसे वह मौसलास्त्र शान्त हो गया। यह देखकर जम्भासुरने उस यन्त्रसमूहको नष्ट करनेवाले शैलास्त्रका प्रयोग किया। उससे व्यामके बराबर उपलोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर उस उपल-वर्षासे त्वाष्ट्रास्त्रद्वारा निर्मित सभी यन्त्र शीघ्र ही तिल-सरीखे चूर्ण बन गये। इस प्रकार वह शैलास्त्र यन्त्रोंको तिलशः काटकर बड़े वेगसे शत्रुओंके मस्तकोंपर गिरते हुए पृथ्वीको भी विदीर्ण कर देता था। तब सहस्रनेत्रधारी इन्द्रने वज्रास्त्रका प्रयोग किया। उससे उपलोंकी वह महान् वृष्टि चारों ओर छिन्न-भिन्न हो गयी। उस शैलास्त्रके प्रशान्त हो जानेपर पर्वत-सा विशालकाय एवं प्रचण्ड पराक्रमी जम्भने निर्भय होकर ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। उस ऐषीकास्त्रसे देवराज इन्द्रका परम प्रिय वज्रास्त्र नष्ट हो गया। तत्पश्चात् उस परम दुर्धर्ष दिव्यास्त्र ऐषीकके फैलते ही रथों एवं हाथियोंसहित देवताओंकी सेनाएँ जलने लगीं ॥ ८९—९८ ॥

इस प्रकार ऐषीकास्त्रके तेजसे अपनी सेनाओंको भस्म होती हुई देखकर महाबली देवराज इन्द्रने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके प्रभावसे ऐषीकास्त्र नष्ट हो गया। तदनन्तर उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर आग्नेयास्त्रने अपना प्रभाव फैलाया, उससे रथ एवं सारथिसहित जम्भका शरीर जलने लगा।

ततः प्रतिहतः सोऽथ दैत्येन्द्रः प्रतिभानवान् ।
 वारुणास्त्रं मुमोचाथ शमनं पावकार्चिषाम् ॥ १०२
 ततो जलधरैर्व्योम स्फुरद्विद्युल्लताकुलैः ।
 गम्भीरमुरजध्वानैरापूरितमिवाम्बरम् ॥ १०३
 करीन्द्रकरतुल्याभिर्जलधाराभिरम्बरात् ।
 पतन्तीभिर्जगत् सर्वं क्षणेनापूरितं बभौ ॥ १०४
 शान्तमाग्नेयमस्त्रं तत् प्रविलोक्य सुराधिपः ।
 वायव्यमस्त्रमकरोन्मेघसङ्घातनाशनम् ॥ १०५
 वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्धूते मेघमण्डले ।
 बभूव विमलं व्योम नीलोत्पलदलप्रभम् ॥ १०६
 वायुना चातिघोरेण कम्पितास्ते तु दानवाः ।
 न शेकुस्तत्र ते स्थातुं रणोऽतिबलिनोऽपि ये ॥ १०७
 तदा जम्भोऽभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः ।
 मारुतप्रतिघातार्थं दानवानां भयापहः ॥ १०८
 मुक्तनानायुधोदग्रतेजोऽभिन्वलितद्वुमः ।
 ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ ॥ १०९
 महाशनीं वज्रमयीं मुमोचाशु शतक्रतुः ।
 तयाशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः ॥ ११०
 कन्दराणि व्यशीर्यन्तं समन्तान्निर्झराणि तु ।
 ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत ॥ १११
 निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो मदोत्कटः ।
 बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलसमाकृतिः ॥ ११२
 स मर्दं सुरानीकं दन्तैश्चाप्यहनत् सुरान् ।
 बभञ्ज पृष्ठतः कांश्चित् करेणावेष्ट्य दानवः ॥ ११३
 ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृत्रहा ।
 अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धर्षं नारसिंहं मुमोच ह ॥ ११४
 ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा ।
 कृष्णदंष्ट्राहृहासानि क्रकचाभनखानि च ॥ ११५
 तैर्विपाटितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोथयत् ।
 ततश्चाशीविषो घोरोऽभवत् फणशताकुलः ॥ ११६
 विषनिःश्वासनिर्दग्धं सुरसैन्यं महारथः ।
 ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रश्वारभुजस्तदा ॥ ११७

उस अस्त्रसे प्रतिहत हो जानेपर प्रतिभाशाली दैत्यराज जम्भने अग्निकी ज्वालाओंको शान्त करनेवाले वारुणास्त्रका प्रयोग किया । फिर तो आकाशमें चमकती हुई बिजलियोंसे व्यास बादल उमड़ आये । गम्भीर मृदंगकी-सी धनि करनेवाले मेघोंकी गर्जनासे आकाश निनादित हो उठा । फिर क्षणमात्रमें ही आकाशसे गिरती हुई गजराजके शुण्डदण्डकी-सी मोटी जलधाराओंसे सारा जगत् आप्लावित हुआ दीख पड़ने लगा । तब देवराज इन्द्रने उस आग्नेयास्त्रको शान्त हुआ देखकर मेघसमूहको नष्ट करनेवाले वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । उस वायव्यास्त्रके बलसे मेघमण्डलके छिन्न-भिन्न हो जानेपर आकाश नीलकमल-दलके सदृश निर्मल हो गया । पुनः अत्यन्त भीषण झंझावातके चलनेपर दानवगण कम्पित हो उठे, इस कारण उनमें जो महाबली थे, वे भी उस समय रणभूमिमें खड़ा रहनेके लिये समर्थ न हो सके । तब दानवोंके भयको दूर करनेवाले जम्भने उस वायुको रोकनेके लिये दस योजन विस्तारवाले पर्वतका रूप धारण कर लिया । उस पर्वतके वृक्ष छोड़े गये नाना प्रकारके अस्त्रोंके प्रचण्ड तेजसे उद्दीप हो रहे थे ॥ ९९—१०८ ४ ॥

तदनन्तर वायुके शान्त हो जानेपर इन्द्रने तुरंत ही उस पर्वताकार दैत्येन्द्रपर एक वज्रमयी महान् अशनि फेंकी । उस अशनिके गिरनेसे पर्वतरूपी दैत्यकी कन्दराएँ और झरने सब ओरसे छिन्न-भिन्न हो गये । तत्पश्चात् दानवेन्द्रकी वह शैलमाया विलीन हो गयी । उस शैलमायाके निवृत्त हो जानेपर गर्वाला दानवराज जम्भ विशाल पर्वतकी-सी आकृतिवाले भयंकर गजराजके रूपमें प्रकट हुआ । फिर तो वह देव-सेनाका मर्दन करने लगा । उस दानवने कितने देवताओंको दाँतोंसे चूर्ण कर दिया और कितनोंको सूँड़से लपेटकर पृष्ठभागसे मरोड़ दिया । इस प्रकार उस दैत्यको देव-सेनाओंको नष्ट करते देखकर वृत्रासुरके हन्ता इन्द्रने त्रिलोकीके लिये दुर्धर्ष नारसिंहास्त्रका प्रयोग किया । उस मन्त्रके तेजसे हजारों ऐसे सिंह प्रकट हुए जो काले दाढ़ोंसे युक्त थे और जोर-जोरसे दहाड़ रहे थे तथा जिनके नख आरेके समान थे । उन सिंहोंद्वारा शरीरके फाड़ दिये जानेपर जम्भने अपनी गजमाया समेट ली और पुनः सैकड़ों फनोंसे युक्त भयंकर सर्पका रूप धारण कर लिया । तब उस महारथीने विषभरी निःश्वाससे देव-सैनिकोंको जलाना प्रारम्भ किया । यह देखकर सुन्दर भुजाओंवाले इन्द्रने उस समय गारुडास्त्रका प्रयोग किया ।

ततो गरुत्मतस्तस्मात् सहस्राणि विनिर्युः ।
तैर्गरुत्मद्विरासाद्य जम्भो भुजगरूपवान् ॥ ११८
कृतस्तु खण्डशो दैत्यः सास्य माया व्यनश्यत ।
प्रनष्टायां तु मायायां ततो जम्भो महासुरः ॥ ११९
चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपथानुगम् ।
विवृत्तवदनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान् ॥ १२०
ततोऽस्य विविशुर्वक्त्रं समहारथकुञ्जराः ।
सुरसेनाविशद् भीमं पातालोत्तानतालुकम् ॥ १२१
सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा ।
शक्रो दैन्यं समापन्नः श्रान्तबाहुः सवाहनः ॥ १२२
कर्तव्यतां नाथ्यगच्छत् प्रोवाचेदं जनार्दनम् ।
किमनन्तरमत्रास्ति कर्तव्यस्यावशेषितम् ॥ १२३
यदाश्रित्य घटामोऽस्य दानवस्य युयुत्सवः ।
ततो हरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः ॥ १२४
न साम्प्रतं रणस्त्याज्यस्त्वया कातरभैरवः ।
वर्धस्वाशु महामायां पुरन्दर रिपुं प्रति ॥ १२५
मयैष लक्षितो दैत्योऽधिष्ठितः प्राप्तपौरुषः ।
मा शक्र मोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मर प्रभो ॥ १२६
ततः शक्रः प्रकुपितो दानवं प्रति देवराद् ।
नारायणास्त्रं प्रयतो मुमोचासुरवक्षसि ॥ १२७
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत्क्षणात् ।
त्रीणि लक्षणाणि गन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसान् ॥ १२८
ततो नारायणास्त्रं तत् पपातासुरवक्षसि ।
महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्त्राव रुधिरं च सः ॥ १२९
रणागारमिवोद्धारं तत्याजासुरनन्दनः ।
तदस्त्रतेजसा तस्य रूपं दैत्यस्य नाशितम् ॥ १३०
तत एवान्तर्दधे दैत्यो वियत्यनुपलक्षितः ।
गगनस्थः स दैत्येन्द्रः शस्त्रासनमतीन्द्रियम् ॥ १३१
मुमोच सुरसैन्यानां संहारे कारणं परम् ।
प्रासान् परश्वधांश्क्रान् बाणवज्रान् समुद्गरान् ॥ १३२

उस गारुडाख्वासे सहस्रों गरुड प्रकट हो गये। उन गरुडोंने सर्परूपी दैत्यराज जम्भको पकड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिससे उसकी वह माया नष्ट हो गयी ॥ १०९—११८ ३॥

तत्पश्चात् उस मायाके नष्ट हो जानेपर महासुर जम्भने सूर्य एवं चन्द्रमाके मार्गका अनुगमन करनेवाला अपना अनुपम रूप बनाया तथा मुख फैलाकर वह प्रधान-प्रधान देवताओंको निगल जानेके लिये उनकी ओर झपटा। पाताललोकतक फैले हुए तालूवाले उसके भयंकर मुखमें महारथियोंसहित बड़े-बड़े गजराज प्रवेश करने लगे। इस प्रकार सारी देव-सेना उसमें प्रविष्ट होने लगी। इस प्रकार उस बलवान् दानवद्वारा सैनिकोंको ग्रसे जाते हुए देखकर वाहनसमेत इन्द्र अत्यन्त दीन हो गये। उनकी भुजाएँ थक गयी थीं। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, तब उन्होंने भगवान् जनार्दनसे इस प्रकार कहा—‘भगवन्! अब इस विषयमें कौन-सा कर्तव्य शेष रह गया है, जिसका आश्रय लेकर हमलोग युद्धकी इच्छासे प्रेरित हो इस दानवके साथ लोहा लें।’ यह सुनकर उदारबुद्धिवाले श्रीहरि वज्रधारी इन्द्रसे इस प्रकार बोले—‘पुरंदर! इस समय आपको भयभीत होकर रणभूमिसे विमुख नहीं होना चाहिये। आप शीघ्र ही शत्रुके प्रति महामायाका विस्तार करें। यह दैत्य जिस प्रकार पुरुषार्थ प्राप्तकर युद्धभूमिमें डटा हुआ है, इसे मैं जानता हूँ। सामर्थ्यशाली इन्द्र! आप मोहको मत प्राप्त हों, शीघ्र ही दूसरे अल्कका स्मरण कीजिये’॥ ११९—१२६॥

यह सुनकर देवराज इन्द्र उस दानवके प्रति विशेष कुपित हुए और उन्होंने प्रयत्नपूर्वक उस असुरके वक्षःस्थलपर नारायणाख्वाका प्रयोग किया। इस बीचमें मुख फैलाये हुए दैत्यराज जम्भने क्षणमात्रमें तीन लाख गन्धर्वां, किन्नरां और राक्षसोंको निगल लिया। तत्पश्चात् वह नारायणाख्वाउस असुरके वक्षःस्थलपर जा गिरा। उस महान् अल्के आघातसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया और उससे रक्त बहने लगा। तब वह असुरनन्दन वमनकी तरह युद्धस्थलको छोड़कर दूर हट गया। उस अल्के तेजसे उस दैत्यका रूप नष्ट हो गया था। इसके बाद वह दैत्य अदृश्य होकर आकाशमें अन्तर्हित हो गया। फिर आकाशमें स्थित होकर वह दैत्येन्द्र ऐसे इन्द्रियातीत शस्त्रोंको फेंकने लगा, जो सुर-सैनिकोंके संहारमें विशेष कारण थे। उस समय वह क्रूर दानव भाला, फरसा, चक्र, बाण, वज्र,

कुठारान् सह खद्गैश्च भिन्दिपालानयोगुडान् ।
 ववर्ष दानवो रौद्रो हृबन्ध्यानक्षयानपि ॥ १३३
 तैरस्त्रैर्दानिवैर्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः ।
 बाहुभिर्धरणः पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ १३४
 ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैर्वाचलोपमैः ।
 भग्नेषादण्डचक्राक्षै रथैः सारथिभिः सह ॥ १३५
 दुःसंचाराभवत् पृथ्वी मांसशोणितकर्दमा ।
 रुधिरौघहृदावर्ता शवराशिशिलोच्चयैः ॥ १३६
 कबन्धनृत्यसंकुले स्वद्वसास्वकर्दमे
 जगत्र्योपसंहृतौ समे समस्तदेहिनाम् ।
 शृगालगृध्वायसाः परं प्रमोदमादधुः
 क्वचिद्विकृष्टलोचनः शवस्य रौति वायसः ॥ १३७
 विकृष्टपीवरान्त्रकाः प्रयान्ति जम्बुकाः क्वचित्
 क्वचित्स्थितोऽतिभीषणः स्वचञ्चुचर्वितो बकः ।
 मृतस्य मांसमाहरञ्छवजातयश्च संस्थिताः
 क्वचिद् वृको गजासृजं पपौ निलीयतान्त्रतः ॥ १३८
 क्वचित्तुरङ्गमण्डली विकृष्टते शवजातिभिः
 क्वचित् पिशाचजातकैः प्रपीतशोणितासवैः ।
 स्वकामिनीयुतैर्द्रुतं प्रमोदमत्तसम्भ्रमै-
 ममेतदानयाननं खुरोऽयमस्तु मे प्रियः ॥ १३९
 करोऽयमब्जसन्निभो ममास्तु कर्णपूरकः
 सरोषमीक्षतेऽपरा वपां विना प्रियं तदा ।
 परा प्रिया ह्यपाययदृतोष्णशोणितासवं
 विकृष्ट शवचम तत्प्रबद्धसान्द्रपल्लवम् ॥ १४०
 चकार यक्षकामिनी तरुं कुठारपाटितं
 गजस्य दन्तमात्मजं प्रगृह्य कुम्भसम्पुटम् ।
 विपाट्य मौक्तिकं परं प्रियप्रसादमिच्छते
 समांसशोणितासवं पपुश्च यक्षराक्षसाः ॥ १४१

मुद्रर, कुठार, तलबार, भिन्दिपाल और लोहेके गुटकोंकी वर्षा करने लगा । ये सभी अत्र अमोघ और अविनाशी थे । देवसेनाओंपर दानवोंद्वारा छोड़े गये उन भीषण अस्त्रोंके प्रहारसे कटी हुई भुजाओं, कुण्डलमण्डित मस्तकों, हाथियोंके शुण्डादण्डसरीखे ऊरुओं, पर्वतके समान गजराजों तथा टूटे हुए हरसे, पहिये, जुए और सारथियोंसहित रथोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी । वहाँ मांस और रक्तकी कीचड़ जम गयी, रक्तसे बड़े-बड़े गड्ढे भर गये थे, जिसमें लहरें उठ रही थीं और लाशोंकी राशि ऊँची शिलाओं-जैसी दीख रही थी, इस कारण वहाँकी भूमि अगम्य हो गयी थी ॥ १२७—१३६ ॥

उस युद्धभूमिमें यूथ-के-यूथ कबन्ध नृत्य कर रहे थे । उनके शरीरसे बहती हुई मज्जा और रक्तकी कीचड़ जम गयी थी । वह समस्त प्राणियोंके लिये त्रिलोकीके उपसंहारके समान दीख रही थी । उसमें सियार, गीध और कौवे परम प्रसन्नताका अनुभव कर रहे थे । कहीं कौवा लाशकी आँखको नोचता हुआ उच्च स्वरसे बोल रहा था । कहीं शृगाल मोटी-मोटी अँतड़ियोंको खींचते हुए भाग रहे थे । कहीं अपनी चोंचसे मांसको चबाता हुआ अत्यन्त भयानक बगुला बैठा हुआ था । कहीं विभिन्न जातिके कुत्ते मरे हुए वीरकी लाशसे मांस खींच रहे थे । कहीं अँतड़ीमें छिपा हुआ भेड़िया गजराजका खून पी रहा था । कहीं विभिन्न जातिवाले कुत्ते घोड़ोंकी लाशोंको खींच रहे थे । कहीं रुधिररूप आसवका पान करनेवाले पिशाच-जातिके लोग अपनी पल्तियोंके साथ प्रमोदसे उन्मत्त हो रहे थे । (कोई ल्ली अपने पतिसे कह रही थी—) मेरे लिये वह मुख ले आओ । (कोई कह रही थी—) मेरे लिये वह खुर परम प्रिय है । (कोई कह रही थी—) यह कमल-सदृश हथेली मेरे लिये कर्णपूरका काम देगी । दूसरी ल्ली उस समय पतिके निकट रहनेके कारण क्रोधपूर्वक चर्बीकी ओर देख रही थी । दूसरी पिशाचिनी शवके चमड़ेको फाड़कर बनाये गये हरे पत्तेके दोनेमें गरमागरम रुधिररूप आसव रखकर अपने पतिको पिला रही थी ॥ १३७—१४० ॥

फिर किसी यक्षपतीने वृक्षको कुठारसे काटकर गिरा दिया और गजराजके दाँतको हाथमें लेकर उससे गण्डस्थलको फोड़कर गजमुक्ता निकाल ली । फिर उससे वह अपने पतिको प्रसन्न करनेकी इच्छा करने लगी । उस समय यक्षों और राक्षसोंके समूह मांस एवं रुधिरसहित आसवका पान कर रहे थे ।

मृतस्य केशवासितं रसं प्रगृह्य पाणिना
प्रिया विमुक्तजीवितं समानयासृगासवम्।
न पथ्यतां प्रयाति मे गतं श्मशानगोचरं
नरस्य तज्जहात्यसौ प्रशस्य किन्नराननम्॥ १४२
स नाग एष नो भयं दधाति मुक्तजीवितो
न दानवस्य शक्यते मया तदेकयाऽननम्।
इति प्रियाय वल्लभा वदन्ति यक्षयोषितः
परे कपालपाणयः पिशाचयक्षराक्षसाः॥ १४३
वदन्ति देहि देहि मे ममातिभक्ष्यचारिणः
परेऽवतीर्य शोणितापगासु धौतमूर्तयः।
पितृन् प्रतर्ष्य देवताः समर्चयन्ति चामिषे-
र्गजोङ्गुपे सुसंस्थितास्तरन्ति शोणितं हृदम्॥ १४४
इति प्रगाढसङ्कटे सुरासुरे सुसङ्गरे
भयं समुज्जय दुर्जया भटाः स्फुटन्ति मानिनः॥ १४५
ततः शक्रो धनेशश्च वरुणः पवनोऽनलः।
यमोऽपि निर्वृतिश्चापि दिव्यास्त्राणि महाबलाः॥ १४६
आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवानभिसंध्य ते।
अस्त्राणि व्यर्थतां जगमुर्देवानां दानवान् प्रति॥ १४७
संरम्भेणाप्ययुध्यन्त संहतास्तुमुलेन च।
गतिं न विविदुश्चापि श्रान्ता दैत्यस्य देवताः॥ १४८
दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गा ह्यकिंचित्करतां गताः।
परस्परं व्यलीयन्त गावः शीतार्दिता इव॥ १४९
तदवस्थान् हरिर्दृष्ट्वा देवावशक्मुवाच ह।
ब्रह्मास्त्रं स्मर देवेन्द्र यस्यावध्यो न विद्यते।
विष्णुना चोदितः शक्रः सस्मारास्त्रं महौजसम्॥ १५०
सम्पूजितं नित्यमरातिनाशनं
समाहितं बाणममित्रधातने।
धनुष्यज्ये विनियोज्य बुद्धिमा-
नभूत् ततो मन्त्रसमाधिमानसः॥ १५१

एक पिशाचिनी मृतकके रुधिरको, जिसमें बाल पड़े हुए थे, हाथमें लेकर अपने पतिसे कह रही थी—‘मेरे लिये किसी दूसरे मरे हुए जीवका रुधिररूपी आसव ले आओ। इस शमशानभूमिमें पड़ा हुआ कोई भी शव मेरे लिये पथ्य नहीं हो सकता।’ ऐसा कहकर उसने किनरके मुखकी प्रशंसा करके मनुष्यकी लाशको छोड़ दिया। (कोई कह रही थी—) वह हाथी यद्यपि मर चुका है, तथापि हमलोगोंको भयभीत कर रहा है। (कोई कह रही थी—) मैं अकेली दानवके उस मुखको नहीं खा सकती। इस प्रकार यक्षोंकी प्रियतमा पत्नियाँ अपने पतियोंसे कह रही थीं। अन्यान्य पिशाच, यक्ष और राक्षस हाथमें कपाल लेकर कह रहे थे—‘अरे मुझसे भी अधिक खानेवाले पिशाचो! मुझे भी कुछ दे दो।’ दूसरे कुछ पिशाच रुधिरसे भरी हुई नदियोंमें स्नान करके पवित्र हो पितरों और देवताओंका तर्पण करनेके बाद मांसद्वारा उनकी अर्चना कर रहे थे। कुछ हाथीरूपी नौकापर बैठकर खूनसे भरे हुए कुण्डोंको पार कर रहे थे। इस प्रकार घोर संकटसे भरे हुए उस देवासुर-संग्राममें दुर्जय योद्धा निर्भय होकर लोहा ले रहे थे॥ १४१—१४५॥

तदनन्तर महाबली इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, यम और निर्वृति—इन सभी लोगोंने आकाशमें दानवोंको लक्ष्य करके दिव्यास्त्रोंका प्रहार करने लगे, किंतु दानवोंके प्रति छोड़े गये देवताओंके वे सभी अस्त्र व्यर्थ हो गये। यद्यपि देवगण संगठित होकर अत्यन्त क्रोधसे तुमुल युद्ध कर रहे थे, तथापि वे उस दैत्यकी गतिको न समझ सके। उस समय वे थकावटसे चूर हो गये थे तथा उनके सारे अङ्ग दैत्यके अस्त्रोंसे विदीर्ण हो गये थे, अतः वे किंकरत्व्यविमूढ़ हो गये। तब वे शीतसे पीड़ित हुई गौओंकी तरह परस्पर एक-दूसरेके पीछे छिपने लगे। देवताओंको ऐसी दशामें पड़ा हुआ देखकर श्रीहरिने इन्द्रसे कहा—‘देवेन्द्र! अब आप उस ब्रह्मास्त्रका स्मरण कीजिये, जिसके लिये कोई अवध्य है ही नहीं अर्थात् जो सभीका वध कर सकता है।’ इस प्रकार विष्णुद्वारा प्रेरित किये जानेपर इन्द्रने उस महान् ओजस्वी अस्त्रका स्मरण किया॥ १४६—१५०॥

तदनन्तर बुद्धिमान् इन्द्रने अपने मनको मन्त्र-समाधिमें लीन कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य पूजित होनेवाले शत्रुसंहारक बाणको अपने शत्रुविनाशक अजेय धनुषपर रखकर

स मन्त्रमुच्चार्य यतान्तराशयो
 वधाय दैत्यस्य धियाभिसंध्य तु ।
विकृष्ट कर्णान्तमकुण्ठदीधितिं
 मुमोच वीक्ष्याम्बरमार्गमुन्मुखः ॥ १५२
अथासुरः प्रेक्ष्य महास्त्रमाहितं
 विहाय मायामवनौ व्यतिष्ठत ।
प्रवेपमाणेन मुखेन शुष्यता
 बलेन गात्रेण च सम्भ्रमाकुलः ॥ १५३
ततस्तु तस्यास्त्रवराभिमन्त्रितः
 शरोऽर्थचन्द्रप्रतिमो महारणे ।
पुरन्दरस्यासनबन्धुतां गतो
 नवार्कबिम्बं वपुषा विडम्बयन् ॥ १५४
किरीटकोटिस्फुटकान्तिसंकटं
 सुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम् ।
प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्धजं
 पपात जम्भस्य शिरः सकुण्डलम् ॥ १५५
तस्मिन् विनिहते जम्भे दानवेन्द्रः पराङ्मुखाः ।
ततस्ते भग्नसंकल्पाः प्रयुर्युत्र तारकः ॥ १५६
तांस्तु त्रस्तान् समालोक्य श्रुत्वा रोषमगात्परम् ।
स जम्भदानवेन्द्रं तु सुरै रणमुखे हतम् ॥ १५७
सावलेपं संसरभ्यं सर्गवं सपराक्रमम् ।
साविष्कारमनाकारं तारको भावमाविशत् ॥ १५८
स जैत्रं रथमास्थाय सहस्रेण गरुत्मताम् ।
संरम्भाद् दानवेन्द्रस्तु सुरै रणमुखे गतः ॥ १५९
सर्वायुधपरिष्कारः सर्वास्त्रपरिरक्षितः ।
त्रैलोक्यत्रश्चिद्दिसम्पन्नः सुविस्तृतमहाननः ॥ १६०
रणायाभ्यपतत् तूर्णं सैन्येन महतावृतः ।
जम्भास्त्रक्षतसर्वाङ्गं त्यक्तवैरावतदन्तिनम् ॥ १६१
सञ्जं मातलिना गुप्तं रथमिन्द्रस्य तेजसा ।
तस्महेमपरिष्कारं महारत्नसमन्वितम् ॥ १६२
चतुर्योजनविस्तीर्णं सिद्धसङ्घपरिष्कृतम् ।
गन्धर्वकिन्नरोदीतमप्सरोनृत्यसंकुलम् ॥ १६३

मन्त्रका उच्चारण करते हुए बुद्धिद्वारा दैत्यके वधकी प्रतिज्ञा की और धनुषको कानतक खींचकर ऊपर मुख करके आकाशमार्गको देखते हुए उस परम तेजस्वी बाणको छोड़ दिया । तदुपरान्त जब जम्भासुरने उस महान् अस्त्रको छोड़ते हुए देखा, तब वह अपनी मायाको त्यागकर भूतलपर स्थित हो गया । उस समय उसका शरीर काँप रहा था, मुख सूख गया था और बल क्षीण हो गया था । इस प्रकार वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा । इसी बीच ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित हुआ वह अर्धचन्द्राकार बाण उस महासमरमें इन्द्रके धनुषसे छूटकर अपने शरीरसे उदयकालीन सूर्यमण्डलकी विडम्बना करता हुआ जम्भासुरके गलेपर जा गिरा । उसके आधातसे जम्भासुरका कुण्डलमण्डित सिर, जो किरीटके सिरेसे निकलती हुई कान्तिसे व्यास, नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे अधिवासित और बिखरे हुए धूमसे युक्त अग्निकी-सी कान्तिवाले केशोंसे सुशोभित था, भूतलपर गिर पड़ा ॥ १५१—१५५ ॥

इस प्रकार उस जम्भासुरके मारे जानेपर सभी दानवेन्द्र युद्धसे विमुख हो गये । उनके संकल्प भन हो गये, तब वे तारकके पास चले गये । उन्हें भयभीत देखकर तथा युद्धके मुहानेपर दानवराज जम्भको देवताओंद्वारा मारा गया सुनकर तारक परम कुद्ध हो उठा । उस समय तारकमें अभिमान, क्रोध, गर्व, पराक्रम, आविष्कार और अनाकार आदि भाव लक्षित हो रहे थे । तब दानवराज तारक हजारों गरुड़ोंके समान वेगशाली एवं जयशील रथपर सवार हो क्रोधपूर्वक रणके मुहानेपर देवताओंसे युद्ध करनेके लिये चला । उस समय वह सभी प्रकारके अस्त्रोंसे सुसज्जित, सभी प्रकारके अस्त्रोंसे पूर्णतया सुरक्षित, त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे सम्पन्न तथा विस्तृत एवं विशाल मुखसे सुशोभित था । वह विशाल सेनाके साथ शीघ्र ही युद्धके लिये आ डटा । तब जिसके सारे अङ्ग जम्भासुरके अस्त्रसे क्षत-विक्षत हो गये थे, उस गजराज ऐरावतको छोड़कर इन्द्र रथपर सवार हो गये । वह रथ इन्द्रके तेजसे सुरक्षित और मातलिद्वाय सजाया गया था । वह तपाये हुए स्वर्णसे विभूषित था । उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे । वह चार योजन विस्तृत था । उसपर सिद्धगण बैठे हुए थे । उसमें गन्धर्व और किंनर गान कर रहे थे तथा अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं ।

सर्वायुधमसम्बाधं विचित्ररचनोज्ज्वलम् ।
 तं रथं देवराजस्य परिवार्य समंततः ॥ १६४
 दंशिता लोकपालास्तु तस्थुः सगरुडध्वजाः ।
 ततश्चाल वसुधा ततो रूक्षो मरुद् वर्वौ ॥ १६५
 ततोऽम्बुध्य उद्धूतास्ततो नष्टा रविप्रभा ।
 ततस्तमः समुद्भूतं नातोऽदृश्यन्त तारकाः ॥ १६६
 ततो ज्ज्वलुरस्त्राणि ततोऽकम्प्यत वाहिनी ।
 एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घस्तु चैकतः ॥ १६७
 लोकावसादमेकत्र जगत्यालनमेकतः ।
 चराचराणि भूतानि सुरासुरविभेदतः ॥ १६८
 तद् द्विधाप्येकतां यातं ददृशुः प्रेक्षका इव ।
 यद्वस्तु किंचिल्लोकेषु त्रिषु सत्तास्वरूपकम् ।
 ततत्रादृश्यदखिलं खिलीभूतविभूतिकम् ॥ १६९
 अस्त्राणि तेजांसि धनानि धैर्य
 सेनाबलं वीर्यपराक्रमौ च ।

सत्त्वौजसां तन्निकरं बभूव
 सुरासुराणां तपसो बलेन ॥ १७०
 अथाभिमुखमायान्तं नवभिर्नतपर्वभिः ।
 बाणैरनलकल्पाग्रैर्बिभिदुस्तारकं हृदि ॥ १७१
 स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रः सुरबाणान् गतान् हृदि ।
 नवभिर्नवभिर्बाणैः सुरान् विव्याध दानवः ॥ १७२
 जगद्वरणसम्भूतैः शत्यैरिव पुरःसरैः ।
 ततोऽच्छिन्नं शरव्रातं संग्रामे मुमुचुः सुराः ॥ १७३
 अनन्तरं च कान्तानामश्रुपातमिवानिशम् ।
 तदप्राप्तं वियत्येव नाशयामास दानवः ॥ १७४
 शैर्यथा कुचरितः प्रख्यातं परमागतम् ।
 सुनिर्मलं क्रमायातं कुपुत्रः स्वं महाकुलम् ॥ १७५
 ततो निवार्य तद् बाणजालं सुरभुजेरितम् ।
 बाणैव्योम दिशः पृथ्वीं पूरयामास दानवः ॥ १७६

चिच्छेद पुङ्कुदेशेषु स्वके स्थाने च लाघवात् ।
 बाणजालैः सुतीक्ष्णाग्रैः कङ्कबहिणवाजितैः ॥ १७७
 कर्णान्तकृष्टैर्विमलैः सुवर्णरजतोज्ज्वलैः ।
 शास्त्रार्थैः संशयप्राप्तान् यथार्थान् वै विकल्पितैः ॥ १७८

वह सभी प्रकारके अस्त्रोंसे भरा हुआ था तथा उसमें उज्ज्वल रंगकी विचित्र रचना की गयी थी । देवराजके उस रथको गरुडध्वज भगवान् विष्णुसहित सभी लोकपाल कवचसे सुसज्जित हो चारों ओरसे धेरकर खड़े थे ॥ १५६—१६४ ३ ॥

तदनन्तर पृथ्वी काँपने लगी । रुखी हवा चलने लगी । समूद्रोंमें ज्वार उठने लगा । सूर्यकी कत्ति नष्ट हो गयी । चारों ओर घना अन्धकार छा गया, जिससे ताराओंका दीखना बंद हो गया । अकस्मात् अस्त्र प्रकाशित हो उठे और सेना काँपने लगी । एक ओर दैत्यराज तारक था तो दूसरी ओर देवताओंका समूह डटा था । एक ओर लोकोंका विनाश था तो दूसरी ओर जगत्का पालन । इस प्रकार वहाँ सुर और असुरके भेदसे सभी चराचर प्राणी उपस्थित थे । वे दो भागोंमें विभक्त होनेपर भी दर्शकोंकी भाँति एकीभूत-से दिखायी पड़ रहे थे । तीनों लोकोंमें जितनी कुछ सत्तासम्पत्त वस्तुएँ थीं, वे सब-की-सब अपने एकत्र ऐश्वर्यसहित वहाँ दीख रही थीं । बल एवं पराक्रमशाली देवताओं और असुरोंकी तपस्याके बलसे वहाँ तेजस्वी अस्त्र, धन, धैर्य, सेनाबल, साहस और पराक्रमका जमघट लगा हुआ था । तत्पश्चात् तारकको सम्मुख धावा करते हुए देखकर इन्द्रादि देवगणोंने ऐसे नौ बाणोंसे, जिनकी गाँठें झुकी हुई थीं तथा जिनके अग्रभाग अग्नि-सरीखे तेजस्वी थे, तारकके हृदयको विदीर्ण कर दिया । तब दैत्यराज तारकने अपने हृदयमें गड़े हुए देवताओंके उन बाणोंकी कुछ भी परवा न कर प्रत्येक देवताको क्रमशः ऐसे नौ-नौ बाणोंसे, जो जगत्का विनाश करनेमें समर्थ तथा अग्रभागमें कीलकी भाँति नुकीले थे, बींध दिया । तदनन्तर देवगण संग्रामभूमिमें वियोगिनी स्त्रीके दिन-रात गिरते हुए अश्रुपातकी तरह लगातार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, किंतु दानवराज तारकने उन बाण-वृष्टिको अपने पास पहुँचनेसे पूर्व आकाशमें ही अपने बाणोंके प्रहारसे इस प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे कुपुत्र दुराचरणोंसे अपने परम्परागत परम पावन, सुनिर्मल एवं प्रतिष्ठित महान् कुलको नष्ट कर देता है ॥ १६५—१७५ ॥

तत्पश्चात् दानवराजने देवताओंकी भुजाओंसे छोड़े गये उस बाणसमूहका निवारण कर अपने बाणोंसे आकाश, पृथ्वी और दिशाओंको भर दिया । तदुपरान्त उसने अपने स्थानपर स्थित रहते हुए ही हाथकी फुर्तीसे छोड़े गये बाणसमूहोंद्वारा देवताओंके बाणोंके पुच्छभागको उसी प्रकार काट दिया, जैसे विकल्पित शास्त्रार्थद्वारा संशयग्रस्त यथार्थ तत्त्व कट जाते हैं । उसके वे बाण अत्यन्त निर्मल, सुवर्ण और चाँदीके समान उज्ज्वल और अत्यन्त तीखे नोकवाले थे, उनमें कंक और मोरके पंख लगे हुए थे तथा वे धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये

ततः शतेन बाणानां शक्रं विव्याध दानवः ।
 नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम् ॥ १७९
 दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च ।
 धनदं चैव सप्तत्या वरुणं च तथाष्ट्रभिः ॥ १८०
 विंशत्या निर्त्रैति दैत्यः पुनश्चाष्टाभिरेव च ।
 विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्दशभिः शैरः ॥ १८१
 तथा च मातलिं दैत्यो विव्याध त्रिभिराशुगः ।
 गरुडं दशभिश्चैव स विव्याध पतत्रिभिः ॥ १८२
 पुनश्च दैत्यो देवानां तिलशो नतपर्वभिः ।
 चकार वर्मजातानि चिच्छेद च धनूषि तु ।
 ततो विकवचा देवा विधनुष्काः शैरः कृताः ॥ १८३
 अथान्यानि चापानि तस्मिन् सरोषा
 रणे लोकपाला गृहीत्वा समंतात् ।
 शैररक्षयैर्दानवेन्द्रं ततक्षु-
 स्तदा दानवोऽमर्षसंरक्तनेत्रः ॥ १८४
 शरानग्निकल्पान् वर्वर्षमिराणां
 ततो बाणमादाय कल्पानलाभम् ।
 जघानोरसि क्षिप्रमिन्द्रं सुबाहुं
 महेन्द्रोऽप्यकम्पद् रथोपस्थ एव ॥ १८५
 विलोक्यान्तरिक्षे सहस्रार्कविम्बं
 पुनर्दानवो विष्णुमुद्घूतवीर्यम् ।
 शराभ्यां जघानांसमूले सलीलं
 ततः केशवस्यापतच्छार्ङ्गमग्रे ॥ १८६
 ततस्तारकः प्रेतनाथं पृष्ठत्कै-
 र्वसुं तस्य सव्ये स्मरन् क्षुद्रभावम् ।
 शैररग्निकल्पैर्जलेशस्य कायं
 रणेऽशोषयद् दुर्जयो दैत्यराजः ॥ १८७
 शैररग्निकल्पैश्चकाराशु दैत्य-
 स्तथा राक्षसान् भीतभीतान् दिशासु ।
 पृष्ठत्कैश्च रूक्षैर्विकारप्रयुक्तं
 चकारानिलं लीलयैवासुरेशः ॥ १८८

थे । इसके बाद दानवराज तारकने सौ बाणोंसे इन्द्रको, सत्तर बाणोंसे नारायणको, नब्बे बाणोंसे अग्निको, दस बाणोंसे वायुके मस्तकको, दस बाणोंसे यमको, सत्तर बाणोंसे कुबेरको, आठ बाणोंसे वरुणको तथा अट्टाईस बाणोंसे निर्त्रैतिको घायल कर दिया । फिर उस दैत्यने प्रत्येकको पुनः दस-दस बाणोंसे बींध दिया । तत्पश्चात् उस दैत्यने तीन बाणोंसे मातलिपर और दस बाणोंसे गरुडपर गहरा आघात किया तथा झुकी हुई गाँठोंवाले बाणोंके प्रहारसे देवताओंके कवचोंको काटकर तिल-जैसा बना दिया और उनके धनुषोंको भी काट दिया । इस प्रकार बाणोंके आघातसे देवगण कवच और धनुषसे रहित कर दिये गये ॥ १७६—१८३ ॥

तदनन्तर उस युद्धमें क्रोधसे भरे हुए लोकपालगण दूसरा धनुष लेकर चारों ओरसे अमोघ बाणोंद्वारा दानवेन्द्र तारकको घायल करने लगे । तब उस दानवराजके नेत्र अमर्षसे लाल हो गये । फिर तो वह देवताओंपर अग्नि-सदृश दाहक बाणोंकी वर्षा करने लगा । पुनः उसने प्रलयकालीन अग्निके समान एक विकराल बाण लेकर बड़ी शीघ्रतासे सुन्दर भुजावाले इन्द्रकी छातीपर प्रहार किया । उस आघातसे रथके पिछले भागमें बैठे हुए महेन्द्र भी काँप उठे । पुनः अन्तरिक्षमें हजारों सूर्य-बिम्बकी तरह उद्दीप होते हुए अद्भुत पराक्रमी विष्णुको देखकर उस दानवने अनायास ही दो बाणोंसे उनके कंधोंके मूलभागपर ऐसी गहरी चोट की, जिससे केशवका शार्ङ्गधनुष उनके आगे गिर पड़ा । तत्पश्चात् अजेय दैत्यराज तारकने रणभूमिमें प्रेतनाथ यम तथा उनके दाहिने भागमें स्थित वसुको कुछ भी न गिनते हुए उन्हें बाणोंसे बींध दिया और अग्नि-सदृश दाहक बाणोंसे वरुणके शरीरको सुखा दिया तथा शीघ्र ही अग्नि-सदृश बाणोंसे राक्षसोंको भयभीत कर दिशाओंमें खेड़ दिया । इसी प्रकार उस असुरराजने खेल-ही-खेलमें रुखे बाणोंके आघातसे वायुदेवको भी विकृत कर दिया ।

क्षणाल्लब्धचित्ताः स्वयं विष्णुशक्रा-

नलाद्याः सुसंहत्य तीक्ष्णौः पृष्ठत्कैः ।

प्रचक्रुः प्रचण्डेन दैत्येन सार्थ-

महासङ्गरं सङ्गरग्रासकल्पम् ॥ १८९

अथानन्य चापं हरिस्तीक्ष्णबाणौ-

हेन्तसारथिं दैत्यराजस्य हृद्यम् ।

ध्वजं धूमकेतुः किरीटं महेन्द्रो

धनेशो धनुः काञ्छनानद्वपृष्ठम् ।

यमो बाहुदण्डं रथाङ्गानि वायु-

र्निशाचारिणामीश्वरस्यापि वर्म ॥ १९०

दृष्टा तद् युद्धमरैरकृत्रिमपराक्रमम् ।

दैत्यनाथः कृतं संख्ये स्वबाहुयुगबान्धवः ॥ १९१

मुमोच मुद्गरं भीमं सहस्राक्षाय सङ्गरे ।

दृष्टा मुद्ररमायान्तमनिवार्यमथाम्बरे ॥ १९२

रथादाप्लुत्य धरणीमगमत् पाकशासनः ।

मुद्रोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्वनः ॥ १९३

स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः ।

गृहीत्वा पट्टिशं दैत्यो जघानोरसि केशवम् ॥ १९४

स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसाद विचेतनः ।

खड्गेन राक्षसेन्द्रस्य निचकर्त च वाहनम् ॥ १९५

यमं च पातयामास भूमौ दैत्यो भुशुण्डना ।

वहिं च भिन्दिपालेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १९६

वायुं च दोभ्यामुत्क्षिप्य पातयामास भूतले ।

धनेशं च धनुष्कोट्या कुट्टयामास कोपनः ॥ १९७

ततो देवनिकायानामेकैकं समरे ततः ।

जघानास्त्रैरसंख्यैर्दैत्येन्द्रोऽमितविक्रमः ॥ १९८

लब्धसंज्ञः क्षणाद् विष्णुशक्रं जग्राह दुर्धरम् ।

दानवेन्द्रवसासिक्तं पिशिताशनकोन्मुखम् ॥ १९९

मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः ।

पपात चक्रं दैत्यस्य हृदये भास्करद्युतिः ॥ २००

व्यशीर्यत ततः काये नीलोत्पलमिवाशमनि ।

ततो वज्रं महेन्द्रस्तु प्रमुमोचार्चितं चिरम् ॥ २०१

थोड़ी देर बाद चेतना प्राप्त होनेपर स्वयं भगवान् विष्णु, इन्द्र, अग्नि आदि देवगण सुसंगठित होकर तीखे बाणोंद्वारा उस प्रचण्ड दैत्यके साथ विषके ग्रासके समान भीषण संग्राम करने लगे। उस समय श्रीहरिने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तीखे बाणोंद्वारा दैत्यराजके प्रिय सारथिको यमलोकका पथिक बना दिया। पुनः अग्निने उसके ध्वजको, महेन्द्रने किरीटको, कुबेरने पृष्ठभागपर स्वर्णजटित धनुषको, यमने भुजाओंको और वायुने रथाङ्गों तथा उस असुरराजके कवचको भी काट गिराया ॥ १८४—१९० ॥

तदनन्तर अपनी दोनों भुजाओं ही जिसकी सहायक थीं, उस दैत्यराज तारकने युद्धस्थलमें देवताओंद्वारा किये गये उस युद्ध और उनके सत्य पराक्रमको देखकर रणभूमिमें इन्द्रके ऊपर अपना भयंकर मुद्रर चला दिया। उस अनिवार्य मुद्ररको आकाशमार्गसे आते हुए देखकर इन्द्र रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़े हो गये और वह मुद्रर कठोर शब्द करता हुआ रथके पिछले भागपर जा गिरा। उसने रथको तो चूर्ण कर दिया, पर मातलिके प्राण बच गये। फिर उस दैत्यने पट्टिश लेकर केशवकी छातीपर आधात किया, जिससे वे भी चेतनारहित होकर गरुडके कंधेपर लुढ़क गये। पुनः उस दैत्यने तलवारसे राक्षसराज निर्वृतिके वाहनको काट डाला, भुशुण्डके प्रहारसे यमराजको धराशायी कर दिया, भिन्दिपालसे अग्निके मस्तकपर चोट की, वायुको दोनों हाथोंसे उठाकर भूतलपर पटक दिया और कुपित होकर कुबेरको धनुषके सिरेसे कूट डाला। तदुपरान्त उस अनुपम पराक्रमी दैत्यराजने समर भूमिमें देवसमूहोंमेंसे प्रत्येकपर असंख्य अस्त्रोंसे प्रहार किया ॥ १९१—१९८ ॥

तत्पश्चात् क्षणभर बाद चेतना प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णुने अपने दुर्धर्ष चक्रको, जो दानवेन्द्रोंकी मज्जासे अभिषिक्त तथा मांसभोजी असुरोंका संहार करनेके लिये उन्मुख था, हाथमें लिया। फिर केशवने उसे सुदृढ़रूपसे दानवराजके वक्षःस्थलपर छोड़ दिया। वह सूर्यके समान तेजस्वी चक्र दैत्यके हृदयपर जा गिरा, किंतु उसके शरीरपर गिरते ही वह इस प्रकार टूट-फूट गया, जैसे पत्थरपर गिरा हुआ नीला कमल छिन्न-भिन्न हो जाता है।

यस्मिन्जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्ररणे त्वभूत्।
 तारकस्य सुसम्प्राप्य शरीरं शौर्यशालिनः ॥ २०२
 व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डतां गतम्।
 विनाशमगमन्मुक्तं वायुनासुरवक्षसि ॥ २०३
 ज्वलितं ज्वलनाभासमङ्कुशं कुलिशं यथा।
 विनाशमागतं दृष्ट्वा वायुश्चाङ्कुशमाहवे ॥ २०४
 रुष्टः शैलेन्द्रमुत्पाद्य पुष्पितद्रुमकन्दरम्।
 चिक्षेप दानवेन्द्राय पञ्चयोजनविस्तृतम् ॥ २०५
 महीधरं तमायान्तं दैत्यः स्मितमुखस्तदा।
 जग्राह वामहस्तेन बालकन्दुकलीलया ॥ २०६
 ततो दण्डं समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः।
 दैत्येन्द्रं मूर्धि चिक्षेप भ्राम्य वेगेन दुर्जयः ॥ २०७
 सोऽसुरस्यापत्न्मूर्धिन दैत्यस्तं च न बुद्ध्वान्।
 कल्पान्तदहनालोकामजव्यां ज्वलनस्ततः ॥ २०८
 शक्तिं चिक्षेप दुर्धर्षा दानवेन्द्राय संयुगे।
 नवा शिरीषमालेव सास्य वक्ष्यस्यराजत ॥ २०९
 ततः खड्गं समाकृष्य कोपादाकाशनिर्मलम्।
 भासितासितदिग्भागं लोकपालोऽपि निरैति: ॥ २१०
 चिक्षेप दानवेन्द्राय तस्य मूर्धि पपात च।
 पतितश्चागमत् खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम् ॥ २११
 जलेशस्तूग्रदुर्धर्षं विषपावकभैरवम्।
 मुमोच पाशं दैत्यस्य भुजबन्धाभिलाषकः ॥ २१२
 स दैत्यभुजमासाद्य सर्पः सद्यो व्यपद्यत।
 स्फुटितक्रकचक्रूरदशनालिर्महाहनुः ॥ २१३
 ततोऽशिवनौ समरुतः ससाध्याः समहोरगाः।
 यक्षराक्षसगन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः ॥ २१४
 जघ्नुदैत्येश्वरं सर्वे सम्भूय सुमहाबलाः।
 न चास्त्राण्यस्य सज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे ॥ २१५
 ततो रथादवप्लुत्य तारको दानवाधिपः।
 जघान कोटिशो देवान् करपार्षिणभिरेव च ॥ २१६

तदुपरान्त महेन्द्रने अपने चिरकालसे अर्चित वज्रको छोड़ा, जिसपर उन्हें इस दानवराजके साथ युद्धमें विजयकी पूरी आशा थी, परंतु वह पराक्रमशाली तारकके शरीरसे टकराकर चिनगारियाँ बिखेरता हुआ सैकड़ों टुकड़ोंमें तितर-बितर हो गया। फिर वायुने उस असुरके वक्षःस्थलपर अग्निके समान तेजस्वी प्रज्वलित अंकुश फेंका, किंतु वह भी वज्रकी ही भाँति विनष्ट हो गया। इस प्रकार युद्धभूमिमें अपने अंकुशको विनष्ट हुआ देखकर वायुने क्रुद्ध हो खिले हुए वृक्षों एवं कन्दराओंसे युक्त एक विशाल पर्वतको उखाड़ लिया, जो पाँच योजनमें विस्तृत था। फिर उसे दानवराजपर फेंक दिया। उस समय उस पर्वतको आते हुए देखकर दैत्यने मुसकराते हुए बालकोंकी गेंदक्रीडाके समान उसे बायें हाथसे पकड़ लिया। तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए दुर्जय यमराजने अपना दण्ड उठाया और उसे वेगपूर्वक घुमाकर दैत्येन्द्रके मस्तकपर फेंक दिया। वह दण्ड असुरके मस्तकपर गिरा तो अवश्य, परंतु दैत्यको उसका कुछ भी ज्ञान न हुआ ॥ १९९—२०७ ३ ॥

तदुपरान्त अग्निने युद्धभूमिमें दानवेन्द्रपर अपनी शक्ति छोड़ी, जो प्रलयकालीन अग्निके समान तेजस्विनी, अजेय और दुर्धर्ष थी, किंतु वह उसके वक्षःस्थलपर नवीन शिरीष-पुष्पोंकी मालाकी तरह सुशोभित हुई। तत्पश्चात् लोकपाल निरैतिने भी अपने आकाशके समान निर्मल एवं समस्त दिशाओंको उद्भासित करनेवाले खड्गको म्यानसे खींचकर उस दानवेन्द्रपर चला दिया और वह उसके मस्तकपर जा गिरा, परंतु गिरते ही वह खड्ग शीघ्र ही सैकड़ों टुकड़ोंमें चूर-चूर हो गया। इसके बाद वरुणने उस दैत्यकी भुजाओंको बाँध देनेकी अभिलाषासे अपना दुर्धर्ष तथा विष एवं अग्निके समान भयंकर पाश फेंका, किंतु वह सर्प-पाश दैत्यकी भुजापर पहुँचकर तुरंत ही नष्ट हो गया, उसकी आरेके समान क्रूर दन्तपङ्कि तथा विशाल टुड़ी टूट-फूटकर नष्ट हो गयी। तदनन्तर अशिवनीकुमार, मरुदण्ड, साध्यगण, बड़े-बड़े नाग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व—ये सभी महाबली देवगण हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र धारण कर एक साथ उस दैत्यराजपर प्रहार करने लगे, परंतु वज्र एवं पर्वत-सरीखे उसके शरीरपर उन अस्त्रोंका कोई प्रभाव न पड़ा ॥ २०८—२१५ ॥

तत्पश्चात् दानवराज तारकने रथसे कूदकर धूंसों एवं पैरोंकी ठोकरोंसे करोड़ों देवताओंका कचूमर निकाल

हतशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्धुवुः ।
दिशो भीतानि संत्यज्य रणोपकरणानि तु ॥ २१७
लोकपालांस्ततो दैत्यो बबन्धेन्द्रमुखान् रणे ।
सकेशवान् दृढैः पाशैः पशुमारः पशूनिव ॥ २१८
स भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम् ।
सिद्धगन्धर्वसंघृष्टविपुलाचलमस्तकम् ॥ २१९
स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीस्तद्देशे प्राविशत् स्वपुरं यथा ॥ २२०
निषसादासने पद्मारागरत्नविनिर्मिते ।
ततः किन्नरगन्धर्वनागनारीविनोदितैः ।
क्षणं विनोद्यमानस्तु प्रचलन्मणिकुण्डलः ॥ २२१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे तारकजयलाभो नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें तारक-जयलाभ नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५३ ॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

तारकके आदेशसे देवताओंकी बन्धन-मुक्ति, देवताओंका ब्रह्माके पास जाना और अपनी विपत्तिगाथा सुनाना, ब्रह्माद्वारा तारक-वधके उपायका वर्णन, रात्रिदेवीका प्रसङ्ग, उनका पार्वतीरूपमें जन्म, काम-दहन और रतिकी प्रार्थना, पार्वतीकी तपस्या, शिवपार्वती-विवाह तथा पार्वतीका वीरकको पुत्रस्तपमें स्वीकार करना*

सूत उवाच

प्रादुरासीत् प्रतीहारः शुभ्रनीलाम्बुजाम्बरः ।
स जानुभ्यां महीं गत्वा पिहितास्यः स्वपाणिना ॥ १
उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम् ।
दैत्येन्द्रमर्कवृद्धानां विभ्रतं भास्वरं वपुः ॥ २
कालनेमिः सुरान् बद्धांश्चादाय द्वारि तिष्ठति ।
स विज्ञापयति स्थेयं क्व बन्दिभिरिति प्रभो ॥ ३

दिया । मरनेसे बचे हुए देवताओंके सैनिकसमूह भयभीत हो युद्ध-सामग्रियोंका त्याग कर चारों दिशाओंमें भाग खड़े हुए । तब उस दैत्यने रणभूमिमें केशवसहित इन्द्र आदि सभी लोकपालोंको सुदृढ़ पाशसे उसी प्रकार बाँध लिया, जैसे कसाई पशुओंको बाँध लेता है । फिर वह रथपर बैठकर अपने उस निवासस्थानकी ओर चल पड़ा, जो सिद्धों एवं गन्धर्वोंसे सेवित एक विशाल पर्वतके शिखरपर अवस्थित था । उस समय उसके मनोरञ्जनके लिये दैत्यगण एवं अप्सराएँ उसकी स्तुति कर रही थीं । उस देशमें त्रिलोकीकी लक्ष्मी इस प्रकार प्रविष्ट हो रही थी मानो अपने नगरमें जा रही हो । वहाँ पहुँचकर वह पद्मराग मणि एवं रत्नोंसे बने हुए सिंहासनपर विराजमान हुआ । तब किंनर, गन्धर्व और नागोंकी स्त्रियाँ उसका मनोविनोद करने लगीं । मन बहलाते समय उसके मणिनिर्मित कुण्डल झलमला रहे थे ॥ २१६—२२१ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर स्वच्छ नीले कमल-सा वस्त्र धारण किये द्वारपाल तारकके सम्मुख उपस्थित हुआ । वह अपने हाथसे मुखको ढके हुए था । उसने घुटनोंके बल पृथ्वीपर माथा टेककर सूर्यसमूहोंके-से उद्दीप शरीर धारण करनेवाले दैत्येश्वर तारकसे स्वल्प किंतु स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन किया—‘प्रभो ! कालनेमि देवताओंको बंदी बनाकर साथ लिये हुए द्वारपर खड़ा है । वह पूछ रहा है कि इन बंदियोंको कहाँ रखा जाय ।’

* मत्स्यपुराणका यह अध्याय पुराण-साहित्यमें सबसे बड़ा दीखता है । पर ये सभी श्लोक ठीक इसी प्रकार शिवपुराण पार्वतीखण्ड १—१०, स्कन्दपुराण महेश्वरखण्ड, केदारखण्ड २५—३५, कौमारिकाखण्ड २१—३१, कालिकापुराण ४४—५०, पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ३१—३२ आदिमें भी प्राप्त होते हैं ।

तन्निशम्याब्रवीद् दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम् ।
 यथेष्टुं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम् ॥ ४
 केवलं पाशबन्धेन विमुक्तैरविलम्बितम् ।
 एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा ॥ ५
 जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्धवम् ।
 निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिं गताः ।
 तुष्टुवुः स्पष्टवण्ठीर्वचोभिः कमलासनम् ॥ ६

देवा ऊचुः

त्वमोंकारोऽस्यङ्कुराय प्रसूतो
 विश्वस्यात्मानन्तभेदस्य पूर्वम् ।
 सम्भूतस्यानन्तं सत्त्वमूर्ते
 संहरेच्छोस्ते नमो रुद्रमूर्ते ॥ ७
 व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिमा
 तस्मादण्डात् स्वाभिधानादचिन्त्यः ।
 द्यावापृथ्व्योरूद्धर्खण्डावराभ्यां
 ह्यण्डादस्मात् त्वं विभागं करोषि ॥ ८
 व्यक्तं मेरौ यज्ञनायुस्तवाभू-
 देवं विद्मस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति ।
 व्यक्तं देवाजन्मनः शाश्वतस्य
 द्यौस्ते मूर्धा लोचने चन्द्रसूर्यो ॥ ९
 व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्धा दिशस्ते
 पादौ भूमिर्नाभिरन्धे समुद्राः ।
 मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो
 वेदैः शान्तो ज्योतिषा त्वं हि युक्तः ॥ १०
 वेदार्थेषु त्वां विवृण्वन्ति बुध्वा
 हृत्पदमान्तःसंनिविष्टं पुराणम् ।
 त्वामात्मानं लब्ध्ययोगा गृणन्ति
 सांख्यैर्यास्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः ॥ ११
 तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता
 तस्यां तस्यां गीयसे वै त्वमन्तम् ।
 दृष्टा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार
 देवैर्भावाः कारणैः कैश्चिदुक्ताः ॥ १२

द्वारपालके उस कथनको सुनकर दैत्यराजने कहा—‘अे! ये स्वेच्छानुसार कहीं भी स्थित रहें, इन्हें शीघ्र ही केवल बन्धन-मुक्त कर दिया जाय; क्योंकि अब तो तीनों भुवन मेरा गृह है अर्थात् पूरे विश्वपर मेरा ही अधिकार है।’ इस प्रकार बन्धन-मुक्त होनेके पश्चात् देवगण दुःखी चित्तसे जगद्गुरु कमलजन्मा ब्रह्माका दर्शन करनेके लिये उनकी शरणमें गये। वहाँ पहुँचकर उन इन्द्र आदि देवताओंने पृथ्वीपर सिर टेककर ब्रह्माको प्रणाम किया और उनसे अपनी करुण-कहानी कह सुनायी। तत्पश्चात् वे स्पष्ट अक्षरों एवं अर्थोंसे युक्त वचनोंद्वारा ब्रह्माकी स्तुति करने लगे ॥ १—६ ॥

देवगण बोले—सत्त्वमूर्ते! आप ओंकारस्वरूप हैं। आप विश्वकी रचनाके लिये प्रकट सर्वप्रथम अङ्गुर हैं और इस अनन्त भेदोंवाले विश्वके आत्मा अर्थात् मूलस्वरूप हैं। रुद्रमूर्ते! अन्तमें इस उत्पन्न हुए विश्वका संहार भी आप ही करते हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप अचिन्त्य है। आप अपनी महिमासे अपने शरीरको अपने ही नामसे युक्त अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्डके रूपमें प्रकटकर उसी ब्रह्माण्डसे ऊपर एवं नीचेके दो खण्डोंद्वारा आकाश और पृथ्वीका विभाजन करते हैं। हमलोग स्पष्टरूपसे ऐसा जानते हैं कि मेरुपर्वतपर आपने जो देवादि प्राणियोंकी आयु-सीमा निर्धारित की थी, वही कर्तव्यता आदि आपद्वारा निर्मित विधान अब भी प्रचलित है। देव! यह स्पष्ट है कि आप अजन्मा और अविनाशी हैं। आकाश आपका मस्तक, चन्द्रमा एवं सूर्य आपके नेत्र, सर्प केश, दिशाएँ कानोंके छिद्र, पृथ्वी दोनों चरण और समुद्र नाभिछिद्र हैं। आप मायाके रचयिता तथा जगत्के कारणरूपसे प्रसिद्ध हैं। वेदोंका कहना है कि आप परमज्योतिसे युक्त एवं शान्तस्वरूप हैं ॥ ७—१० ॥

विद्वान्लोग आपको वेदार्थोंमें खोजते हैं और आपको जानकर अपने हृदयकमलके भीतरी भागमें स्थित पुराणपुरुष बतलाते हैं। योगके ज्ञाता आपको आत्मस्वरूप कहते हैं तथा सांख्यज्ञोंद्वारा जो सात सूक्ष्म मूर्तियाँ निर्मित की गयी हैं तथा उनकी हेतुभूता जो आठवीं कही गयी है, उन सभीके अन्तमें आपकी ही स्थिति मानी गयी है। यह देखकर आपने ही स्थूल एवं सूक्ष्म मूर्तियोंका आविष्कार किया था। किन्हीं अज्ञात कारणवश देवताओंने उन भावोंका वर्णन किया था।

सम्भूतास्ते त्वत् एवादिसर्गं
भूयस्तां तां वासनां तेऽभ्युपेयुः ।
त्वत्संकल्पेनानन्तमायाविमूढः
कालोऽमेयो ध्वस्तसंख्याविकल्पः ॥ १३
भावाभावव्यक्तिसंहारहेतु-
स्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्तासि चात्मन् ।
येऽन्ये सूक्ष्माः सन्ति तेभ्योऽभिगीतः
स्थूला भावाश्चावृतारश्च तेषाम् ॥ १४
तेभ्यः स्थूलैस्तैः पुराणैः प्रतीतो
भूतं भव्यं चैवमुद्भूतिभाजाम् ।
भावे भावे भावितं त्वा युनक्ति
युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य ।
इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्य-
स्त्राता गोपा नो भवानन्तमूर्तिः ॥ १५
विरिञ्छिमराः स्तुत्वा ब्रह्माणमविकारिणम् ।
तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्ततः ॥ १६
एवं स्तुतो विरिञ्छिस्तु प्रसादं परमं गतः ।
अमरान् वरदेनाह वामहस्तेन निर्दिशन् ॥ १७

ब्रह्मोवाच

नारीवाभर्तृका कस्मात् तनुस्ते त्यक्तभूषणा ।
न राजते तथा शक्र म्लानवक्त्रशिरोरुहा ॥ १८
हुताशन विमुक्तोऽपि न धूमेन विराजसे ।
भस्मनेव प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः ॥ १९
यमामयमये नैव शरीरे त्वं विराजसे ।
दण्डस्यालम्बनेनेव ह्यकृच्छ्रस्तु पदे पदे ॥ २०
रजनीचरनाथोऽपि किं भीत इव भाषसे ।
राक्षसेन्द्र क्षताराते त्वमरातिक्षतो यथा ॥ २१
तनुस्ते वरुणोच्छुष्का परीतस्येव वह्निना ।
विमुक्तरुधिरं पाशं फणिभिः प्रविलोकयन् ॥ २२
वायो भवान् विचेतस्कस्त्वं स्निग्धैरिव निर्जितः ।
किं त्वं बिभेषि धनदं संन्यस्यैव कुबेरताम् ॥ २३
रुद्रास्त्रिशूलिनः सन्तो वदध्वं बहुशूलताम् ।
भवन्तः केन तत्क्षिप्तं तेजस्तु भवतामपि ॥ २४

वे सभी आदिसृष्टिके समय आपसे ही प्रकट हुए थे और आपके संकल्पके अनुसार उन्हें पुनः वैसी-वैसी वासना प्राप्त हुई थी। आप अनन्त मायाओंद्वारा निगूढ़, अप्रमेय कालस्वरूप एवं कल्पित संख्यासे अतीत हैं। आप भाव और अभावकी उत्पत्ति और संहारके कारण हैं। आत्मस्वरूप भगवन्! आप अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डके कर्ता हैं। अन्यान्य जितने सूक्ष्म, स्थूल तथा उनको भी ढकनेवाले अर्थात् उनसे उत्कृष्ट भाव हैं, उनके द्वारा भी आपका गुणगान किया गया है। उनसे बढ़कर जो स्थूल एवं प्राचीन हैं, उनके द्वारा भी आप जाने गये हैं। आप उत्रतिशीलोंके भूत एवं भविष्य-रूप हैं। आप प्रत्येक भावमें अनुप्रविष्ट होकर व्यक्त होते हैं और व्यक्तिभावका निरसन कर उसमें अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार अनन्त मूर्ति धारण करनेवाले देवाधिदेव! आप हम भक्तजनोंके लिये शरणदाता, रक्षक और सहायक होइये ॥ ११—१५ ॥

इस प्रकार देवगण अविकारी ब्रह्माकी स्तुति करके मनमें अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करते हुए खड़े रहे। देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर ब्रह्मा परम प्रसन्न हुए और अपने वरदायक बायें हाथसे देवताओंको निर्देश करते हुए बोले ॥ १६—१७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—इन्द्र! भूषणोंसे रहित तथा मलिन मुख एवं बालोंसे युक्त तुम्हारा शरीर पतिविहीना स्त्रीकी तरह शोभा नहीं पा रहा है। हुताशन! धूमसे रहित होनेपर भी तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम चिरकालसे जलकर शान्त हो गये हो और राखसे ढक गये हो। यमराज! इस रोगी शरीरमें तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो तुम पग-पगपर कठिनाईका अनुभव करते हुए कालदण्डके सहरे चल रहे हो। राक्षसेन्द्र निर्वृति! तुम राक्षसोंके स्वामी होकर भी भयभीतकी तरह क्यों बोल रहे हो? अरे शत्रुसंहारक! तुम तो शत्रुओंद्वारा घायल किये हुए-से दीख रहे हो। वरुण! तुम्हारा शरीर अग्निसे धिरे हुएकी तरह अत्यन्त शुष्क दीख रहा है। ऐसा लग रहा है मानो सर्पोंने तुम्हारे पाशमेंसे खून उगल दिया है। वायुदेव! तुम स्नेहीजनोंद्वारा पराजित हुएकी तरह अचेत-से दीख रहे हो। कुबेर! तुम अपने यक्षाधिपत्यको त्यागकर क्यों भयभीत हो रहे हो? रुद्रगण! तुमलोग तो त्रिशूलधारी थे, बताओ तो सही, तुम्हारे त्रिशूलकी विशिष्ट क्षमता कहाँ

अकिञ्चित्करतां यातः करस्ते न विभासते ।
अलं नीलोत्पलाभेन चक्रेण मधुसूदन ॥ २५

किं त्वयानुदरालीनभुवनप्रविलोकनम् ।
क्रियते स्तिमिताक्षेण भवता विश्वतोमुख ॥ २६
एवमुक्ताः सुरास्तेन ब्रह्मणा ब्रह्ममूर्तिना ।
वाचां प्रथानभूतत्वान्मारुतं तमचोदयन् ॥ २७
अथ विष्णुमुखैर्देवैः श्वसनः प्रतिबोधितः ।
चतुर्मुखं तदा प्राह चराचरगुरुं विभुम् ॥ २८
न तु वेत्सि चराचरभूतगतं
भवभावमतीव महानुच्छ्रुतः प्रभवः ।

पुनरर्थिवचोऽभिविस्तृत-
श्रवणोपमकौतुकभावकृतः ॥ २९
त्वमनन्त करोषि जगद्ग्रवतां
सचराचरगर्भविभिन्नगुणाम् ।
अमरासुरमेतदशेषमपि
त्वयि तुल्यमहो जनकोऽसि यतः ।
पितुरस्ति तथापि मनोविकृतिः
सगुणो विगुणो बलवानबलः ॥ ३०
भवतो वरलाभनिवृत्तभयः
कुलिशाङ्गसुतो दितिजोऽतिबलः ।
सचराचर निर्मथने किमिति
कितवस्तु कृतो विहितो भवता ॥ ३१
किल देव त्वया स्थितये जगतां
महदद्वृतचित्रविचित्रगुणाः ।
अपि तुष्टिकृतः श्रुतकामफला
विहिता द्विजनायक देवगणाः ॥ ३२
अपि नाकमभूत् किल यज्ञभुजां
भवतो विनियोगवशात् सततम् ।
अपहृत्य विमानगणं स कृतो
दितिजेन महामरुभूमिसमः ॥ ३३

चली गयी ? तुमलोगोंके भी उस तेजको किसने नष्ट कर दिया ? मधुसूदन ! आपका हाथ कर्तव्यहीन हो गया है, जिससे इसकी शोभा नहीं हो रही है। इस नीले कमलकी-सी कान्तिवाले चक्रके धारण करनेसे क्या लाभ ? विश्वतोमुख ! इस समय आप नेत्र बंद करके अपने उदरमें विलीन हुए भुवनोंका अवलोकन क्यों कर रहे हैं ? ॥ १८—२६ ॥

उन वेदमूर्ति ब्रह्माद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर देवताओंने वाणी-शक्तिके मुख्य कारण वायुको प्रेरित किया। उस समय विष्णु आदि देवताओंने वायुको भलीभाँति समझा दिया, तब वे ऐश्वर्यशाली एवं चराचर प्राणियोंके गुरु ब्रह्मासे बोले— ॥ २७—२८ ॥

‘भगवन् ! चराचर प्राणियोंके मनोंमें उत्पन्न हुए भावोंको आप न जानते हों—ऐसी बात नहीं है। आप अत्यन्त महान्, सर्वोपरि और जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं। यह तो आपने केवल याचकोंके वचनोंको विस्तारपूर्वक सुननेके लिये कुतूहलका भाव प्रकट किया है। अनन्त ! आप चराचर प्राणियोंसे युक्त विभिन्न गुणवाली विश्व-सृष्टि करते हैं। यद्यपि ये सम्पूर्ण देवता और असुर आपकी दृष्टिमें एक-से हैं; क्योंकि आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, तथापि पिताके मनमें भी पुत्रोंके सगुण-निर्गुण एवं सबल-निर्बलरूप पक्षको लेकर अन्तर रहता ही है। आपसे वरदान प्राप्त कर निर्भय हुआ वज्राङ्गका पुत्र महाबली धूर्त दैत्य तारक चराचर जगत्का नाश करनेके लिये क्या कर रहा है, यह आपको (भलीभाँति) विदित है। देव ! क्या आपने जगत्की स्थितिके लिये महान् एवं अद्वृत चित्र-विचित्र गुणोंसे युक्त, संतुष्ट करनेवाले एवं वाञ्छित अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाले देवगणोंकी सृष्टि नहीं की थी ? द्विजनायक ! क्या आपके आदेशानुसार स्वर्गलोक सदा यज्ञभोजी देवताओंके अधिकारमें नहीं रहता आया है, किंतु उस दैत्यने विमानसमूहोंको छीनकर उसे महान् मरुस्थल-सा बना दिया है ॥ २९—३३ ॥

कृतवानसि सर्वगुणातिशयं
 यमशेषमहीथरराजतया ।
 सममिङ्गितभावविधिः स गिरि-
 र्गनेन सदोच्छ्रयतां हि गतः ॥ ३४
 अधिवासविहारविधावुचितो
 दितिजेन पविक्षतशृङ्गतः ।
 परिलुण्ठतरलगुहानिवहो
 बहुदैत्यसमाश्रयतां गमितः ॥ ३५
 सुरराज स तस्य भयेन गतं
 व्यदधादशरीर इतोऽपि वृथा ।
 उपयोग्यतया विवृतं सुचिरं
 विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम् ॥ ३६
 भवतैव विनिर्मितमादियुगे
 सुरहेतिसमूहमकुण्ठमिदम् ।
 दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं
 शतधा मतिभेदमिवाल्पमनाः ॥ ३७
 आसारधूलिध्वस्ताङ्गा द्वारस्थाः स्मः कदर्थिनः ।
 लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वयं तस्यामरद्विषः ॥ ३८
 सभायाममरा देव निकृष्टेऽप्युपवेशिताः ।
 वेत्रहस्तैरजल्पन्तस्तोऽपहसितास्तु तैः ॥ ३९
 महार्याः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः ।
 चाटुयुक्तमथो कर्म ह्यमरा बहुभाषत ॥ ४०
 सभेयं दैत्यसिंहस्य न शक्स्य विसंस्थुला ।
 वदतेति च दैत्यस्य प्रेष्यविहसिता बहु ॥ ४१
 ऋतवो मूर्तिमन्तस्तमुपासन्ते ह्यहर्निशम् ।
 कृतापराधसंत्रासं न त्यजन्ति कदाचन ॥ ४२
 तन्नीत्रयलयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः ।
 सुरागमुपधा नित्यं गीयते तस्य वेशमसु ॥ ४३

जिस हिमालयको समस्त पर्वतोंका राजा होनेके कारण आपने सर्वगुण-सम्पन्न बनाया, जो ऊँचाईमें आकाशतक व्यास था और संकेतानुसार चलनेवाला था, उसके शिखरके तटप्रान्तको उस दैत्यने बज्रसे तोड़फोड़कर अपने निवास और विहारके उपयुक्त बनालिया है। उसकी गुफाओंके रूल लूट लिये गये और अब वह बहुत-से दैत्योंका निवासस्थान बन गया है। उस दैत्यके भयसे वह शरीरहीन होनेपर भी इससे भी बढ़कर बुरे कामोंमें लगाया जा रहा है। सुरराज ! कृतयुगके आदिमें आपने ही देवताओंके लिये उपयोगी समझकर जिन विशाल, चिरस्थायी, अपनी निर्मल कान्तिसे दिशाओंको उद्घासित करनेवाले एवं अप्रतिहत अस्त्रसमूहोंका निर्माण किया था, वे अस्त्र भी उस दैत्यके शरीरपर गिरकर कायरकी बुद्धि-भिन्नताकी तरह सैकड़ों टुकड़ोंमें टूट-टूट कर चूर हो गये ॥ ३४—३७ ॥

देवेश ! (इतना ही नहीं) उस देवद्रोहीके द्वारपर कीचड़ और धूलिसे भरे हुए अङ्गवाले हमलोग तिरस्कार-पूर्वक बैठाये गये थे और बड़ी कठिनाईसे हमलोगोंको उसकी सभामें प्रवेश करनेका अवसर मिला था। उस सभामें भी देवगण निकृष्ट आसनोंपर बैठाये गये थे। वहाँ यद्यपि हमलोग कुछ बोल नहीं रहे थे, तथापि उसके बेंतधारी भृत्योंद्वारा हमलोगोंका उपहास किया जा रहा था। वे कह रहे थे—‘देवगण ! आपलोग बड़े सम्मानित एवं सभी प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले हैं, इसीलिये थोड़ा बोलते हैं न ?’ उनकी इन व्यङ्ग्यपूर्ण बातोंका उत्तर भी देवगण अनेक प्रकारकी चाटुताभरी बातोंद्वारा देते थे। ‘यह दैत्यसिंह तारककी सभा है, इन्द्रकी लड़खड़ानेवाली सभा नहीं है, बोलो, बोलो ।’ इस प्रकार उस दैत्यके परिचारकोंद्वारा हमलोगोंकी बहुत हँसी उड़ायी गयी है। वहाँ छहों ऋतुएँ शरीर धारणकर रात-दिन उसकी सेवामें लगी हैं। वे कोई अपराध न हो जाय—इस भयसे उसे कभी नहीं छोड़तीं। सिद्ध, गन्धर्व और किंनर उसके महलोंमें निष्कपटरूपसे नित्य वीणापर तीनों लयोंसमेत सुन्दर राग अलापते रहते हैं।

हन्ताकृतोपकरणैर्मित्रारिगुरुलाघवैः ।
 शरणागतसंत्यागी त्यक्तसत्यपरिश्रयः ॥ ४४
 इति निःशेषमथवा निःशेषं वै न शक्यते ।
 तस्याविनयमाख्यातुं स्नष्टा तत्र परायणम् ॥ ४५
 इत्युक्तः स्वात्मभूदेवः सुरैर्दैत्यविचेष्टितम् ।
 सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाम्बुजः ॥ ४६

ब्रह्मोवाच

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः ।
 यस्य वध्यः स नाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान् ॥ ४७
 मया स वरदानेन च्छन्दयित्वा निवारितः ।
 तपसः साम्प्रतं राजा त्रैलोक्यदहनात्मकात् ॥ ४८
 स च वद्रे वधं दैत्यः शिशुतः सप्तवासरात् ।
 स सप्तदिवसो बालः शंकराद् यो भविष्यति ॥ ४९
 तारकस्य निहन्ता स भास्कराभो भविष्यति ।
 साम्प्रतं चाप्यपत्नीकः शंकरो भगवान् प्रभुः ॥ ५०
 यच्चाहमुक्तवान् यस्या ह्युत्तानकरता सदा ।
 उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु ॥ ५१
 हिमाचलस्य दुहिता सा तु देवी भविष्यति ।
 तस्याः सकाशाद् यः शर्वस्त्वरण्यां पावको यथा ॥ ५२
 जनयिष्यति तं प्राप्य तारकोऽभिभविष्यति ।
 मयाप्युपायः स कृतो यथैवं हि भविष्यति ॥ ५३
 शेषश्चाप्यस्य विभवो विनश्येत् तदनन्तरम् ।
 स्तोककालं प्रतीक्षध्वं निविशङ्केन चेतसा ॥ ५४
 इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलजन्मना ।
 जगमुस्तं प्रणिपत्येशं यथायोग्यं दिवौकसः ॥ ५५
 ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 निशा सप्त्यार भगवान् स्वतनोः पूर्वसम्भवाम् ॥ ५६
 ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम् ।
 तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम् ॥ ५७

उस दैत्यका मित्र और शत्रुके प्रति भी बड़े-छोटेका विचार नहीं रह गया है। वह शरणमें आये हुएका भी त्याग कर देता है और सत्यका तो उसने व्यवहार ही छोड़ दिया है। यही सब उसकी बुराइयाँ हैं अथवा उसकी उद्दण्डता तो पूर्णरूपसे कही ही नहीं जा सकती। उसे तो ब्रह्मा ही जानें। इस प्रकार देवताओंद्वारा उस दैत्यकी कृतियोंका वर्णन किये जानेपर देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माके मुखकमलपर मुसकराहट आ गयी, तब वे देवताओंसे बोले— ॥३८—४६॥

ब्रह्माजीने कहा—देवगण ! दैत्यराज तारक सभी देवताओं एवं राक्षसोंद्वारा अवध्य हैं। जो उसका वध कर सकता है, वह पुरुष अभी त्रिभुवनमें उत्पन्न ही नहीं हुआ है। मैंने ही उस दैत्यराजको वरदान देकर त्रिलोकीको भस्म करनेवाले उस तपसे निवारण किया था। उस समय उस दैत्यने सात दिनके बालकद्वारा अपनी मृत्युका वरदान माँगा था। वह सप्तदिवसीय बालक जो शंकरजीसे उत्पन्न होगा, सूर्यके समान तेजस्वी होगा। वही तारकका वध करनेवाला होगा, किंतु इस समय सामर्थ्यशाली भगवान् शंकर पत्नी-रहित हैं। इसके लिये मैंने पहले जिस देवीके विषयमें उत्तानकरताकी बात कही थी, वही देवी हिमाचलकी कन्याके रूपमें प्रकट होगी। उस देवीका वह वरदायक हाथ सदा उत्तान ही रहेगा। उस देवीके सम्पर्कसे शंकरजी अरणीमें अग्निकी तरह जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे, उसे सम्मुख पाकर तारक पराजित हो जायगा। मैंने भी पहलेसे ही वैसा उपाय कर रखा है, जिससे यह सब वैसा ही होगा। तदनन्तर उसका यह सारा वैभव नष्ट हो जायगा। तुमलोग निःशङ्क चित्तसे थोड़े-से कालकी और प्रतीक्षा करो ॥४७—४८॥

कमलजन्मा साक्षात् ब्रह्मद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर स्वर्गवासी देवगण उन देवेश्वरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर देवताओंके चले जानेपर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने जिसे पहले अपने शरीरसे उत्पन्न किया था, उस निशाका स्मरण किया। तब भगवती रात्रिदेवी पितामहके निकट उपस्थित हुई। उस विभावरी (रात्रि)-को एकान्तमें उपस्थित देखकर ब्रह्मा बोले ॥५५—५७॥

ब्रह्मोवाच

विभावरि महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम्।
 तत्कर्तव्यं त्वया देवि शृणु कार्यस्य निश्चयम्॥ ५८
 तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्जितः।
 तस्याभावाय भगवाञ्चनिष्ठ्यति चेश्वरः॥ ५९
 सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकारकः।
 शंकरस्याभवत् पत्नी सती दक्षसुता तु या॥ ६०
 सा मृता कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे।
 भविता हिमशैलस्य दुहिता लोकभाविनी॥ ६१
 विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्वयम्।
 तपस्यन् हिमशैलस्य कन्द्रे सिद्धसेविते॥ ६२
 प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म कञ्चित् कालं निवत्स्यति।
 तयोः सुतस्तपसोर्भविता यो महाबलः॥ ६३
 स भविष्यति दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः।
 जातमात्रा तु सा देवी स्वल्पसंज्ञा च भाविनी॥ ६४
 विरहोत्कणिठता गाढं हरसङ्गमलालसा।
 तयोः सुतस्तपसोः संयोगः स्याच्छुभानने॥ ६५
 ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो वाक्कलहो भवेत्।
 ततोऽपि संशयो भूयस्तारकं प्रति दृश्यते॥ ६६
 तयोः संयुक्तयोस्तस्मात् सुरतासक्तिकारणे।
 विघ्नस्त्वया विधातव्यो यथा ताभ्यां तथा शृणु॥ ६७
 गर्भस्थाने च तन्मातुः स्वेन रूपेण रञ्जय।
 ततो विहाय शर्वस्तां विश्रान्तो नर्मपूर्वकम्॥ ६८
 भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती।
 प्रयास्यति तपश्चर्तुं तत्स्मात् तपसे पुनः॥ ६९
 जनयिष्यति यः शर्वादमितद्युतिमण्डतम्।
 स भविष्यति हन्ता वै सुरारीणामसंशयम्॥ ७०
 त्वयापि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः।
 यावच्च न सती देहसंक्रान्तगुणसञ्ज्ञया॥ ७१

ब्रह्माजीने कहा—विभावरि (रात्रिदेवी) !* इस समय देवताओंका एक बहुत बड़ा कार्य आ उपस्थित हुआ है। देवि! उसे तुम्हें अवश्य पूरा करना है। अब उस कार्यका निर्णय सुनो। दैत्यराज तारक देवताओंका कट्टर शत्रु है, वह अजेय है। उसका विनाश करनेके लिये भगवान् शंकर जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे, वही उस तारकका वध करनेवाला होगा। उधर शंकरजीकी पत्नी जो दक्षपुत्री सती थीं, वह देवी किसी कारणवश कुपित होकर शरीरको भस्म कर चुकी है। वही लोकसुन्दरी देवी हिमाचलकी कन्याके रूपमें प्रकट होगी। भगवान् शंकर उसके वियोगसे तीनों लोकोंको शून्य समझकर हिमाचलकी सिद्धोंद्वारा सेवित कन्द्रामें तपस्या कर रहे हैं। वे उस देवीके जन्मकी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ कुछ कालतक निवास करेंगे। उत्कृष्ट तप करनेवाले उन दोनों (शिव-पार्वती)-से जो महाबली पुत्र उत्पन्न होगा, वही तारक दैत्यका विनाशक होगा। शुभानने! वह सुन्दरी देवी जन्म लेनेके पश्चात् थोड़ा होश सँभालनेपर जब विरहसे उत्कण्ठित होकर गाढ़ रूपसे शंकरजीके समागमकी लालसासे युक्त हो जायगी तब उन दोनों घोर तपस्वियोंका संयोग होगा। उस समय उन दोनोंमें थोड़ा वाक्-कलह भी हो जायगा जिससे तारकके विनाशके प्रति पुनः संशय दिखायी पड़ने लगेगा, अतः उन दोनोंके संयुक्त होनेपर सुरतकी आसक्तिके अवसरपर तुम्हें जैसा विघ्न उपस्थित करना होगा, उसे भी सुन लो॥ ५८—६७॥

उस समय तुम उसकी माताके गर्भस्थानमें प्रवेश करके उसपर अपने रूपकी छाप डाल दो। तब शंकरजी उसे छोड़कर विश्राम करने लाएंगे और परिहासमें उस देवीकी भर्त्सना करेंगे जिससे कुपित होकर वह पुनः तपस्या करनेके लिये चली जायगी। पुनः उस तपस्यासे लौटनेपर वह शंकरजीके सम्पर्कसे जिस उत्कृष्ट कान्तिसे सुशोभित पुत्रको उत्पन्न करेगी, वह निःसंदेह देव-शत्रुओंका संहार करना चाहिये, किंतु जबतक तुम सतीके समागमसे उसके शरीरसे संक्रमित हुए गुणसमूहोंसे युक्त नहीं हो जाओगी,

* इन मूल श्लोकोंका ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं आर्थर्वणपरिशिष्टप्रोक्त रात्रिमूलकादिसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्ण जानकारीके लिये यहाँका भी अर्थ ध्येय है। ये श्लोक बृहद्भर्मपुराणमें भी हैं।

तत्सङ्गमेन तावत् त्वं दैत्यान् हन्तुं न शक्ष्यसे ।
 एवं कृते तपस्तप्त्वा सृष्टिसंहारकारिणी ॥ ७२
 समाप्तनियमा देवी यदा चोमा भविष्यति ।
 तदा स्वमेव तद्रूपं शैलजा प्रतिपत्त्यते ॥ ७३
 तनुस्तवापि सहजा सैकानंशा भविष्यति ।
 रूपांशेन तु संयुक्ता त्वमुमायां भविष्यसि ॥ ७४
 एकानंशेति लोकस्त्वां वरदे पूजयिष्यति ।
 भेदैर्बहुविधाकारैः सर्वगा कामसाधिनी ॥ ७५
 ओंकारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः ।
 आक्रान्तिरूर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः ॥ ७६
 त्वं भूरिति विशां माता शूद्रैः शैवीति पूजिता ।
 क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दया नियमिनामिति ॥ ७७
 त्वं महोपायसंदोहा नीतिर्नयविसर्पणाम् ।
 परिच्छित्तिस्त्वमर्थानां त्वमीहा प्राणिहच्छया ॥ ७८
 त्वं मुक्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम् ।
 त्वं च कीर्तिमतां कीर्तिस्त्वं मूर्तिः सर्वदेहिनाम् ॥ ७९
 रतिस्त्वं रक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृष्टदर्शिनाम् ।
 त्वं कान्तिः कृतभूषाणां त्वं शान्तिर्दुःखकर्मणाम् ॥ ८०
 त्वं भ्रान्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम् ।
 जलधीनां महावेला त्वं च लीला विलासिनाम् ॥ ८१
 सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी ।
 त्वं कालरात्रिनिःशेषभुवनावलिनाशिनी ॥ ८२
 प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी ।
 इत्यनेकविधैर्देवि रूपैलोंके त्वमर्चिता ॥ ८३
 ये त्वां स्तोष्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति वापि ये ।
 ते सर्वकामानाप्यन्ति नियता नात्र संशयः ॥ ८४
 इत्युक्ता तु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः ।
 जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरेः परम् ॥ ८५
 तत्रासीनां महाहर्ष्ये रत्नभित्तिसमाश्रयाम् ।
 ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम् ॥ ८६
 किंचिच्छाममुखोदग्रस्तनभारावनामिताम् ।
 महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम् ॥ ८७

तबतक दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ नहीं हो सकोगी। ऐसा करनेपर जब सृष्टिका संहार करनेवाली वह देवी तपस्या करनेके पश्चात् नियमोंको समाप्त कर उमारूपसे प्रकट होगी, तब पार्वती अपने उसी रूपको प्राप्त करेंगी। साथ ही तुम्हारा जो यह प्राकृतिक शरीर है, वह भी एकानंशा नामसे प्रसिद्ध होगा और तुम उमाके रूपके अंशसे युक्त होकर उमासे प्रकट होओगी। वरदायिनि! संसार 'एकानंशा' नामसे तुम्हारी पूजा करेगा। तुम अनेकों प्रकारके भेदोंद्वारा सर्वगमिनी एवं कामनाओंको सिद्ध करनेवाली होओगी ॥ ६८—७५ ॥

इसी प्रकार ब्रह्मवादी विप्रगण तुम्हें ओंकाररूप मुखवाली गायत्री और महाबाहु नृपतिवृन्द उन्नतिशीला शक्ति कहेंगे। तुम पृथ्वीरूपसे वैश्योंकी माता कहलाओगी और शूद्र 'शैवी' कहकर तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम मुनियोंकी क्षुब्ध न की जा सकनेवाली क्षमा, नियमधारियोंकी दया, नीतिज्ञोंकी महान् उपायोंसे परिपूर्ण नीति, अर्थ-साधनाकी सीमा, समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाली इच्छा, समस्त प्राणियोंकी मुक्ति, सम्पूर्ण देहधारियोंकी गति, कीर्तिमान् जनोंकी कीर्ति, अखिल देहधारियोंकी मूर्ति, अनुरागीजनोंकी रति, हर्षसे परिपूर्ण लोगोंकी प्रीति (प्रसन्नता), शृङ्गारसे सुसज्जित प्राणियोंकी कान्ति (शोभा), दुःखीजनोंके लिये शान्तिरूपा, निखिल प्राणियोंकी भ्रान्ति, यज्ञानुष्ठान करनेवालोंकी गति, समुद्रोंकी विशाल वेला (तट), विलासियोंकी लीला, पदार्थोंकी सम्भूति (उत्पत्तिस्थान), लोकोंका पालन करनेवाली स्थिति, सम्पूर्ण भुवनसमूहोंको नाश करनेवाली कालरात्रि तथा प्रियतमके गलेसे लगनेपर उत्पन्न हुए आनन्दको देनेवाली रात्रिके रूपमें सम्मानित होओगी। देवि! इस प्रकार तुम संसारमें अनेक प्रकारके रूपोंद्वारा पूजित होओगी। वरदे! जो लोग नियमपूर्वक तुम्हारा स्तवन-पूजन करेंगे, वे सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ७६—८४ ॥

ब्रह्माद्वारा इस प्रकार आदेश दिये जानेपर विभावरी (रात्रि) देवी हाथ जोड़कर 'अच्छा, ऐसा ही करूँगी' यों कहकर तुरंत ही बड़े वेगसे हिमाचलके उस सुन्दर भवनकी ओर प्रस्थित हुई। वहाँ पहुँचकर उसने एक विशाल अद्वालिकापर रत्ननिर्मित दीवालके सहरे बैठी हुई मेनाको देखा। उस समय उनके मुखकमलकी कान्ति कुछ पीली पड़ गयी थी। वे कुछ काले रंगवाले चूचुकोंसे युक्त स्तनके भारसे झुकी हुई थीं। उनके गलेमें जीव-

उद्धन् कनकोन्नद्जीवरक्षामहोरगाम्।
 मणिदीपगणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते ॥ ८८
 प्रकीर्णबहुसिद्धार्थे मनोजपरिवारके।
 शुचि न्यंशुकसंछन्नभूशय्यास्तरणोज्ज्वले ॥ ८९
 धूपामोदमनोरम्ये सर्जगन्धोपयोगिके।
 ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी ॥ ९०
 व्यजृम्भत सुखोदके ततो मेनामहागृहे।
 प्रसुप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारिके ॥ ९१
 स्फुटालोके शशभृति भ्रान्तिरात्रिविहङ्गमे।
 रजनीचरभूतानां सद्यैरावृतचत्वरे ॥ ९२
 गाढकण्ठग्रहालग्नसुभगोष्टजने ततः।
 किंचिदाकुलताप्रासे मेनानेत्राम्बुजद्वये ॥ ९३
 आविवेश मुखे रात्रिः सुचिरस्फुटसंगमा।
 जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे ॥ ९४
 आविवेशान्तरं जन्म मन्यमाना क्षपा तु वै।
 अरञ्जयच्छविं देव्या गुहारण्ये विभावरी ॥ ९५
 ततो जगत्परित्राणहेतुर्हिमगिरिप्रिया।
 ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे व्यसूयत गुहारणिम् ॥ ९६
 तस्यां तु जायमानायां जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः।
 अभवन् सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः ॥ ९७
 नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत्।
 अभवत् क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम् ॥ ९८
 ज्योतिषामपि तेजस्त्वमभवत् सुरतोन्नता।
 वनाश्रिताश्शौषधयः स्वादुवन्ति फलानि च ॥ ९९
 गन्धवन्ति च माल्यानि विमलं च नभोऽभवत्।
 मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः ॥ १००
 तेन चोद्दूतफलितपरिपाकगुणोज्ज्वलाः।
 अभवत् पृथिवी देवी शालिमालाकुलापि च ॥ १०१

रक्षाके निमित्त एक स्वर्णनिर्मित विशाल सर्पके-से आकारवाली माला लटक रही थी, जिसमें महौषधियोंके समूह और अभिमन्त्रित मन्त्राज बँधे हुए थे। उनका वह महल मणिनिर्मित दीपसमूहोंकी ज्योतिके उत्कट प्रकाशसे उद्भासित था। वहाँ प्रयोजन-सिद्धिके लिये बहुत-से पदार्थ रखे हुए थे, जिससे वह कामदेवके परिवार-जैसा लग रहा था। वहाँ भूतलपर शय्या बिछी थी, जिसपर शुद्ध एवं श्वेत रेशमी चदर बिछी हुई थी तथा सर्जकी गन्धके समान मनको लुभानेवाले धूपकी सुगन्ध फैल रही थी। तदनन्तर क्रमशः दिनके व्यतीत होनेपर विभावरी मेनाके उस सुखमय विशाल गृहमें अपना प्रसार करने लगी। तत्पश्चात् जब शयनके लिये बिछी हुई शय्याओंपर पुरुषगण प्रायः कुछ निद्रामग्न-से होने लगे, चाँदनी स्पष्टरूपसे बिखर गयी, रात्रिमें विचरनेवाले पक्षी निर्भय होकर इधर-उधर धूमने लगे, चबूतरों (चौराहों)-पर राक्षसों और भूत-प्रेतोंका जमघट लग गया, पति-पत्नी गाढ़रूपसे गले लगकर नींदके वशीभूत हो गये, तब मेनाके भी दोनों नेत्रकमल नींदसे कुछ व्याकुल हो गये। ऐसा अवसर पाकर चिरकालसे स्पष्टरूपसे संगमकी इच्छा रखनेवाली रात्रि देवी जगन्माता पार्वतीकी जन्मदायिनी मेनाके मुखमें प्रवेश कर गयी और उसने क्रमशः सारे उदरपर अधिकार जमा लिया। अपने प्रवेशके अनन्तर देवीका जन्म मानती हुई विभावरी रात्रिने जंगली गुफाकी तरह उस उदरमें देवीकी कान्तिको अपने रंगसे रँग दिया ॥ ८५—९५ ॥

तदनन्तर जगत्के परिरक्षणकी हेतुभूता हिमाचलप्रिया मेनाने सुन्दर ब्राह्ममुहूर्तमें स्कन्दकी माता पार्वतीको जन्म दिया। पार्वतीके उत्पन्न होनेपर सम्पूर्ण लोकोंके निवासी एवं सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी सुखी हो गये। उस समय नरक-निवासियोंको भी स्वर्गके समान महान् सुखका अनुभव हुआ। क्रूर स्वभाववाले प्राणियोंका चित्त शान्त हो गया। ज्योतिर्णिंद्रोंका तेज बढ़ गया। देवसमूहोंकी उत्तरति हुई। जंगली ओषधियाँ विकसित हो गयीं और फल स्वादिष्ट हो गये। पुष्पोंमें सुगन्ध बढ़ गयी और आकाश निर्मल हो गया। सुखस्पर्शी शीतल, मंद, सुगन्ध वायु चलने लगी। दिशाएँ अत्यन्त मनोहरिणी हो गयीं। वे कुछ उत्पन्न हुए, कुछ फले हुए और कुछ पके हुए पदार्थोंके गुणोंसे युक्त होनेके कारण चमक रही थीं। पृथ्वीदेवी भी धान्यसमूहोंसे व्याप्त हो गयी।

तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
 तस्मिन् गतानि साफल्यं काले निर्मलचेतसाम्॥ १०२
 विस्मृतानि च शस्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे।
 प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमोऽभवत्॥ १०३
 अन्तरिक्षे सुराश्वासन् विमानेषु सहस्रशः।
 समहेन्द्रहरिब्रह्मवायुवह्निपुरोगमाः ॥ १०४
 पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तु हिमभूधरे।
 जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्वाप्सरोगणाः ॥ १०५
 मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाबलाः।
 तस्मिन्महोत्सवे ग्रासे दिव्यप्रभृतपाणयः ॥ १०६
 सरितः सागराश्वैव समाजगमुक्षु सर्वशः।
 हिमशैलोऽभवल्लोके तथा सर्वेश्वराचरैः ॥ १०७
 सेव्यश्वाप्यभिगम्यश्च स श्रेयांश्चाचलोत्तमः।
 अनुभूयोत्सवं देवा जगमुः स्वानालयान्मुदा ॥ १०८
 देवगन्धर्वनागेन्द्रशैलशीलावनीगुणैः ।
 हिमशैलसुता देवी स्वयंपूर्विकया ततः ॥ १०९
 क्रमेण वृद्धिमानीता लक्ष्मीवानलसैर्बुधैः।
 क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रयम् ॥ ११०
 अजयद् भूषयच्चापि निःसाधारैर्नगात्मजा।
 एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारदं देवसम्मतम्॥ १११
 देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनसत्त्वरम्।
 स्मृतिं शक्रस्य विज्ञाय जातां तु भगवांस्तदा ॥ ११२
 आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम्।
 तं स दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात्॥ ११३
 यथाहेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः।
 शक्रप्रणीतां तां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि ॥ ११४
 नारदः कुशलं देवमपृच्छत पाकशासनम्।
 पृष्ठे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥ ११५

इन्द्र उवाच

कुशलस्याङ्कुरे तावत् सम्भूते भुवनत्रये।
 तत्फलोद्भवसम्पत्तौ त्वं भवातन्द्रितो मुने ॥ ११६
 वेत्सि चैतत्समस्तं त्वं तथापि परिचोदकः।
 निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहज्जने ॥ ११७

निर्मल-चित्त एवं शुद्धात्मा मुनियोंकी दीर्घकालसे चली आती हुई तपस्याएँ उस समय सफल हो गयीं। भूले हुए शस्त्र पुनः प्रकट होने लगे। प्रधान-प्रधान तीर्थोंका प्रभाव परम पुण्यमय हो गया। उस समय महेन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदि हजारों देवता विमानोंपर चढ़कर आकाशमें उपस्थित थे। वे उस हिमाचलपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, प्रधान-प्रधान गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ९६—१०५ ॥

उस महोत्सवके अवसरपर महाबली सुमेरु आदि पर्वत शरीर धारणकर और हाथमें (उपहारके लिये) दिव्य पदार्थ लिये हुए तथा नदियों और सागरोंके दल सब ओरसे उपस्थित हुए। उस समय हिमाचल जगतमें सभी चराचर प्राणियोंद्वारा सेव्य तथा अभिगमन करने योग्य बन गये। वे श्रेष्ठ पर्वतके रूपमें मङ्गलरूप हो गये। तत्पश्चात् देवगण उस उत्सवका आनन्द लेकर हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर हिमाचलकन्या पार्वतीदेवी आलस्यरहित एवं बुद्धिमान् पुरुषोंकी लक्ष्मीकी भाँति क्रमशः दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगीं। पार्वतीने अपने देव, गन्धर्व, नागेन्द्र, पर्वत और पृथ्वीके शीलस्वभावसे युक्त गुणों तथा रूप, सौभाग्य और ज्ञानद्वारा क्रमशः तीनों लोकोंको जीत लिया और असाधारणरूपसे विभूषित भी किया। इसी बीच इन्द्रने देवताओंके अनुकूलवर्ती एवं शीघ्र ही कार्य-साधनमें जुट जानेवाले देवर्षि नारदका स्मरण किया। तब अपनेको इन्द्रद्वारा स्मरण किया गया जानकर भगवान् नारद हर्षपूर्वक महेन्द्रके निवासस्थानपर आये। उन्हें आया हुआ देखकर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने सिंहासनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने यथायोग्य पाद्य आदिद्वारा नारदजीकी पूजा की। इन्द्रद्वारा विधिपूर्वक की गयी उस पूजाको ग्रहणकर नारदने देवराज इन्द्रसे कुशल-प्रश्न किया। तब कुशल पूछे जानेपर सामर्थ्यशाली इन्द्रने इस प्रकार कहा— ॥ १०६—११५ ॥

इन्द्र बोले—मुने! त्रिभुवनके कल्याणके लिये अङ्कुरों तो उत्पन्न हो गया है, किंतु उससे फलरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्तिके निमित्त आप सावधान हो जायें। यद्यपि आप यह सब कुछ जानते हैं, तथापि कहनेवाला अपने मित्रसे अपना प्रयोजन निवेदित करके परम संतोषका अनुभव करता है।

तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात् पिनाकिना ।
शीघ्रं तदुद्यमः सर्वेरस्मत्पक्षैर्विधीयताम् ॥ ११८
अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः ।
शक्रं जगाम भगवान् हिमशैलनिवेशनम् ॥ ११९
तत्र द्वारे स विग्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले ।
वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः ॥ १२०
सह प्रविश्य भवनं भुवो भूषणतां गतम् ।
निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते ॥ १२१
महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः ।
यथार्ह चार्घ्यपाद्यां च शैलस्तस्मै न्यवेदयत् ॥ १२२
मुनिस्तु प्रतिजग्राह तमर्घ विधिवत् तदा ।
गृहीतार्घ मुनिवरमपृच्छच्छलक्षण्या गिरा ॥ १२३
कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननाम्बुजः ।
मुनिरप्यद्विराजानमपृच्छत् कुशलं तदा ॥ १२४

नारद उवाच

अहोऽवतारिताः सर्वे संनिवेशे महागिरे ।
पृथुत्वं मनसा तुल्यं कंदराणां तथाचल ॥ १२५
गुरुत्वं ते गुणौधानां स्थावरादतिरिच्यते ।
प्रसन्नता च तोयस्य मनसोऽप्यधिका च ते ॥ १२६
न लक्ष्यामः शैलेन्द्र शिष्यते कन्द्रोदरात् ।
न च लक्ष्मीस्तथा स्वर्गे कुत्राधिकतया स्थिता ॥ १२७
नाना तपोभिर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ।
पावनैः पावितो नित्यं त्वत्कन्द्रसमाश्रितैः ॥ १२८
अवमत्य विमानानि स्वर्गवासविरागिणः ।
पितुर्गृह इवासन्ना देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ १२९
अहो धन्योऽसि शैलेन्द्र यस्य ते कंदरं हरः ।
अध्यास्ते लोकनाथोऽपि समाधानपरायणः ॥ १३०
इत्युक्तवति देवर्षी नारदे सादरं गिरा ।
हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिददृक्षया ॥ १३१
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका ।
लज्जाप्रणयनप्राङ्गी प्रविवेश निवेशनम् ॥ १३२

इसलिये पार्वतीदेवी जिस प्रकार शीघ्र ही शंकरजीसे संयुक्त हो जायें, वह उपाय हमारे पक्षके सभी लोगोंको करना चाहिये। तत्पश्चात् सारा प्रयोजन समझकर और इन्द्रसे सलाह करके भगवान् नारद हिमाचलके भवनकी ओर चल पड़े। थोड़ी ही देरमें वे द्विजवर चित्र-विचित्र बेंतकी लताओंसे आच्छादित भवन-द्वारपर जा पहुँचे। वहाँ पहलेसे ही भवनके बाहर निकले हुए हिमाचलने मुनिकी वन्दना की। फिर वे हिमाचलके साथ पृथ्वीके भूषणस्वरूप उनके भवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ अनुपम कान्तिवाले मुनिवर नारद स्वयं हिमाचलद्वारा निवेदित किये गये एक स्वर्णनिर्मित विशाल सिंहासनपर विराजमान हुए। तब शैलराजने उन्हें यथायोग्य पाद्य और अर्घ्य निवेदित किया। मुनिने विधिपूर्वक उस अर्घ्यको स्वीकार किया। उस समय शैलराजका मुख खिले हुए कमलके समान हर्षसे खिल उठा। तब उन्होंने अर्घ्य ग्रहण करनेके पश्चात् मुनिवरसे मधुर वाणीमें धीरेसे उनकी तपस्याके विषयमें कुशल पूछी। इसके बाद मुनिने भी पर्वतराजसे कुशल-समाचार पूछा ॥ ११६—१२४ ॥

नारदजी बोले—महाचल ! तुम्हारे इस भवनको देखकर आश्र्वय होता है। तुमने इस भवनमें सभी पदार्थोंको संगृहीत कर रखा है। पर्वतराज ! तुम्हारी कन्दराओंकी पृथुता तो मनके समान गम्भीर है। तुम्हारे अन्यान्य गुणसमूहोंकी गुरुता अन्य स्थावरोंसे कहीं बढ़-चढ़कर है। तुम्हारे जलकी निर्मलता मनसे भी अधिक है। शैलराज ! मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं देख रहा हूँ, जो तुम्हारी कन्दराओंके भीतर वर्तमान न हो। स्वर्गमें कहीं भी तुमसे बढ़कर लक्ष्मी नहीं है। तुम अपनी गुफाओंमें निवास करनेवाले, नाना प्रकारकी तपस्याओंमें निरत, अग्नि एवं सूर्यकी-सी कान्तिवाले पावन मुनियोंद्वारा नित्य पवित्र होते रहते हो। देवता, गन्धर्व और किन्नरवृन्द स्वर्गवाससे विरक्त हो विमानोंकी अवहेलना कर पिताके गृहकी तरह तुम्हारे यहाँ निवास कर रहे हैं। अहो ! शैलेन्द्र ! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारी कन्दरामें लोकपति शंकर भी समाधिमें लीन होकर निवास कर रहे हैं। देवर्षि नारद इस प्रकार आदरपूर्ण वाणी बोल ही रहे थे कि उसी समय पर्वतराज हिमाचलकी पटरानी मेना अपनी कन्याके साथ मुनिका दर्शन करनेके लिये वहाँ आयीं। उनके साथ कुछ सखियाँ और सेविकाएँ भी थीं। उन्होंने लज्जा और प्रेमसे विनम्र हो उस भवनमें प्रवेश किया,

यत्र स्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी।
दृष्ट्वा तु तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा ॥ १३३

ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः।
तां विलोक्य महाभागो महर्षिरमितद्युतिः ॥ १३४

आशीर्भरमृतोद्वाररूपाभिस्तां व्यवर्धयत्।
ततो विस्मितचिन्ता तु हिमवद्विरपुत्रिका ॥ १३५

उदैक्षन्नारदं देवी मुनिमद्वृतरूपिणम्।
एहि वत्सेति चाप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा ॥ १३६

कण्ठे गृहीत्वा पितरमुत्सङ्गे समुपाविशत्।
उवाच माता तां देवीमधिवन्दय पुत्रिके ॥ १३७

भगवन्तं ततो धन्यं पतिमाप्यसि सम्मतम्।
इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रान्तपिहितानना ॥ १३८

किंचित्कम्पितमूर्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन।
ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा ॥ १३९

वत्से वन्दय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम्।
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया ॥ १४०

इत्युक्ता तु ततो वेगादुद्धृत्य चरणौ तदा।
ववन्दे मूर्धिं संधाय करपङ्कजकुड्मलम् ॥ १४१

कृते तु वन्दने तस्या माता सखीमुखेन तु।
चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यशंसिनाम् ॥ १४२

शरीर लक्षणानां तु विज्ञानाय तु कौतुकात्।
स्त्रीस्वभावाद्यदुहितुञ्जिनां हृदि समुद्ध्रहन् ॥ १४३

ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु।
अनुदीर्णोऽक्षतिमेने रम्यमेतदुपस्थितम् ॥ १४४

चोदितः शैलमहिषीसख्या मुनिवरस्तदा।
स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाच नारदः ॥ १४५

न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जिता।
उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः।
स्वच्छायया भविष्येयं किमन्यद् बहु भाष्यते ॥ १४६

जहाँ जितेन्द्रिय मुनिवर नारद हिमाचलके साथ बैठे हुए थे। तब हिमाचल-पत्नी मेनाने तेजके पुञ्जभूत मुनिको देखकर लज्जावश मुखको छिपाये हुए करकमलोंकी अञ्जलि बाँधकर मुनिकी वन्दना की ॥ १२५—१३३ १२॥

अमित कान्तिसम्पन्न एवं महान् भाग्यशाली महर्षि नारदने तब मेनाको देखकर अमृतके उद्घारस्वरूप आशीर्वचनोद्वारा उनकी शुभकामना की। हिमाचलकी पुत्री पार्वतीदेवी यह देखकर आश्वर्यचकित हो गयीं। वे अद्भुत रूपवाले नारदमुनिकी ओर एकटक देख रही थीं। उस समय देवर्षि नारदने 'बेटी! आओ' ऐसी स्नेहपूर्ण वाणीसे पुकारा भी, किंतु वे पिताके गलेको पकड़कर उनकी गोदमें छिपकर बैठ गयीं। यह देखकर माता मेनाने पार्वती देवीसे कहा—'बेटी! भगवान् नारदको प्रणाम करो, इससे तुम अपने मनके अनुकूल योग्य पति प्राप्त करोगी।' माताद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने वस्त्रके छोरसे अपने मुखको ढक लिया और मस्तकको थोड़ा झुका दिया, परंतु मुखसे कुछ नहीं कहा। तत्पश्चात् माताने पुनः अपनी कन्यासे इस प्रकार कहा—'बेटी! यदि तुम देवर्षि नारदको प्रणाम कर लो तो मैं तुम्हें बड़ी सुन्दर वस्तु दूँगी। मैं तुम्हें वह सुन्दर रत्ननिर्मित खिलौना दूँगी, जिसे मैंने बहुत दिनोंसे छिपाकर रखा है।' इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने शीघ्र ही अपने कमल-मुकुल-सदृश दोनों हाथोंसे मुनिके दोनों चरणोंको उठाकर मस्तकपर रख कर प्रणाम किया ॥ १३४—१४१॥

पार्वतीके प्रणाम कर लेनेके पश्चात् माता मेनाने कुतूहलवश कन्याके सौभाग्यसूचक शरीर-लक्षणोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये धीरेसे सखीद्वारा मुनिसे अनुरोध किया; क्योंकि स्त्री-स्वभाववश उनके हृदयमें कन्याविषयिणी चिन्ता उठ खड़ी हुई थी। पर्वतराज अपनी पत्नीके उस संकेतको जानकर मनमें परम प्रसन्न हुए कि यह तो बड़ा सुन्दर विषय उपस्थित हुआ। इसमें उन्हें कोई हानि नहीं दीख पड़ी, अतः वे स्वयं कुछ न बोले। तब हिमाचल-पत्नीकी सखीद्वारा अनुरोध किये जानेपर महाभाग मुनिवर नारद मुसकराते हुए इस प्रकार बोले—'भद्रे! इसका पति तो अभी जगत्मैं पैदा ही नहीं हुआ है। यह सभी शुभ लक्षणोंसे रहित है। इसकी हथेली सदा उत्तान ही रहती है तथा चरण भी कुलक्षणोंसे युक्त हैं। यह अपनी छायाके साथ अर्थात् अकेली ही रहेगी। इसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय।'

श्रुत्वैतत् सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो महाचलः ।
नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः ॥ १४७

हिमवानुवाच

संसारस्यातिदोषस्य दुर्विज्ञेया गतिर्यतः ।
सृष्ट्यां चावश्यभाविन्यां केनाप्यतिशयात्मना ॥ १४८
कर्त्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम् ।
यो जायते हि यद्बीजाज्जनेतुः स ह्यसार्थकः ॥ १४९
जनिता चापि जातस्य न कश्चिदिति यत्स्फुटम् ।
स्वकर्मणैव जायन्ते विविधा भूतजातयः ॥ १५०
अण्डजो ह्यण्डजाज्ञातः पुनर्जायत मानवः ।
मानुषाच्च सरीसृप्यां मनुष्यत्वेन जायते ॥ १५१
तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्मस्योत्कर्षणेन तु ।
अपुत्रजन्मिनः शेषाः प्राणिनः समवस्थिताः ॥ १५२
मनुजास्तत्र जायन्ते यतो न गृहधर्मिणः ।
क्रमेणाऽश्रमसम्प्राप्तिर्ब्रह्मचारिव्रतादनु ॥ १५३
तस्य कर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्धितः ।
संसारस्य कुतो वृद्धिः सर्वे स्युर्यदतिग्रहाः ॥ १५४
अतः कर्त्रा तु शास्त्रेषु सुतलाभः प्रशंसितः ।
प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणसंश्रयात् ॥ १५५
स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते ।
स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्यभाषिणी ।
शास्त्रालोचनसामर्थ्यमुज्जितं तासु वेधसा ॥ १५६
शास्त्रेषूक्तमसंदिग्धं बहुवारं महाफलम् ।
दशपुत्रसमा कन्या या न स्याच्छीलवर्जिता ॥ १५७
वाक्यमेतत् फलभ्रष्टं पुंसि ग्लानिकरं परम् ।
कन्या हि कृपणा शोच्या पितुर्दुःखविवर्धिनी ॥ १५८
यापि स्यात् पूर्णसर्वाङ्गा पतिपुत्रधनादिभिः ।
किं पुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधनादिभिः ॥ १५९
त्वं चोक्तवान् सुताया मे शरीरे दोषसंग्रहम् ।
अहो मुह्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद ॥ १६०

यह सुनकर पर्वतराज हिमाचल व्याकुल हो गये । उनका सारा धैर्य जाता रहा । तब वे अश्रुगदगद कण्ठसे नारदजीसे बोले ॥ १४२—१४७ ॥

हिमवानुने कहा—देवर्षे! इस अत्यन्त दोषपूर्ण संसारकी गति दुर्विज्ञेय है । इस अवश्यम्भाविनी सृष्टिमें किसी कर्ता महापुरुषद्वारा जो मर्यादा स्थापित की गयी है, वह संसारी जीवोंके लिये स्थिर है । जो जिसके बीजसे उत्पन्न होता है, वह उस पैदा करनेवालेके लिये निरर्थक होता है, उसी प्रकार पैदा करनेवाला भी पैदा हुएका कोई नहीं है—यह तो स्पष्ट है; क्योंकि प्राणियोंकी अनेकों जातियाँ अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही उत्पन्न होती हैं । एक ही जीव अण्डजके सम्पर्कसे अण्डजयोनिमें पैदा होता है और वही पुनः मनुष्यके संयोगसे मानव-योनिमें उत्पन्न होता है । फिर मानव-योनिसे भी उलटकर सर्प आदि रेंगेवाली योनियोंमें जन्म लेता है । वहाँ भी धर्मकी उत्कृष्टतासे उत्तम जातिमें जन्म होता है । शेष जो अधार्मिक प्राणी होते हैं, वे पुत्रहीन होते हैं । उनमें गृहस्थधर्मका सुचारुरूपसे पालन न करनेवाले मानवोंको पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती । इन आश्रमोंकी प्राप्ति उसी कर्ताकी व्यवस्थासे, जिसने संसारकी वृद्धि की है, क्रमशः ब्रह्मचर्य ब्रतके बाद होती है । यदि सभी प्राणी आश्रमधर्मका त्याग कर दें तो संसारकी वृद्धि कैसे हो सकती है । इसीलिये सृष्टिकर्तने शास्त्रोंमें नरकसे त्राण करनेका लोभ दिखाकर प्राणियोंको मोहित करनेके लिये पुत्रप्राप्तिकी प्रशंसा की है; परंतु प्राणियोंकी सृष्टि खीके बिना हो नहीं सकती और वह स्त्री-जाति स्वभावसे ही दयनीय और दीनतापूर्वक बोलनेवाली होती है । इसीलिये ब्रह्माने उन स्त्रियोंको शास्त्रालोचनकी शक्ति नहीं दी है ॥ १४८—१५६ ॥

इसी प्रकार शास्त्रोंमें अनेकों बार निश्चितरूपसे इस महान् फलका वर्णन किया गया है कि जो कन्या शील-सदाचारसे रहित न हो, वह दस पुत्रोंके समान मानी गयी है; किंतु यह वाक्य निष्फल है और पुरुषके लिये अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न करनेवाला है; क्योंकि जो कन्या पति, पुत्र, धन आदि सभी सुख-साधनोंसे पूर्ण सम्पन्न होनेपर भी जब कृपण, शोचनीय और पिताके दुःखको बढ़ानेवाली होती है, तब जो पति, पुत्र, धन आदिसे हीन अभागिनी हो तो उसके विषयमें क्या कहना है । नारदजी! आपने मेरी कन्याके शरीरमें तो दोष-समूहका ही वर्णन किया है, इसी कारण मैं मोहमें पड़ा हूँ, मेरा शरीर सूखा जा रहा

अयुक्तमथ वक्तव्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम्।
 अनुग्रहेण मे छिन्थि दुःखं कन्याश्रयं मुने॥ १६१

परिच्छिन्नेऽप्यसंदिग्धे मनः परिभवाश्रयम्।
 तृष्णामुष्णातिनिष्णाता फललोभाश्रयाशुभा॥ १६२

स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्।
 इहामुत्र सुखायोक्तं सत्पतिप्राप्निसंज्ञितम्॥ १६३

दुर्लभः सत्पतिः स्त्रीणां विगुणोऽपि पतिः किल।
 न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्या कदाचन॥ १६४

यतो निःसाधनो धर्मः परिमाणोऽन्तिरा रतिः।
 धनं जीवितपर्यासं पत्यौ नार्याः प्रतिष्ठितम्॥ १६५

निर्धनो दुर्भगो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः।
 दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि॥ १६६

त्वया चोक्तं हि देवर्षे न जातोऽस्याः पतिः किल।
 एतद्वौर्भाग्यमतुलमसंख्यं गुरु दुःसहम्॥ १६७

चराचरे भूतसर्गे यदद्यापि च नो मुने।
 न संजात इति ब्रूषे तेन मे व्याकुलं मनः॥ १६८

मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्।
 लक्षणं हस्तपादादौ विहितैर्लक्षणैः किल॥ १६९

सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुङ्गव।
 उत्तानहस्तता प्रोक्ता याचतामेव नित्यदा॥ १७०

शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम्।
 स्वच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तो व्यभिचारिणौ॥ १७१

तत्रापि श्रेयसी ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः।
 शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक् फलनिवेदिनः॥ १७२

सौभाग्यधनपुत्रायुः पतिलाभानुशंसनम्।
 तैश्च सर्वैर्विहीनेयं त्वमात्थ मुनिपुङ्गव॥ १७३

त्वं मे सर्वं विजानासि सत्यवागसि चाप्यतः।
 मुह्यामि मुनिशार्दूल हृदयं दीर्घतीव मे॥ १७४

है, मनमें ग्लानि हो रही है और कष्ट पा रहा हूँ। मुने! इस समय मुझपर अनुग्रह करके (कन्याके कष्ट-निवारक उपाय) यदि अयुक्त अथवा दुष्प्राप्य भी हो तो बतलाइये और मेरे कन्याविषयक दुःखको दूर कीजिये; क्योंकि निःसंदेहरूपसे कार्य-सिद्धिकी सम्भावना होनेपर भी फलके लोभमें आसक्त एवं कार्य-साधनमें निपुण अशुभ तृष्णा मेरे परिभवयुक्त मनको ठग रही है। स्त्रियोंके लिये उत्तम पतिकी प्राप्ति ही उनके सौभाग्यशाली जन्मकी सूचक है तथा वह पितृकुल एवं पतिकुल—दोनों कुलोंके लिये इहलोक और परलोकमें सुखका साधन बतलायी गयी है। इस प्रकार स्त्रियोंके लिये उत्तम पतिका मिलना तो दुर्लभ है ही, परंतु गुणहीन पति भी नारीको पुण्यके बिना कभी नहीं प्राप्त होता; क्योंकि नारीको साधनरहित धर्म, प्रचुर मात्रामें कामवासनाकी प्राप्ति और जीवन-निर्वाहके लिये धन पतिके द्वारा ही प्राप्त होते हैं॥ १५७-१६५॥

पति निर्धन, अभाग, मूर्ख और सभी शुभ लक्षणोंसे रहित क्यों न हो, किंतु वह नारीके लिये सदैव परम देवता कहा गया है। देवर्षे! आपने कहा है कि मेरी पुत्रीका पति पैदा ही नहीं हुआ है, यह तो इसका अतुलनीय एवं बहुत बड़ा दुःसह दुर्भाग्य है। मुने! आप जो ऐसा कह रहे हैं कि चराचर प्राणियोंकी सृष्टिमें वह अभीतक उत्पन्न ही नहीं हुआ है, इससे मेरा मन व्याकुल हो गया है। मनुष्यों एवं देवजातियोंके शुभाशुभसूचक लक्षण हाथों एवं पैरोंमें चिह्नित लक्षणोंद्वारा जाने जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें भी आपने इसे उत्तानहस्ता बतलाया है। यह उत्तानहस्ता सदा याचकोंकी ही कही गयी है, किंतु जो सौभाग्यशाली, धन्यवादके पात्र और दानी होते हैं, उनके हाथ कभी उत्तान नहीं रहते। मुने! आपने यह भी कहा है कि इसके चरण अपनी छायासे युक्त होनेके कारण दोषी हैं, अतः इस विषयमें भी हमें कल्याणकारिणी आशा नहीं प्रतीत हो रही है। शरीरके अन्यान्य लक्षण पृथक्-पृथक् फल सूचित करते हैं। उनमें जो सौभाग्य, धन, पुत्र, आयु और पति-प्राप्तिके सूचक होते हैं, उन सभी लक्षणोंसे मेरी यह कन्या हीन है—ऐसा आप कह रहे हैं। मुनिश्रेष्ठ! आप मेरी सारी मनोगत अभिलाषाओंको जानते हैं। मुनिशार्दूल! आप सत्यवादी हैं, इसी कारण (आपकी बात सुनकर) में मोहित हो रहा हूँ और मेरा हृदय

इत्युक्त्वा विरतः शैलो महादुःखविचारणात् ।
श्रुत्वैतदखिलं तस्माच्छैलराजमुखाम्बुजात् ।
स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवपूजितः ॥ १७५
नारद उवाच

हर्षस्थानेऽपि महति त्वया दुःखं निरूप्यते ।
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थं मोहं यासि महागिरे ॥ १७६
इमां शृणु गिरं मत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम् ।
समाहितो महाशैल मयोक्तस्य विचारणे ॥ १७७
न जातोऽस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तं हिमाचल ।
न स जातो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः ।
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शंकरः परमेश्वरः ॥ १७८
ब्रह्मविष्णवन्द्रमुनयो जन्ममृत्युजरार्दिताः ।
तस्यैते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे ॥ १७९
आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः ।
विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः ॥ १८०
मन्यसे मायया जातं विष्णुं चापि युगे युगे ।
आत्मनो न विनाशोऽस्ति स्थावरान्तेऽपि भूधरः ॥ १८१
संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्य देहिनः ।
नश्यते देह एवात्र नात्मनो नाश उच्यते ॥ १८२
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तिः ।
स जन्ममृत्युदुःखार्तो ह्यवशः परिवर्तते ॥ १८३
महादेवोऽचलः स्थाणुर्जातो जनकोऽजरः ।
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः ॥ १८४
यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जिता तव ।
शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेन विचारणम् ॥ १८५
लक्षणं दैविको ह्यङ्कः शरीरावयवाश्रयः ।
सर्वायुर्धनसौभाग्यपरिमाणप्रकाशकः ॥ १८६

फटा-सा जा रहा है। ऐसा कहकर हिमाचल उस महान् दुःखकी कल्पनासे विरत हो गये। उस शैलराजके मुखकमलसे निकली हुई ये सारी बातें सुनकर देवपूजित नारदजी मुसकराते हुए इस प्रकार बोले ॥ १६६—१७५ ॥

नारदजीने कहा—गिरिराज! आप तो महान् हर्षका अवसर उपस्थित होनेपर भी दुःखकी गाथा गा रहे हैं और मेरे अस्पष्ट वाक्यके अर्थको समझे बिना मोहको प्राप्त हो रहे हैं। शैलराज! इस रहस्यपूर्ण वाणीका तात्पर्य मुझसे सुनिये और मेरे द्वारा कही हुई बातपर सावधानीपूर्वक विचार कीजिये। हिमाचल! मैंने जो यह कहा है कि इस देवीका पति उत्पन्न ही नहीं हुआ है, इसका अभिप्राय यह है कि जो भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें वर्तमान रहनेवाले, जीवोंके शरणदाता, अविनाशी, नियामक, कल्याणकर्ता और परमेश्वर हैं, वे महादेव उत्पन्न नहीं हुए हैं अर्थात् वे अनादि हैं, उनका जन्म नहीं होता। पर्वतराज! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मुनि आदि जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे ग्रस्त हैं। ये सभी उस परमेश्वरके खिलौनेमात्र हैं। उन्होंकी इच्छासे त्रिभुवनके स्वामी ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और विष्णु प्रत्येक युगमें विशाल शरीर धारण करके नाना प्रकारकी जातियोंमें उत्पन्न होते हैं। पर्वतराज! प्रत्येक युगमें मायाका आश्रय लेकर उत्पन्न हुए विष्णुको तो तुम भी मानते ही हो। स्थावर योनिमें जन्म लेनेपर भी शरीरान्त होनेपर आत्माका विनाश नहीं होता। संसारमें उत्पन्न होकर मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका शरीरमात्र नष्ट होता है, आत्माका नाश नहीं कहा जाता। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त जो यह संसार कहा जाता है, उसमें उत्पन्न हुए प्राणी जन्म-मृत्युके दुःखसे पीड़ित होकर पराधीन रहते हैं, किंतु महादेव स्थाणुकी भाँति अचल हैं। वे वृद्धावस्थासे रहित तथा सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, किंतु स्वयं किसीसे उत्पन्न नहीं होते। वे ही निर्दोष जगदीश्वर शङ्कर इस कन्याके पति होंगे ॥ १७६—१८४ ॥

साथ ही मैंने तुमसे जो यह कहा था कि यह देवी लक्षणोंसे रहित है, उस वाक्यका अभिप्राय भी सम्यक्रूपसे सुनो। पर्वतराज! शरीरके अवयवोंमें अङ्गित लक्षण दैविक चिह्न होता है। वह सभीके आयु, धन और सौभाग्यके परिणामको प्रकट करनेवाला होता है,

अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्यास्य भूधर।
 नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते ॥ १८७
 अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते।
 यथाहमुक्तवान् तस्या ह्युत्तानकरतां सदा ॥ १८८
 उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु।
 सुरासुरमुनिब्रातवरदेवं भविष्यति ॥ १८९
 यथा प्रोक्तं तदा पादौ स्वच्छायाव्यभिचारिणौ।
 अस्याः शृणु ममात्रापि वाग्युक्तिं शैलसत्तम ॥ १९०
 चरणौ पद्मसंकाशावस्याः स्वच्छनखोज्ज्वलौ।
 सुरासुराणां नमतां किरीटमणिकान्तिभिः ॥ १९१
 विचित्रवर्णं र्भासन्तौ स्वच्छायाप्रतिबिम्बितौ।
 भार्या जगदुरोहोषा वृषाङ्कस्य महीधर ॥ १९२
 जननी लोकधर्मस्य सम्भूता भूतभाविनी।
 शिवेयं पावनायैव त्वक्षेत्रे पावकद्युतिः ॥ १९३
 तद्यथा शीघ्रमेवैषा योगं यायात् पिनाकिना।
 तथा विधेयं विधिवत्त्वया शैलेन्द्रसत्तम।
 अत्यन्तं हि महत् कार्यं देवानां हिमभूधर ॥ १९४

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात् सर्वमेव हि।
 आत्मानं स पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा ॥ १९५
 नमस्कृत्य वृषाङ्काय तदा देवाय धीमते।
 उवाच सोऽपि संहष्टो नारदं तु हिमाचलः ॥ १९६

हिमवानुवाच

दुस्तरान्नरकाद् घोरादुद्धूतोऽस्मि त्वया मुने।
 पातालादहमुद्धृत्य सप्तलोकाधिपः कृतः ॥ १९७
 हिमाचलोऽस्मि विख्यातस्त्वया मुनिवराधुना।
 हिमाचलेऽचलगुणां प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम् ॥ १९८
 आनन्ददिवसाहारि हृदयं मेऽधुना मुने।
 नाथ्यवस्यति कृत्यानां प्रविभागविचारणम् ॥ १९९
 यदि वाचामधीशः स्यां त्वदगुणानां विचारणे ॥ २००

किंतु इसके शरीरमें इस अनन्त एवं अप्रमेय सौभाग्यके किसी लक्षणाकार चिह्नका संविधान नहीं किया गया है, इसीलिये मैंने कहा है कि इसके शरीरमें लक्षण नहीं है। महाबुद्धिमान् हिमाचल! जो मैंने इसकी सदा उत्तानकरताका कथन किया था, उसका तात्पर्य यह है कि इस देवीका यह वरदायक हाथ सदा उत्तान ही रहेगा, जिससे यह सुर, असुर और मुनिसमूहके लिये वरदायिनी होगी। पर्वतश्रेष्ठ! उस समय मैंने जो ऐसा कहा था कि इसके चरण अपनी छायामें रहनेके कारण दोषी हैं, इस विषयमें भी तुम मेरे वचनोंकी युक्ति सुनो। इसके कमल-सदृश चरण स्वच्छ उज्ज्वल नखोंसे सुशोभित हैं। जब वे नमस्कार करनेवाले सुरों एवं असुरोंके किरीटोंमें जड़ी हुई मणियोंकी विचित्र वर्णकी कान्तिसे उद्भासित होंगे, तब अपनी छायासे प्रतिबिम्बित कहलायेंगे। महीधर! आपकी यह कन्या जगदुरु वृषभध्वज शङ्करकी भार्या, लोकधर्मकी जननी, प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली, कल्याणस्वरूपा और अग्निके समान कान्तिमती है। यह तुम्हारे क्षेत्रमें तुम्हें पावन करनेके लिये प्रकट हुई है। इसलिये श्रेष्ठ पर्वतराज! जिस प्रकार यह शीघ्र-से-शीघ्र पिनाकधारी शङ्करजीके साथ संयुक्त हो जाय, तुम्हें विधिपूर्वक वैसा ही विधान करना चाहिये। हिमाचल! इससे देवताओंका अत्यन्त महान् कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ १९५—१९४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! नारदजीके मुखसे ये सारी बातें सुनकर उस समय मेनाके प्राणपति शैलराज अपनेको पुनः उत्पन्न हुआ-सा अनुभव करने लगे। तत्पश्चात् हर्षसे फूले हुए हिमाचल भी उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेव वृषभध्वजको नमस्कार करके नारदजीसे बोले ॥ १९५—१९६ ॥

हिमवान् ने कहा—मुने! आपने तो मुझे घोर दुस्तर नरकसे उबार लिया है और पाताललोकसे निकालकर सातों लोकोंका अधिपति बना दिया है। मुनिवर! इस समय आपने हिमाचलपर जो अचल गुणवाली समृद्धि उत्पन्न कर दी है, इससे मैं सचमुच हिमाचल नामसे विख्यात कर दिया गया हूँ। मुने! इस समय मेरा हृदय आनन्दमय दिनका अनुभव कर रहा है, जिससे यह आपके कृत्योंका विभागपूर्वक विचार करनेमें सक्षम नहीं हो रहा है। यदि मैं वाणीके अधीक्षर बृहस्पति हो जाऊँ तो भी आपके गुणोंका विचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने।
तवास्मान् प्रति चापल्यं व्यक्तं मम महामुने॥ २०१
भवद्विरेव कृत्योऽहं निवासायात्मरूपिणाम्।
मुनीनां देवतानां च स्वयं कर्तापि कल्मषम्॥ २०२
तथापि वस्तुन्येकस्मिन्नाज्ञा मे सम्प्रदीयताम्।
इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरे॥ २०३
तथा च नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो।
सुरकार्ये य एवार्थस्तवापि सुमहत्तरः॥ २०४
इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं प्रति।
स गत्वा शक्रभवनममरेण ददर्श ह॥ २०५
ततोऽभिरूपे स मुनिरूपविष्टो महासने।
पृष्ठः शक्रेण प्रोवाच हिमजासंश्रयां कथाम्॥ २०६

नारद उवाच

समूह्य यत्तु कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि।
किंतु पञ्चशरस्यैव समयोऽयमुपस्थितः॥ २०७
इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना।
चूताङ्गुरास्त्रं सस्मार भगवान् पाकशासनः॥ २०८
संस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता।
उपतस्थे रतियुतः सविलासो झाषध्वजः।
प्रादुर्भूतं तु तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच सादरम्॥ २०९

शक्र उवाच

उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति वदे प्रियम्।
मनोभवोऽसि तेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्॥ २१०
तद्यथार्थकमेव त्वं कुरु नाकसदां प्रियम्।
शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव।
संयुतो मधुना चैव ऋतुराजेन दुर्जय॥ २११
इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये।
प्रोवाच पञ्चबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम्॥ २१२

मुने! आप-जैसे महर्षियोंका दर्शन निश्चय ही अमोघ होता है। महामुने! हमलोगोंके प्रति आपकी अस्थिरता तो मुझे स्पष्टरूपसे ज्ञात है। आप लोगोंद्वारा ही मैं आत्मस्वरूप मुनियों एवं देवताओंके निवास-योग्य बनाया गया हूँ। यद्यपि मैं स्वयं भी पाप करनेवाला हूँ, तथापि किसी एक वस्तुके लिये मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये। उस समय हर्षसे भरे हुए शैलराजके इस प्रकार कहनेपर नारदजीने कहा—‘प्रभो! तुमने सब कुछ कर लिया। (अब मुझे यही कहना है कि) देवताओंके कार्यका जो प्रयोजन है, वह तुम्हारे लिये भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा।’ ऐसा कहकर नारदजी शीघ्र ही स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ इन्द्रके भवनमें जाकर वे देवराज इन्द्रसे मिले। जब वे एक सुन्दर सिंहासनपर आसीन हो गये, तब इन्द्रने उनसे जिज्ञासा प्रकट की। फिर तो वे पार्वती-सम्बस्थी कथाका वर्णन करने लगे॥ १९७—२०६॥

नारदजी बोले—देवराज! संगठित होकर सबके द्वारा जो काम किया जाना चाहिये, उसे तो मैंने अकेले ही कर दिया; किंतु इस अवसरपर अब कामदेवकी आवश्यकता आ पड़ी है। कार्यदर्शी नारद मुनिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवराज भगवान् इन्द्रने आमके बौरके अङ्गुरको अस्त्ररूपमें धारण करनेवाले कामदेवका स्मरण किया। सहस्रनेत्रधारी बुद्धिमान् इन्द्रद्वारा स्मरण किये जानेपर झक्खेतु कामदेव अपनी पली रतिके साथ विलासपूर्वक शीघ्र ही उपस्थित हुआ। उसे उपस्थित देखकर इन्द्रने आदरपूर्वक उससे कहा॥ २०७—२०९॥

इन्द्र बोले—मनोभव! तुम तो अजेय हो और मनसे ही उत्पन्न होते हो, अतः सभी प्राणियोंके मनोगत भावोंको भलीभाँति जानते हो। ऐसी दशामें तुम्हारे प्रति अधिक उपदेश करनेसे क्या लाभ? मैं तुमसे एक प्रिय बात कह रहा हूँ। तुम स्वर्गवासियोंके उस प्रिय कार्यको अवश्य पूर्ण करो। (वह यह है कि) तुम चैत्रमास और ऋतुराज वसन्तको साथ लेकर शङ्करजीका गिरिराजकुमारी पार्वतीके साथ शीघ्र ही संयोग स्थापित करा दो। अपनी स्वार्थसिद्धिके निमित्त इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पञ्चबाण कामदेव भयभीत होकर इन्द्रसे इस प्रकार बोला॥ २१०—२१२॥

काम उवाच

अनया देवसामउया मुनिदानवभीमया ।
दुःसाध्यः शङ्करो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो ॥ २१३
तस्य देवस्य वेत्थं त्वं करणं तु यदव्ययम् ।
प्रायः प्रसादः कोपोऽपि सर्वो हि महतां महान् ॥ २१४
सर्वोपभोगसारा हि सुन्दर्यः स्वर्गसम्भवाः ।
अध्याश्रितं च यत्सौख्यं भवता नष्टचेष्टितम् ॥ २१५
प्रमादादथ विभ्रंश्येदीशं प्रतिविचिन्त्यताम् ।
प्रागेव चेह दृश्यन्ते भूतानां कार्यसम्भवाः ॥ २१६
विशेषं काङ्क्षतां शक्र सामान्याद् भ्रंशनं फलम् ।
श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामर्युतः ॥ २१७

शक्र उवाच

वयं प्रमाणास्ते हृत्र रतिकान्तं न संशयः ।
संदर्शेन विना शक्तिरयस्कारस्य नेष्यते ।
कस्यचिच्च छ्रचिद् दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः ॥ २१८
इत्युक्तः प्रययौ कामः सखायं मधुमाश्रितः ।
रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थं तु हिमभूभृतः ॥ २१९
स तु तत्राकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम् ।
महार्था ये हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम् ॥ २२०
तदादावेव संक्षोभ्य नियतं सुजयो भवेत् ।
संसिद्धिं प्राप्नुयुश्चैव पूर्वे संशोध्य मानसम् ॥ २२१
कथं च विविधैर्भवैर्द्वेषानुगमनं विना ।
क्रोधः क्रूरतरासङ्गाद् भीषणोर्ध्वा महासखीम् ॥ २२२
चापल्यमूर्धिन विध्वस्तर्थैर्यथारां महाबलाम् ।
तामस्य विनियोक्त्यामि मनसो विकृतिं पराम् ॥ २२३

कामदेवने कहा—जगत्राथ ! क्या आप यह नहीं जानते कि मुनियों और दानवोंको भयभीत करनेवाली इस देवसामग्रीसे देवाधिदेव शङ्करको वशमें कर लेना सहज नहीं है । उन महादेवकी इन्द्रियाँ विकाररहित हैं, इसका भी ज्ञान तो आपको है ही । साथ ही महापुरुषोंकी प्रसन्नता और क्रोध भी महान् होता है । इस समय आप जो सम्पूर्ण उपभोगोंकी सारभूता स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाली सुन्दरी अप्सराओं तथा बिना चेष्टा किये ही प्राप्त होनेवाले सुखदायक पदार्थोंका उपभोग कर रहे हैं, वह शङ्करजीके प्रति प्रमाद करनेसे नष्ट हो जायगा । थोड़ा इसपर भी विचार कर लीजिये; क्योंकि सामान्य प्राणियोंको भी कार्यफलकी सम्भावना पहलेसे ही दीखने लगती है । इन्द्रदेव ! जो लोग सामान्यको छोड़कर विशेषकी आकाङ्क्षा करते हैं, उनका सामान्यसे पतन हो जाना ही फल है । (विशेष तो अप्राप्त है ही ।) कामदेवके इस कथनको सुनकर देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रने उससे कहा— ॥ २१३—२१७ ॥

इन्द्र बोले—रतिवल्लभ ! तुम्हारे इस कथनके लिये हमलोग प्रमाण हैं । तुम्हारे कथनमें कोई संदेह नहीं है, किंतु (निर्मित वस्तुके) आकार-प्रकारके बिना लोहार अथवा कारीगरकी शक्तिका पता नहीं चलता तथा किसीकी भी शक्ति किसी विशेष विषयमें ही सफलरूपसे देखी जाती है, सर्वत्र नहीं । इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर रतिसहित कामदेव सहायकरूपमें अपने मित्र मधुमास (अथवा वसन्त)-को साथ लेकर प्रस्थित हुआ और शीघ्र ही हिमाचलके शिखरपर जा पहुँचा । वहाँ जाकर वह कार्यकी सिद्धिके लिये उपायपूर्वक चिन्ता करने लगा । उसने सोचा कि जो लोग महान् लक्ष्यसे युक्त और अटल निश्चयवाले हैं, उनके मनको जीतना अत्यन्त कठिन है । अतः सर्वप्रथम उसीको ही संक्षुब्ध कर निश्चयरूपसे विजय प्राप्त की जा सकती है; क्योंकि पूर्वकालमें मनको शुद्ध करके ही लोगोंने उत्तम सिद्धि प्राप्त की है । (किंतु कठिनाई तो यह है कि) क्रूरतर प्राणियोंके सङ्गसे अनेकों प्रकारके भावोंद्वारा द्वेषका अनुगमन किये बिना क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है ? इसके लिये मैं भयंकर ईर्ष्या नामकी महासखीको चपलताके मस्तकपर स्थापित करूँगा, तत्पश्चात् धैर्यके प्रवाहको विध्वस्त करनेवाली, महान् बलवती मनकी उस उत्कृष्ट विकृतिको शङ्करजीपर विनियुक्त करूँगा ।

पिधाय धैर्यद्वाराणि संतोषमपकृष्य च।
अवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिदतिपण्डितः ॥ २२४

विकल्पमात्रावस्थाने वैरूप्यं मनसो भवेत्।
पश्चान्मूलक्रियारम्भगम्भीरावर्तदुस्तरः ॥ २२५

हरिष्वामि हरस्याहं तपस्तस्य स्थिरात्मनः।
इन्द्रियग्राममावृत्य रम्यसाधनसंविधिः ॥ २२६
चिन्तयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाश्रमम्।
जगाम जगतीसारं सरलद्वुमवेदिकम् ॥ २२७

शान्तसत्त्वसमाकीर्णमचलप्राणिसंकुलम् ।
नानापुष्पलताजालं गगनस्थगणेश्वरम् ॥ २२८

निर्व्यग्रवृषभाध्युष्टनीलशाद्वलसानुकम् ।
तत्रापश्यत् त्रिनेत्रस्य रम्यं कञ्चिद्द्वितीयकम् ॥ २२९

वीरकं लोकवीरेशमीशानसदृशद्युतिम्।
यक्षकुङ्कुमकिञ्जलकपुञ्जपिङ्गंजटासटम् ॥ २३०

वेत्रपाणिनमव्यग्रमुग्रभोगीन्द्रभूषणम् ।
ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्राभलोचनम् ॥ २३१

प्रेक्षमाणमृजुस्थानं नासिकाग्रं सुलोचनैः।
श्रवस्तरससिंहन्द्रचर्मलम्बोत्तरीयकम् ॥ २३२

श्रवणाहिफलन्मुक्तं निःश्वासानलपिङ्गलम्।
प्रेष्ठुत्कपालपर्यन्ततुम्बिलम्बिजटाचयम् ॥ २३३

कृतवासुकिपर्यङ्गनाभिमूलनिवेशितम् ।
ब्रह्माञ्जलिस्थपुच्छाग्रनिबद्धोरगभूषणम् ॥ २३४

ददर्श शङ्करं कामः क्रमप्रासान्तिकं शनैः।
ततो भ्रमरङ्गङ्कारमालम्बिद्वुमसानुकम् ॥ २३५

प्रविष्टः कर्णरन्धेण भवस्य मदनो मनः।

वहाँ धैर्यके द्वारोंको बंद कर तथा संतोषको दूर हटाकर कोई भी ऐसा उत्कृष्ट विद्वान् नहीं है, जो मुझे जाननेमें समर्थ हो सके। किसी भी कार्यके आरम्भमें विकल्पमात्रका विचार करनेसे मनकी विरूपता उत्पन्न हो जाती है, जिससे आगे चलकर मूल कार्यके आरम्भ होनेपर गम्भीर आपत्तियोंकी लहरें उठने लगती हैं और कार्य दुस्तर हो जाता है। अतः अब मैं रमणीय साधनोंके संविधानसे उन स्थिरात्मा शङ्करजीके इन्द्रियसमूहको ढककर उनकी तपस्याको भङ्ग करूँगा ॥ २१८—२२६ ॥

इस प्रकार सोच-विचारकर कामदेव प्राणियोंके पालक शङ्करजीके उस आश्रमपर गया, जो पृथ्वीका सारभूत था। वहाँ आमके वृक्ष उगे हुए थे, जिनकी छायामें वेदिकाएँ बनी थीं। वह शान्त स्वभाववाले जीवोंसे व्यास तथा पर्वतीय जीवोंसे भरा हुआ था। वहाँ नाना प्रकारके पुष्पोंकी लताएँ फैली हुई थीं। ऊपर आकाशमण्डलमें गणेश्वर विराजमान थे। वहीं एक ओर नीली घासके ऊपर वृषभराज नन्दीश्वर निश्चिन्तभावसे बैठे हुए थे। वहाँ कामदेवने त्रिनेत्रधारी शङ्करजीके निकट किसी दूसरे सुन्दर पुरुषको देखा। उसका नाम वीरक था। वह जगत्के वीरोंमें प्रधान था। उसकी शरीर-कान्ति शङ्करजीके समान थी। उसकी जटाएँ यक्षकुङ्कुम* और पद्मकेसरके पुञ्जके समान पीली थीं। उसके हाथमें बेत शोभा पा रहा था। वह विषेले सर्पोंके आभूषणोंसे विभूषित हो निश्चिन्त भावसे बैठा हुआ था। तदनन्तर कामदेवकी दृष्टि क्रमशः धीर-धीर निकट प्राप्त हुए शङ्करजीपर पड़ी, जिनके कमल-दलके सदृश नेत्र अधखुले थे। जो अपने सुन्दर नेत्रोंद्वारा सीधे नासिकाके अग्रभागको देख रहे थे। उनके कंधेपर सिंहके चमड़ेका ऐसा लम्बा उत्तरीय लटक रहा था, जिससे रक्त टपक रहा था। कानोंमें कुण्डलरूपमें पहने हुए सर्पोंके मुखसे निकलती हुई निःश्वासगिन्से उनका शरीर पीला दीख रहा था। उनकी लम्बी जटाएँ खप्पर और तुम्बीतक हिलती हुई शोभा पा रही थीं। वे वासुकि नागकी शय्या बनाकर उसके नाभिमूलपर बैठे हुए थे। उनकी ब्रह्माञ्जलिमें भूषणरूपसे धारण किये गये सर्पोंकी पूँछका अग्रभाग स्थित था। तत्पश्चात् शङ्करजी जिस वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, उसकी चोटीपर भ्रमरोंकी गुंजार गूँज उठी। उसी समय कामदेव शङ्करजीके श्रोत्रमार्गसे मनमें प्रविष्ट हुआ ॥ २२७—२३५ ॥

* कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोलके समिश्रणसे बने हुए अङ्गराग या चन्दनको यक्षकुङ्कुम कहते हैं।

शङ्करस्तमथाकण्ठं मधुरं मदनाश्रयम् ॥ २३६
 सस्मार दक्षदुहितां दयितां रक्तमानसः ।
 ततः सा तस्य शनकैस्तिरोभूयातिनिर्मला ॥ २३७
 समाधिभावना तस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी ।
 ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूहपिहिताशयः ॥ २३८
 वशित्वेन बुबोधेशो विकृतिं मदनात्मिकाम् ।
 ईषत्कोपसमाविष्टो धैर्यमालम्ब्य धूर्जटिः ॥ २३९
 निरासे मदनस्थित्या योगमायासमावृतः ।
 स तया माययाऽविष्टो जज्वाल मदनस्ततः ॥ २४०
 इच्छाशरीरो दुर्जयो रोषदोषमहाश्रयः ।
 हृदयान्त्रिगतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः ॥ २४१
 बहिःस्थलं समालम्ब्य ह्युपतस्थौ झषध्वजः ।
 अनुयातोऽथ हृद्येन मित्रेण मधुना सह ॥ २४२
 सहकारतरौ दृष्टा मृदुमारुतनिर्धुतम् ।
 स्तबकं मदनो रम्यं हरवक्षसि सत्वरम् ॥ २४३
 मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः ।
 शिवस्य हृदये शुद्धे नाशशाली महाशरः ॥ २४४
 पपात परुषप्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः ।
 ततः करणसंदेहो विद्धस्तु हृदये भवः ॥ २४५
 बभूव भूधरौपम्यधैर्योऽपि मदनोन्मुखः ।
 ततः प्रभुत्वाद्वावानां नावेशं समपद्यत ॥ २४६
 बाह्यं बहु समासाद्य प्रत्यूहप्रसवात्मकम् ।
 ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे ॥ २४७
 बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम् ।
 रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम् ॥ २४८
 तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः ।
 तं नेत्रविस्फुलिङ्गेन क्रोशतां नाकवासिनाम् ॥ २४९
 गमितो भस्मसात् तूर्णं कंदर्पः कामिदर्पकः ।
 स तु तं भस्मसात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः ॥ २५०

भ्रमरोंकी उस मधुर झंकारको सुनकर शङ्करजीका मन कामदेवके प्रभावसे अनुरक्त हो गया । तब उन्होंने अपनी प्रिया दक्षकन्या सतीका स्मरण किया । उस समय उनकी वह लक्ष्यको प्रत्यक्षरूपमें प्रकट करनेवाली अत्यन्त निर्मल समाधिभावना धीरे-धीरे तिरोहित हो गयी । वे विघ्नोद्भारा लक्ष्यके अवरुद्ध हो जानेसे सतीकी तन्मयताको प्राप्त हो गये । थोड़ी देर बाद जितेन्द्रिय होनेके कारण शङ्करजी इस कामजन्य विकारको समझ गये । फिर तो उनमें थोड़ा क्रोधकी झलक आ गयी । तब उन जटाधारीने धैर्य धारणकर अपनेको कामदेवकी स्थितिसे मुक्त करनेके लिये योगमायाका आश्रय लिया । उस मायासे आविष्ट होनेके कारण कामदेव जलने लगा । तत्पश्चात् जो वासना और दुर्व्यसनका मूर्तरूप, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाला, अजेय, क्रोध और दोषका महान् आश्रयस्थान था, वह कामदेव शङ्करजीके हृदयसे बाहर निकला और एक बाहरी स्थानका सहारा लेकर निकट ही खड़ा हो गया । उस समय उसका परम स्नेही मित्र मधु (चैत्रमास या वसन्त) भी उसके साथ था । वहाँ आमके वृक्षपर मन्द वायुसे हिलाये गये रमणीय पुष्पगुच्छको देखकर मकरध्वज कामदेवने शीघ्र ही शङ्करजीके वक्षःस्थलपर वह मोहन नामक बाण छोड़ा । वह विमोहन नामक पुष्पबाण विनाशकारी, महान् प्रभावशाली, कठोर और विशाल था । वह शङ्करजीके शुद्ध हृदयपर जा गिरा । जिससे उनका हृदय घायल हो गया और उनकी इन्द्रियाँ विचलित हो गयीं । फिर तो पर्वतके समान धैर्यशाली होनेपर भी शङ्करजी कामोन्मुख हो गये, किंतु अनेकों बाहरी विघ्नसमूहोंके प्राप्त होनेपर भी सद्वावोंके प्रभुत्वके कारण उनमें कामका आवेश विशेषरूपसे नहीं हुआ ॥ २३६—२४६६॥

तदुपरान्त क्रोधाग्निसे उत्पन्न हुए भयंकर हुंकारके भयानक शब्दसे युक्त मुखके ऊपर क्रोधाग्निसे उद्दीप तीसरा नेत्र प्रकट हो गया, जो भीषण रूपधारी शङ्करजीका जगत्का संहार करनेवाला भयानक रूप था । तब जटाधारी शङ्करजीने अपने निकट ही खड़े हुए कामदेवकी ओर दृष्टिपात किया । फिर तो उस नेत्रसे निकली हुई एक चिनगारीने तुरंत ही कामियोंके दर्पको बढ़ाने-वाले कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया । यह देखकर स्वर्गवासी हाहाकार मचा रहे थे । इस प्रकार शङ्करजीके नेत्रसे उद्भूत हुई अग्नि कामदेवको भस्म कर

व्यजृम्भत जगद्दग्धुं ज्वालाहुङ्कारघस्मरः ।
ततो भवो जगद्वेतोर्व्यभजज्ञातवेदसम् ॥ २५१

सहकारे मधौ चन्द्रे सुमनःसु परेष्वपि ।
भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विभागेन स्मरानलम् ॥ २५२

स बाह्यान्तरविद्वेन हरेण स्मरमार्गणः ।
रागस्नेहसमिद्वान्तर्धावंस्तीव्रहुताशनः ॥ २५३

विभक्तलोकसंक्षोभकरो दुर्वारजृम्भितः ।
सम्प्राप्य स्नेहसम्पृक्तं कामिनां हृदयं किल ॥ २५४

ज्वलत्यहर्निंशं भीमो दुश्शिकित्स्यमुखात्मकः ।
विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मकृतं स्मरम् ॥ २५५

विललाप रतिः कूरं बन्धुना मधुना सह ।
ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्वता ॥ २५६

जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम् ।
भृङ्गानुयातां संगृहा पुष्पितां सहकारजाम् ॥ २५७

लतां पवित्रकस्थाने पाणौ परभृतां सखीम् ।
निर्बध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकै रतिः ॥ २५८

उद्धूल्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मरभस्मना ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम् ॥ २५९

रतिरुचाच

नमः	शिवायास्तु	निरामयाय
	नमः	शिवायास्तु मनोमयाय ।
नमः	शिवायास्तु	सुरार्चिताय
	तुभ्यं सदा	भक्तकृपापराय ॥ २६०
नमो	भवायास्तु	भवोद्भवाय
	नमोऽस्तु ते	ध्वस्तमनोभवाय ।
नमोऽस्तु	ते	गूढमहाव्रताय
	नमोऽस्तु	मायागहनाश्रयाय ॥ २६१

जगत्को जलानेके लिये आगे बढ़ी और लपटोंके हुंकारसे पदार्थोंको भक्षण करने लगी । तब शङ्करजीने जगत्का कल्याण करनेके लिये उस अग्निका विभाजन कर दिया । उन्होंने कामाग्निको विभक्त कर आमके वृक्ष, वसन्त-ऋतु (अथवा चैत्रमास), चन्द्रमा, सुगन्धित पुष्पों, भ्रमरों और कोकिलोंके मुखोंमें स्थापित कर दिया । बाहर और भीतर—दोनों प्रकारसे घायल हुए शिवजीद्वारा विभक्त हुआ वह कामदेवका बाण अनुराग और स्नेहसे उद्दीप हो वैगपूर्वक दौड़ती हुई अग्निकी तरह लोगोंके मनोंको क्षुब्ध करने लगा । उसकी उत्तरि रोकी नहीं जा सकती थी । वह इतना भयंकर थी कि उसके प्रतिषेधका कोई उपाय बड़ी कठिनाईसे हो सकता था । इस प्रकार वह अब भी कामियोंके स्नेहसिक्त हृदयमें पहुँचकर उन्हें रात-दिन जलाता रहता है ॥ २४७—२५४ १ ॥

इस प्रकार कामदेवको शङ्करजीके हुंकारकी ज्वालासे भस्म हुआ देख रति कामदेवके मित्र वसन्तके साथ फूट-फूटकर विलाप करने लगी । बहुत प्रकारसे विलाप करनेके पश्चात् वसन्तद्वारा समझायी-बुझायी जानेपर रति त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखरकी शरणमें जानेके लिये प्रस्थित हुई । उस समय उसने अपने एक हाथमें पवित्रकके स्थानपर फूली हुई आमकी लताको, जिसपर झँकरे मँडरा रहे थे, धारण कर रखा था और उसके दूसरे हाथपर उसकी सखी कोयल बैठी थी । उसने अपने घुँघराले बालोंको जटाजूटके रूपमें बाँधकर अपने प्रियतम कामदेवके श्वेत भस्मसे शरीरको धूसरित कर लिया था । वहाँ पहुँचकर वह पृथ्वीपर घुटने टेककर भगवान् चन्द्रशेखरसे बोली— ॥ २५५—२५९ ॥

रतिने कहा—जो सब प्रकारकी क्षतिसे रहित हैं, उन शिवको नमस्कार है । जो सभी प्राणियोंके मनःस्वरूप हैं, उन शिवको प्रणाम है । जो देवताओंद्वारा पूजित और सदा भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं, उन आप शिवको अभिवादन है । जगत्को उत्पन्न करनेवाले शिवको नमस्कार है । कामदेवको भस्म कर देनेवाले आपको प्रणाम है । गुप्त रूपसे महान् व्रतको धारण करनेवाले आपको अभिवादन है । मायारूपी काननका आश्रय लेनेवालेको नमस्कार है ।

नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय
 नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।
 नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय
 नमोऽस्तु ते ज्ञानवरप्रदाय॥ २६२
 नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय
 नमो निसर्गामलभूषणाय।
 नमोऽस्त्वमेयान्धकमर्दकाय
 नमः शरण्याय नमोऽगुणाय॥ २६३
 नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय
 नमोऽस्तु नानाभुवनादिकर्त्रे।
 नमोऽस्तु नानाजगतां विधात्रे
 नमोऽस्तु ते चित्रफलप्रयोक्त्रे॥ २६४
 सर्वावसाने ह्यविनाशनेत्रे
 नमोऽस्तु चित्राध्वरभागभोक्त्रे।
 नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे
 नमः सदा ते भवसङ्घहर्त्रे॥ २६५
 अनन्तरूपाय सदैव तुभ्य-
 मसह्यकोपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।
 शशाङ्कचिह्नाय सदैव तुभ्य-
 ममेयमानाय नमः स्तुताय॥ २६६
 वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय
 नमः प्रसिद्धाय महौषधाय।
 नमोऽस्तु भक्त्याभिमतप्रदाय
 नमोऽस्तु सर्वार्तिहराय तुभ्यम्॥ २६७
 चराचराचारविचारवर्य-
 माचार्यमुत्रेक्षितभूतसर्गम् ।
 त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना
 प्रियाप्रमेयं महतां महेशम्॥ २६८
 प्रयच्छ मे कामयशःसमृद्धिं
 पुनः प्रभो जीवतु कामदेवः।
 प्रियं विना त्वां प्रियजीवितेषु
 त्वत्तोऽपरः को भुवनेष्विहास्ति॥ २६९
 प्रभुः प्रियायाः प्रसवः प्रियाणां
 प्रणीतपर्यायपरापरार्थः।
 त्वमेवमेको भुवनस्य नाथो
 दयालुर्मूलितभक्तभीतिः॥ २७०

आप जगत्के संहारक, कल्याणकारक और पुरातन सिद्ध हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आप कालस्वरूप, कल (कालकी गणना करनेवाले) और श्रेष्ठ ज्ञानके प्रदाता हैं, आपको पुनः-पुनः अभिवादन है। कालकी कलाका अतिक्रमण करनेवाले आपको नमस्कार है। प्रकृतिरूप निर्मल आभूषण धारण करनेवालेको प्रणाम है। आप अप्रमेय शक्तिशाली अन्धकासुरका मर्दन करनेवाले, शरणदाता और निर्गुण हैं, आपको बारंबार अभिवादन है। भयंकर गणोंद्वारा अनुगमन किये जानेवाले आपको नमस्कार है। अनेकों भुवनोंके आदिकर्ताको प्रणाम है। अनेकों जगत्की रचना करनेवालेको अभिवादन है। चित्र-विचित्र फल प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। सबकी समाप्ति अर्थात् महाप्रलयके अवसरपर आप विनाशसे बचे हुए प्राणियोंके नेता तथा विशाल यज्ञोंमें अपने भागको भोगनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करनेवालेको अभिवादन है। संसारकी आसक्तिका हरण करनेवाले आपको सदा नमस्कार है॥ २६०—२६५॥

आप अनन्त रूपवाले हैं तथा आपका क्रोध असह्य होता है, आपको सदैव प्रणाम है। आप चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित, अपरिमित मानसे युक्त और सभी प्राणियोंद्वारा स्तुत हैं, आपको सदैव अभिवादन है। वृषभेन्द्र नन्दी आपका वाहन है, आप त्रिपुरके विनाशक और प्रसिद्ध महौषधरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप भक्तिके वशीभूत हो अभीष्ट प्रदान करनेवाले और सभी प्रकारके कष्टोंको दूर करनेवाले हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आप चराचर प्राणियोंके आचार-विचारसे सर्वश्रेष्ठ, जगत्के आचार्य, समस्त भूत-सृष्टिपर दृष्टि रखनेवाले, मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले, अतुलित प्रेमी और महनीयोंके भी महेश्वर हैं, मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। प्रभो! मुझे कामदेवके यशकी समृद्धि प्रदान कीजिये, जिससे ये कामदेव पुनः जीवित हो जायें। इस त्रिभुवनमें आपसे बढ़कर दूसरा कौन है, जो मेरे प्रियतमको जीवित कर सके। एकमात्र आप ही अपनी प्रियाके प्राणपति, प्रिय पदार्थोंके उद्गम-स्थान, पर और अपर—इन दोनों अर्थोंके पर्यायस्वरूप, जगत्के स्वामी, परम दयालु और भक्तोंके भयको उखाड़ फेंकनेवाले हैं॥ २६६—२७०॥

सूत उवाच

इत्थं स्तुतः शङ्कर ईङ्ग ईशो
वृषाकपिर्मन्थकान्तया तु।
तुतोष दोषाकरखण्डधारी
उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ॥ २७१
शंकर उवाच

भवितेति च कामोऽयं कालात् कान्तोऽचिरादपि ।
अनङ्गः इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति ॥ २७२
इत्युक्ता शिरसा वन्द्य गिरिशं कामवल्लभा ।
जगामोपवनं रम्यं रतिस्तु हिमभूभृतः ॥ २७३
रुरोद बहुशो दीना रमणोऽपि स्थले तु सा ।
मरणव्यवसायात् निवृत्ता सा हराज्ञया ॥ २७४
अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः ।
कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥ २७५
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकाम्बराम् ।
सखीभ्यां संयुतां शैलो गृहीत्वा स्वसुतां ततः ॥ २७६
जगाम शुभयोगेन तदा सम्पूर्णमानसः ।
स काननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च ॥ २७७
ददर्श रुदतीं नारीमग्रतः समहौजसम् ।
रूपेणासदृशीं लोके रम्येषु वनसानुषु ॥ २७८
कौतुकेन परामृश्य तां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः ।
उपसर्प्य ततस्तस्या निकटे सोऽभ्यपृच्छत ॥ २७९
हिमवानुवाच

कासि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापि रोदिषि ।
नैतदल्पमहं मन्ये कारणं लोकसुन्दरि ॥ २८०

सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह ।
रुदती शोकजननं श्वसती दैन्यवर्धनम् ॥ २८१
रतिरुवाच

कामस्य दयितां भार्या रति मां विद्धि सुन्नत ।
गिरावस्मिन् महाभाग गिरिशस्तपसि स्थितः ॥ २८२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! कामदेवकी पती रतिद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर स्तुतिके योग्य भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये । तब चन्द्रखण्डको धारण करनेवाले शिवजी उसकी ओर दृष्टिपात करके मधुर वाणीमें बोले ॥२७१ ॥

शङ्करजीने कहा—कामवल्लभे ! थोड़े ही समयके बाद यह कामदेव पुनः तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त होगा । वह जगत्में अनङ्ग नामसे विख्यात होगा । इस प्रकार कही जानेपर काम-पती रतिने सिर झुकाकर भगवान् शङ्करको प्रणाम किया, तत्पश्चात् वह हिमालयके रमणीय उपवनकी ओर चली गयी । उस सुरम्य स्थानपर पहुँचकर भी वह दीनभावसे बहुत देरतक विलाप करती रही; क्योंकि वह शङ्करजीकी आज्ञासे मृत्युके निश्चयसे निवृत्त हो चुकी थी ॥२७२—२७४ ॥

इधर नारदजीके वाक्योंसे प्रेरित होकर पर्वतराज हिमालय उल्लासपूर्ण मनसे दो सखियोंके साथ अपनी कन्याको लेकर (शङ्करजीके पास जानेके लिये) शुभमुहूर्तमें प्रस्थित हुए । उस समय पार्वतीको आभूषणोंसे सुसज्जित कर दिया गया था । उनके सभी वैवाहिक मङ्गलकार्य सम्पन्न कर लिये गये थे । उनके मस्तकपर स्वर्गीय पुष्पोंकी माला पड़ी थी तथा शरीरपर श्वेत रंगकी महीन रेशमी साड़ी झलक रही थी । वे काननों, वनों एवं उपवनोंको पार करके जब आगे बढ़े तो उन्होंने उस रमणीय वनस्थलीमें एक महान् ओजस्विनी नारीको, जो लोकमें अनुपम रूपवती थी, रोती हुई देखा । तब गिरिराज उसे रोती देखकर कुतूहलवश उसके निकट गये और पूछने लगे ॥२७५—२७९ ॥

हिमवान् बोले—कल्याणि ! तुम कौन हो ? किसकी पती हो ? किसलिये इस प्रकार रुदन कर रही हो ? लोकसुन्दरि ! मैं इसका असाधारण कारण नहीं मानता, (अपितु इसका कोई विशेष कारण है ।) हिमाचलके वचनको सुनकर वसन्तसहित रोती हुई रति दीर्घ निःश्वास लेकर दैन्यवर्धक एवं शोकजनक वचन बोली ॥२८०-२८१ ॥

रतिने कहा—सुन्नत ! आप मुझे कामदेवकी प्यारी पती रति समझें । महाभाग ! इसी पर्वतपर भगवान् शङ्कर तपस्या कर रहे हैं ।

तेन प्रत्यूहरुषेन विस्फार्यालोक्य लोचनम्।
दग्धोऽसौ झाषकेतुस्तु मम कान्तोऽतिवल्लभः ॥ २८३

अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला ।
स्तुतवत्यथ संस्तुत्या ततो मां गिरिशोऽब्रवीत् ॥ २८४

तुष्टोऽहं कामदयिते कामोऽयं ते भविष्यति ।
त्वत्स्तुतिं चाप्यधीयानो नरो भक्त्या मदाश्रयः ।

लप्यते काङ्क्षितं कामं निवर्त्य मरणादितः ॥ २८५
प्रतीक्षन्ती च तद्वाक्यमाशावेशादिभिर्हृष्म् ।

शरीरं परिरक्षिष्ये कञ्जित् कालं महाद्युते ॥ २८६
इत्युक्तस्तु तदा रत्या शैलः सम्भ्रमभीषितः ।

पाणावादाय हि सुतां गन्तुमैच्छत् स्वकं पुरम् ॥ २८७
भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्री भूतभाविनी ।

लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम् ॥ २८८
शैलदुहितोवाच

दुर्भगेण शरीरेण किं मामनेन कारणम् ।
कथं च तादृशं प्राप्तं सुखं मे स पतिर्भवेत् ॥ २९१

तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः ।
दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते सति साधने ॥ २९०

जीविताद्दुर्भगाच्छ्रेयो मरणं ह्यतपस्यतः ।
भविष्यामि न संदेहो नियमैः शोषये तनुम् ॥ २९१

तपसि भृष्टसंदेह उद्यमोऽर्थजिगीषया ।
साहं तपः करिष्यामि यदहं प्राप्य दुर्लभा ॥ २९२

इत्युक्तः शैलराजस्तु दुहित्रा स्नेहविक्लवः ।
उवाच वाचा शैलेन्द्रो स्नेहगद्वर्णया ॥ २९३

हिमवानुवाच
उमेति चपले पुत्रि न क्षमं तावकं वपुः ।
सोदुं क्लेशस्वरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने ॥ २९४

भावीन्यभिविचार्याणि पदार्थानि सदैव तु ।
भाविनोऽर्था भवन्त्येव हठेनानिच्छतोऽपि वा ॥ २९५

तपस्यामें विघ्न पड़नेसे रुष्ट होकर उन्होंने अपने तीसों नेत्रको खोलकर देखा, जिससे मेरे परम प्रिय पति कामदेव जलकर भस्म हो गये। तब भयसे विह्वल हुई मैं उन देवाधिदेवकी शरणमें गयी। वहाँ मैंने उनकी स्तुति की। उस स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने मुझसे कहा—‘कामदयिते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो जायगा। साथ ही जो मनुष्य मेरे शरणागत होकर तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुतिका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह अपनी मनोवाङ्गित कामनाको प्राप्त कर लेगा। अब तुम मृत्युके निश्चयसे निवृत्त हो जाओ।’ महाद्युतिमान् पर्वतराज! उसी आशाके आवेशसे मैं शङ्करजीके वाक्यकी प्रतीक्षा करती हुई कुछ कालतक इस शरीरकी रक्षा करूँगी। रतिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमाचल उस समय भयभीत हो गये। तब वे अपनी कन्याका हाथ पकड़कर अपने नगरको लौट जानेके लिये उद्यत हो गये। तब जो होनहार है, वह तो अवश्य होकर ही रहेगा—ऐसा विचारकर प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली पार्वती लजाती हुई सखीके मुखसे अपने पिता गिरिराजसे बोलीं॥ २८२—२८८॥

गिरिराजकुमारीने कहा—पिताजी! इस अभागे शरीरको धारण करनेसे मुझे क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? अब मैं किस प्रकार सुखी हो सकूँगी और किस उपायसे भगवान् शङ्कर मेरे पति हो सकेंगे? (ठीक है, ऐसा सुना जाता है कि) तपस्यासे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है; क्योंकि तपस्वीके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। भला ऐसे उत्तम साधनके रहते हुए भी लोग व्यर्थ ही दुर्भाग्यका भार क्यों बहन करते हैं? तपस्या न करनेवालेके लिये भाग्यहीन जीवनसे तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। अतः मैं निःसंदेह तपस्विनी बनूँगी और नियमोंके पालनद्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगी। प्रयोजन-सिद्धिके लिये तपस्याके निमित्त संदेहरहित उद्यम अवश्य करना चाहिये। इसलिये अब मैं तपस्या करूँगी, जिससे मुझे वह दुर्लभ कामना प्राप्त हो जाय। पुत्रिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पर्वतराज हिमाचल स्नेहसे विह्वल हो गये, तब वे स्नेहभरी गदगद वाणीसे बोले॥ २८९—२९३॥

हिमवान् ने कहा—बेटी! तू तो बड़ी चश्चल है। ‘उ—मा’—उसे मत कर; क्योंकि सुन्दर स्वरूपवाली बच्ची! तेरा यह शरीर क्लेशस्वरूप तपस्याके कष्टको सहन करनेके लिये सक्षम नहीं है। वत्से! भावी पदार्थोंके प्रति सदैव ऐसा समझना चाहिये कि होनहारके विषय न चाहनेपर

तस्मान्त तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित् प्रयोजनम्।
 भवनायैव गच्छामश्नित्यिष्यामि तत्र वै॥ २९६
 इत्युक्ता तु यदा नैव गृहायाभ्येति शैलजा।
 ततः स चिन्तयाऽविष्टो दुहितां प्रशाशंस च॥ २९७
 ततोऽन्तरिक्षे दिव्या वागभूदभुवनभूतले।
 उमेति चपले पुत्रि त्वयोक्ता तनया ततः॥ २९८
 उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति।
 सिद्धिं च मूर्तिमत्येषा साधयिष्यति चिन्तितम्॥ २९९
 इति श्रुत्वा तु वचनमाकाशात् काशपाण्डुरः।
 अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमन्दिरम्॥ ३००

सूत उवाच

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः।
 सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा॥ ३०१
 शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम्।
 दिव्यपुष्पलताकीर्ण सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥ ३०२
 नानामृगगणाकीर्ण भ्रमरोदघुष्टपादपम्।
 दिव्यप्रस्त्रवणोपेतं दीर्घिकाभिरलङ्घतम्॥ ३०३
 नानापक्षिगणाकीर्ण चक्रवाकोपशोभितम्।
 जलजस्थलजैः पुष्टैः प्रोत्कुल्लौरुपशोभितम्॥ ३०४
 चित्रकन्दरसंस्थानं गुहागृहमनोहरम्।
 विहङ्गसंघसंजुष्टं कल्पपादपसंकटम्॥ ३०५
 तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम्।
 सर्वतुकुसुमोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम्॥ ३०६
 नानापुष्पसमाकीर्ण नानाविधफलान्वितम्।
 नतं सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम्॥ ३०७
 तत्राम्बराणि संत्यज्य भूषणानि च शैलजा।
 संवीता वल्कलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमेखला॥ ३०८

भी हठपूर्वक घटित होते ही हैं; अतः बाले! तुझे तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आओ, हमलोग घर चलें, वहीं इस विषयमें विचार किया जायगा। इस प्रकार कहे जानेपर भी जब पार्वती घर लौटनेके लिये उद्यत नहीं हुई, तब हिमाचल चिन्तित हो गये और पुत्रीकी प्रशंसा करने लगे। इसी बीच धरातलपर इस प्रकारकी दिव्य आकाशवाणी सुनायी पड़ी—‘शैलराज! जो तुमने अपनी पुत्रीके प्रति ‘उ मेति चपले पुत्रि—चञ्चल बेटी! उसे मत कर’—ऐसा कहा है, इस कारण संसारमें इसका ‘उमा’ नाम प्रसिद्ध होगा। यह साक्षात् प्रकट होकर (भक्तोंको उनकी) अभीष्ट सिद्ध प्रदान करेगी।’ इस आकाशवाणीको सुनकर कास-पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले हिमाचल अपनी पुत्रीको तपके निमित्त आज्ञा देकर शीघ्र ही अपने भवनको लौट गये॥ २९४—३००॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इधर पार्वती भी नियमबद्ध होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ उस शिखरकी ओर प्रस्थित हुई, जो देवताओंके लिये भी अगम्य था। हिमालयका वह पावन शिखर अनेकों प्रकारकी धातुओंसे विभूषित था। उसपर दिव्य पुष्पोंकी लताएँ फैली हुई थीं। वह सिद्धों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित था। वहाँ अनेकों जातियोंके मृगसमूह विचर रहे थे। उसके वृक्षोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वह दिव्य झरनोंसे युक्त तथा बावलियोंसे सुशोभित था। वहाँ नाना प्रकारके पक्षिसमूह चहचहा रहे थे। वह चक्रवाक पक्षीसे अलंकृत तथा जलमें एवं स्थलपर उत्पन्न होनेवाले खिले हुए पुष्पोंसे विभूषित था। वह विचित्र ढंगकी कन्दराओंसे युक्त था। उन गुफाओंमें मनको लुभानेवाले गृह बने थे। वहाँ घनेरूपमें कल्पवृक्ष उगे हुए थे, जिनपर पक्षिसमूह निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर गिरिराजकुमारी पार्वतीने एक विशाल शाखाओंवाले वृक्षको देखा, जो हरे-हरे पत्तोंसे सुशोभित था। वह छहों ऋतुओंके पुष्पोंसे युक्त, सैकड़ों मनोरथोंकी भाँति उज्ज्वल, नाना प्रकारके पुष्पोंसे आच्छादित और अनेकविध फलोंसे लदा हुआ था। सूर्यकी किरणें उसके सघन पल्लवाओंका भेदन कर नीचेतक नहीं पहुँच पाती थीं। उसी वृक्षके नीचे पार्वतीने अपने आभूषणों और वस्त्रोंको उतारकर मूँजकी मेखला और दिव्य वल्कलवस्त्रोंसे अपने शरीरको ढक लिया (और वे तपस्यामें निरत हो गयीं)।

त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदां शतम्।
 शतमेकेन शीर्णेन पर्णेनावर्तयत् तदा ॥ ३०९
 निराहारा शतं साभूत् समानां तपसां निधिः।
 तत उद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तत्पोऽग्निना ॥ ३१०
 ततः सस्मार भगवान् मुनीन् सप्त शतक्रतुः।
 ते समागम्य मुनयः सर्वे समुदितास्ततः ॥ ३११
 पूजिताश्च महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तं प्रयोजनम्।
 किर्मर्थं तु सुरश्रेष्ठं संस्मृतास्तु वयं त्वया ॥ ३१२
 शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तः प्रयोजनम्।
 हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा।
 तस्या ह्यभिमतं कामं भवन्तः कर्तुमर्हथ ॥ ३१३
 ततः समापतन् देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः।
 तथेत्युक्त्वा तु शैलेन्द्रं सिद्धसंघातसेवितम् ॥ ३१४
 ऊचुरागत्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम्।
 पुत्रि किं ते व्यवसितः कामः कमललोचने ॥ ३१५
 तानुवाच ततो देवी सलज्जा गौरवान्मुनीन्।
 तपस्यतो महाभागाः प्राप्य मौनं भवादृशान् ॥ ३१६
 वन्दनाय नियुक्ता धीः पावयत्यविकल्पितम्।
 प्रश्नोन्मुखत्वाद् भवतां युक्तमासनमादितः ॥ ३१७
 उपविष्टाः श्रमोन्मुक्तास्ततः प्रक्ष्यथ मामतः।
 इत्युक्त्वा सा ततश्चक्रे कृतासनपरिग्रहान् ॥ ३१८
 सा तु तान् विधिवत् पूज्यान् पूजयित्वा विधानतः।
 उवाचादित्यसंकाशान् मुनीन् सप्त सती शनैः ॥ ३१९
 त्यक्त्वा व्रतात्मकं मौनं मौनं जग्राह हीमयम्।
 भावं तस्यास्तु मौनान्तं तस्याः सप्तर्षयो यथा ॥ ३२०
 गौरवाधीनतां प्राप्ताः पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा।
 सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी ॥ ३२१

उन्होंने प्रथम सौ वर्ष त्रिकाल स्नान और पाटल वृक्षके पत्तोंका भोजन करके बिताया। फिर दूसरे सौ वर्षोंतक वे एक सूखा पत्ता चबाकर जीवननिर्वाह करती रहीं और पुनः सौ वर्षोंतक निराहार रहकर तपस्यामें संलग्न रहीं। उस प्रकार वे तपस्याकी निधि बन गयीं। फिर तो उनकी तपस्याजन्य अग्निसे सभी प्राणी उट्टिग्न हो उठे ॥ ३०१—३१० ॥

तदनन्तर ऐश्वर्यशाली इन्द्रने सातों मुनियोंका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे सभी मुनि हर्षपूर्वक वहाँ उपस्थित हो गये। तब महेन्द्रद्वारा पूजित होनेपर उन्होंने इन्द्रसे अपना स्मरण किये जानेका प्रयोजन पूछते हुए कहा—‘सुरश्रेष्ठ! किसलिये आपने हमलोगोंका स्मरण किया है?’ यह सुनकर इन्द्रने कहा—‘ऋषिगण! आपलोग मेरे उस प्रयोजनको श्रवण करें। हिमाचलकी कन्या पार्वती हिमालय पर्वतपर घोर तपका अनुष्ठान कर रही है। आपलोग उनकी अभीष्ट कामनाको पूर्ण करें।’ तत्पश्चात् ‘तथेति—बहुत अच्छा’ यो कहकर जगत्का कल्याण करनेके लिये (अरुन्धतीसहित सभी) मुनिगण शीघ्र ही सिद्धसमूहोंसे सेवित हिमालयके शिखरपर पार्वती देवीके निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचकर मुनियोंने पार्वतीसे मधुर वाणीमें पूछा—‘कमलके समान नेत्रोंवाली पुत्रि! तुम अपना कौन-सा मनोरथ सिद्ध करना चाहती हो?’ तब गौरववश लजाती हुई पार्वती देवीने उन मुनियोंसे कहा—‘महाभाग मुनिगण! यद्यपि तपस्या करते समय मैंने मौनका नियम ले रखा था, तथापि आप-जैसे महापुरुषोंकी वन्दना करनेके लिये मेरी बुद्धि उत्सुक हो उठी है, जो निश्चय ही मुझे पावन बना रही है। प्रश्न पूछनेसे पूर्व आपलोगोंके लिये आसन ग्रहण कर लेना ही उपयुक्त है, अतः पहले आसनपर बैठिये, थकावटको दूर कीजिये, तत्पश्चात् मुझसे पूछिये।’ ऐसा कहकर पार्वतीने उन पूजनीयोंको आसनपर विराजमान किया और विधि- विधानपूर्वक उनकी पूजा की। तत्पश्चात् सती धीमे स्वरमें सूर्यके समान तेजस्वी उन सप्तर्षियोंसे कहने लगीं ॥ ३११—३१९ ॥

उस समय उन्होंने व्रतसम्बन्धी मौनका त्याग कर लजामय मौन ग्रहण कर लिया था, जिससे उनका भाव मौन-दशामें परिणत हो गया था। तब सप्तर्षियोंने गौरवके अधीन हुई पार्वतीसे उस प्रयोजनके विषयमें पुनः प्रश्न किया। तदुपरात् सुन्दर मुसकानवाली पार्वतीने गौरवपूर्ण

मुनीज्ञान्तकथालापान् प्रेक्ष्य प्रोवाच वाग्यमम् ।
भगवन्तो विजानन्ति प्राणिनां मानसं हितम् ॥ ३२२
मनोगतीभिरत्यर्थं कन्दर्प्यन्ते हि देहिनः ।
केचित्तु निपुणास्तत्र घटन्ते विबुधोद्यमैः ॥ ३२३
उपायैर्दुर्लभान् भावान् प्राप्नुवन्ति ह्यतन्द्रिताः ।
अपरे तु परिच्छिन्ना नानाकाराभ्युपक्रमाः ॥ ३२४
देहान्तरार्थमारम्भमाश्रयन्ति हितप्रदम् ।
मम त्वाकाशसम्भूतपुष्पदामविभूषितम् ॥ ३२५
वन्ध्या सुतं प्राप्नुकामा मनः प्रसरते मुहुः ।
अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्नुं समुद्यता ॥ ३२६
प्रकृत्यैव दुराधर्षं तपस्यन्तं तु सम्प्रति ।
सुरासुररनिर्णीतपरमार्थक्रियाश्रयम् ॥ ३२७
साम्प्रतं चापि निर्दग्धमदनं वीतरागिणम् ।
कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम् ॥ ३२८
इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः ।
ज्ञातुमस्या वचः प्रोचुः प्रक्रमात् प्रकृतार्थकम् ॥ ३२९

मुनय ऊचुः

द्विविधं तु सुखं तावत् पुत्रि लोकेषु भाव्यते ।
शरीरस्यास्य सम्भोगैश्चेतसश्चापि निर्वृतिः ॥ ३३०
प्रकृत्या स तु दिग्वासा भीमः पितृवणेशयः ।
कपाली भिक्षुको नग्नो विस्तुपाक्षः स्थिरक्रियः ॥ ३३१
प्रमत्तोन्मत्तकाकारो बीभत्सकृतसंग्रहः ।
यतिना तेन कस्तेऽर्थो मूर्तनिर्थेन काङ्क्षितः ॥ ३३२
यदि ह्यस्य शरीरस्य भोगमिच्छसि साम्प्रतम् ।
तत् कथं ते महादेवाद्वयभाजो जुगुप्सितात् ॥ ३३३
स्ववद्रक्तवसाभ्यक्तकपालकृतभूषणात् ।
श्वसदुग्रभुजंगेन्द्रकृतभूषणभीषणात् ॥ ३३४
श्वशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतात् सति ।

मनसे मुनियोंको शान्तरूपसे वार्तालाप करते देखकर वाणीपर संयम रखते हुए इस प्रकार कहा—‘महर्षियो! आपलोग तो प्राणियोंके मानस हितको भलीभाँति जानते हैं। शरीरधारी प्राणी प्रायः अपने मनोगत भावोंके कारण ही अत्यधिक कष्टका अनुभव करते हैं। उनमें कुछ लोग ऐसे निपुण हैं, जो आलस्यरहित हो दैवी उपायोंद्वारा प्रयत्न करते हैं और दुर्लभ विषयोंको प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे कुछ लोग ऐसे हैं, जो परिमित एवं नाना प्रकारके उपायोंसे युक्त हैं। वे देहान्तरको ही हितप्रद मानकर उसके लिये कार्यारम्भ करते हैं। परंतु मेरा मन आकाशमें उत्पन्न हुए पुष्पोंकी मालासे विभूषित बन्ध्या पुत्रको प्राप्त करनेके लिये बारंबार प्रयास कर रहा है। मैं निश्चितरूपसे भगवान् शङ्करको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये उद्यत हूँ। वे एक तो स्वभावसे ही दुराराध्य हैं, दूसरे इस समय तो वे तपस्यामें निरत हैं। सुर अथवा असुर कोई भी अबतक उनकी परमार्थ-क्रियाका निर्णय नहीं कर सका। अभी-अभी हालमें ही वे कामदेवको जलाकर वीतरागी तपस्वी बन गये हैं। भला मुझ-जैसी अबला वैसे कल्याणकारी शिवकी आराधना कैसे कर सकती है।’ इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण पार्वतीके मनकी स्थिरताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये क्रमशः उसी विषयपर पुनः बोले ॥ ३२०—३२९ ॥

मुनियोंने कहा—‘बेटी! लोकोंमें दो प्रकारके सुख बतलाये जाते हैं—एक तो इस शरीरके सम्भोगोंद्वारा और दूसरा मनकी (विषयभोगोंसे) निवृत्तिद्वारा प्राप्त होता है। शङ्करजी तो स्वभावसे ही दिगम्बर, विकृत वैष्णवी, पितृवनमें शयन करनेवाले, कपालधारी, भिक्षुक, नग्न, विकृत नेत्रोंवाले और उद्यमहीन हैं। उनका आकार मतवाले पागलोंकी तरह है। वे घृणित वस्तुओंका ही संग्रह करते हैं। वे एकदम अनर्थकी मूर्ति हैं। ऐसे संन्यासीसे तुम अपना कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना चाहती हो? यदि तुम इस समय इस शरीरके भोगकी इच्छा करती हो तो भला उन भयावने एवं निन्दित महादेवसे तुम्हें उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है; उनके तो चूते हुए रक्त और मज्जासे चुपड़े हुए कपाल ही भूषण हैं। वे फुफकारते हुए विषेले सर्पराजोंका आभूषण धारण करनेके कारण बड़े भीषण दीख पड़ते हैं, सदा शमशानमें निवास करते हैं और भयंकर प्रमथण उनके अनुचर हैं ॥ ३३०—३३४ ॥

सुरेन्द्रमुकुटब्रातनिधृष्टचरणोऽरिहा ॥ ३३५

हरिरस्ति जगद्वाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान्।
नाथो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासनः ॥ ३३६

देवतानां निधिश्वास्ति ज्वलनः सर्वकामकृत्।
वायुरस्ति जगद्वाता यः प्राणः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३७

तथा वैश्रवणो राजा सर्वार्थमतिमान् विभुः।
एभ्य एकतमं कस्मान्न त्वं सम्प्राप्तुमिच्छसि ॥ ३३८

उतान्यदेहसम्प्राप्त्या सुखं ते मनसेष्यितम्।
एवमेतत् तवाप्यत्र प्रभवो नाकसम्पदाम्।
अस्मिन् नेह परत्रापि कल्याणग्रासयस्तव ॥ ३३९

पितुरेवास्ति तत् सर्वं सुरेभ्यो यन्न विद्यते।
अतस्तत्प्राप्तये क्लेशः स वाप्यत्राफलस्तव ॥ ३४०

प्रायेण प्रार्थितो भद्रे सुस्वल्पो ह्यतिदुर्लभः।
अस्य ते विधियोगस्य धाता कर्तात्र चैव हि ॥ ३४१

सूत उवाच

इत्युक्ता सा तु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा।
उवाच कोपरक्ताक्षी स्फुरद्धिर्दशनच्छदैः ॥ ३४२

देव्युवाच

असद्ग्रहस्य का नीतिर्नासनस्य वव यन्त्रणा।
विपरीतार्थबोद्धारः सत्यथे केन योजिताः ॥ ३४३

एवं मां वेत्थ दुष्प्रज्ञां ह्यस्थानासद्ग्रहप्रियाम्।
न मां प्रति विचारोऽस्ति ततोऽहङ्कारमानिनी ॥ ३४४

प्रजापतिसमाः सर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः।

इनसे तो कहीं अच्छे भगवान् विष्णु हैं, जिनके चरणोंपर प्रधान देवता अपने मुकुटसमूहोंको रगड़ते रहते हैं। जो शत्रुओंके संहारक, जगत्का पालन-पोषण करनेवाले, लक्ष्मीके पति और अनुपम शोभाशाली हैं। इसी प्रकार यज्ञभोजी देवताओंके स्वामी पाकशासन हैं। देवताओंके निधिस्वरूप एवं समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्नि हैं। जगत्का पालन-पोषण करनेवाले वायु हैं, जो सभी शरीरधारियोंके प्राण हैं तथा विश्रावाके पुत्र राजाधिराज कुबेर हैं, जो बड़े ऐश्वर्यशाली, बुद्धिमान् और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके अधीश्वर हैं। तुम इनमेंसे किसी एकको प्राप्त करनेकी इच्छा क्यों नहीं कर रही हो? अथवा यदि तुमने अपने मनमें यह ठान लिया हो कि जन्मान्तरमें सुखकी प्राप्ति होगी तो वह भी तुम्हें स्वर्गवासी देवताओंसे ही प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार तुम्हें देवताओंके बिना इस जन्ममें अथवा जन्मान्तरमें कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि अन्यान्य सुखदायक पदार्थोंको प्राप्त करना चाहती हो तो वे सब तुम्हारे पिताके पास ही इतने अधिक हैं, जो देवताओंके पास नहीं हैं; अतः उनकी प्राप्तिके हेतु तुम्हारा इस प्रकार कष्ट सहन करना व्यर्थ है। साथ ही भद्रे! प्रायः ऐसा देखा जाता है कि माँगी हुई वस्तुका मिलना अत्यन्त कठिन होता है और यदि मिल भी जाय तो बहुत थोड़ी ही मिलती है। इस कारण तुम्हारे इस मनोरथको ब्रह्मा ही पूर्ण कर सकते हैं (दूसरेकी शक्ति नहीं है) ॥३३५—३४१॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सप्तर्षियोंद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वती उन मुनियोंपर कुपित हो उठीं। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और होंठ फड़कने लगे, तब वे बोलीं ॥३४२॥

देवीने कहा—सप्तर्षियो! असद् वस्तुको ग्रहण करनेवालेके लिये नीति कैसी? तथा दुर्व्यसनीके लिये व्यसनकी प्राप्तिमें कष्ट कहाँ? (अर्थात् जिसमें जिसका मन आसक्त हो गया है, उसकी प्राप्तिके लिये उसे कितना ही कष्ट क्यों न झेलना पड़े, परंतु वह उसकी परवा नहीं करता।) अरे! विपरीत अर्थको जाननेवाले आपलोगोंको किसने सन्मार्गपर नियुक्त कर दिया? आपलोग मुझे इस प्रकार दुष्ट बुद्धिवाली तथा अयुक्त एवं असद् वस्तुको ग्रहण करनेकी अभिलाषिणी मानते हैं, अतः आपलोगोंका विचार मेरे प्रति ठीक नहीं है। इसी कारण मेरे मनमें अहंकारपूर्वक मान उत्पन्न हो गया है। यद्यपि आप सभी लोग प्रजापतिके समान समदर्शी हैं,

नूनं न वेत्थं तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम् ॥ ३४५
अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् ॥ ३४६

आस्तां तद्वर्मसद्वावसम्बोधस्तावदद्वृतः ।
विदुर्य न हरिब्रह्मप्रमुखा हि सुरेश्वराः ॥ ३४७

यत्तस्य विभवात् स्वोत्थं भुवनेषु विजृम्भितम् ।
प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यत्र न वेत्थ किम् ॥ ३४८

कस्यैतद्गग्नं मूर्तिः कस्याग्निः कस्य मारुतः ।
कस्य भूः कस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः ॥ ३४९

कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गं भक्त्या सुरासुराः ।
यं ब्रुवन्तीश्वरं देवा विधीन्द्राद्या महर्षयः ॥ ३५०

प्रभावं प्रभवं चैव तेषामपि न वेत्थ किम् ।
अदितिः कस्य मातेयं कस्माजातो जनार्दनः ॥ ३५१

अदिते: कश्यपाजाता देवा नारायणादयः ।
मरीचे: कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका ॥ ३५२

मरीचिश्चापि दक्षश्च पुत्रौ तौ ब्रह्मणः किल ।
ब्रह्मा हिरण्मयात्त्वण्डाद्विव्यसिद्धिविभूषितात् ॥ ३५३

कस्य प्रादुरभूद्यानात्माकृतैः प्रकृतांशकात् ।
प्रकृतौ तु तृतीयायामम्बुजाज्जननक्रिया ॥ ३५४

जातः ससर्ज षड्वर्गान् बुद्धिपूर्वान्स्वर्कर्मजान् ।
अजातकोऽभवद्वेधा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ३५५

यः स्वयोगेन संक्षेप्य प्रकृतिं कृतवानिदम् ।
ब्रह्मणः सिद्धसर्वार्थमैश्वर्यं लोककर्तृताम् ॥ ३५६

विदुर्विष्णवादयो यच्च स्वमहिमा सदैव हि ।
कृत्वान्यं देहमन्यादृक् तादृक् कृत्वा पुनर्हरिः ॥ ३५७

कुरुते जगतः कृत्यमुत्तमाधममध्यमम् ।
एवमेव हि संसारो यो जन्ममरणात्मकः ॥ ३५८

कर्मणश्च फलं हेतन्नानारूपसमुद्भवम् ।

तथापि उन महादेवके विषयमें आपलोगोंको निश्चय ही कुछ भी जात नहीं है । वे अविनाशी, जगत्के स्वामी, अजन्मा, शासक, अव्यक्त और अप्रमेय महिमावाले हैं । विष्णु और ब्रह्मा आदि सुरेश्वर भी जिन्हें नहीं जानते, उन महादेवके धर्म एवं सद्भावका जो अद्भुत ज्ञान आपलोग दे रहे हैं, उसे अब रहने दीजिये । जिसके विभवसे उत्पन्न हुआ चैतन्य सभी लोकोंमें फैला हुआ है और सभी प्राणियोंमें प्रत्यक्षरूपसे दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे भी क्या आपलोग नहीं जानते । (भला सोचिये तो सही) यह आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और वरुण पृथक्-पृथकरूपसे किसकी मूर्ति हैं ? चन्द्रमा और सूर्यको नेत्ररूपमें धारण करनेवाला कौन है ? समस्त सुर एवं असुर लोकोंमें भक्तिपूर्वक किसके लिङ्गकी अर्चना करते हैं ? ब्रह्मा एवं इन्द्र आदि देवता तथा महर्षिगण जिन्हें अपना ईश्वर मानते हैं, उन देवताओंके प्रभाव एवं उत्पत्तिको भी क्या आपलोग नहीं जानते ? ॥ ३४३—३५० ४२ ॥

(यदि नहीं जानते तो सुनिये—) ये अदिति किसकी माता हैं और विष्णु किससे उत्पन्न हुए हैं ? ये नारायण आदि सभी देवता कश्यप और अदितिसे ही उत्पन्न हुए हैं । वे कश्यप महर्षि मरीचिके पुत्र हैं और अदिति प्रजापति दक्षकी पुत्री हैं । ये दोनों मरीचि और दक्ष भी ब्रह्माके पुत्र हैं और ब्रह्मा दिव्य सिद्धिसे विभूषित हिरण्मय अण्डसे प्रकट हुए हैं । उनका प्रादुर्भाव किसके ध्यानसे हुआ था ? (अर्थात् ब्रह्माके आविर्भावके कारण महादेव ही हैं ।) ब्रह्मा प्राकृत गुणोंके संयोगसे प्रकृतिके अंशसे तृतीय-प्रकृतिमें कमलपर उत्पन्न हुए थे । जन्म लेते ही उन्होंने बुद्धिपूर्वक अपने कर्मवश उत्पन्न होनेवाले षड्वर्गोंकी सृष्टि की । इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मा अजन्मा कहलाये, जिन्होंने अपने योगबलसे प्रकृतिको संक्षुब्ध कर इस जगत्की रचना की । विष्णु आदि सभी देवता अपनी महिमासे सदासे ही ब्रह्माकी सर्वार्थसिद्धि, ऐश्वर्य और लोकरचनाको जानते हैं । पुनः श्रीहरि युगानुसार विभिन्न प्रकारका शरीर धारण कर जगत्के उत्तम, मध्यम और अधम कर्मोंका सम्पादन करते हैं । जन्म-मृत्युरूप संसारकी यही स्थिति है और अनेक रूपोंमें उत्पन्न हुए कर्मोंका भी यही फल है ॥ ३५१—३५८ ४२ ॥

अथ नारायणो देवः स्वकां छायां समाश्रयत् ॥ ३५९
 तत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्म नानाप्रकारकम् ।
 सापि कर्मण एवोक्ता प्रेरणा विवशात्मनाम् ॥ ३६०
 यथोन्मादादिजुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत् ।
 इष्टान्येव यथार्थानि विपरीतानि मन्यते ॥ ३६१
 लोकस्य व्यवहारेषु सृष्टेषु सहते सदा ।
 धर्माधर्मफलावासौ विष्णुरेव निबोधितः ॥ ३६२
 अथानादित्वमस्यास्ति सामान्यात् तदात्मना ।
 न ह्यस्य जीवितं दीर्घं दृष्टं देहे तु कुत्रचित् ॥ ३६३
 भवद्विर्यस्य नो दृष्टमन्तमग्रमथापि वा ।
 देहिनां धर्म एवैष क्वचिज्जायेत् क्वचिन्मियेत् ॥ ३६४
 क्वचिद्गर्भगतो नश्येत्क्वचिज्जीवेज्जरामयः ।
 क्वचित्समाः शतं जीवेत् क्वचिद्बाल्ये विपद्यते ॥ ३६५
 शतायुः पुरुषो यस्तु सोऽनन्तः स्वल्पजन्मनः ।
 जीवितो न प्रियत्यग्रे तस्मात् सोऽमर उच्यते ॥ ३६६
 अदृष्टजन्मनिधना ह्येवं विष्णवादयो मताः ।
 एतत् संशुद्धमैश्वर्यं संसारे को लभेदिह ॥ ३६७
 तत्र क्षयादियोगात् तु नानाश्र्वर्यस्वरूपिणि ।
 तस्माद्विवश्चरान् सर्वान् मलिनान् स्वल्पभूतिकान् ॥ ३६८
 नाहं भद्राः किलेच्छामि ऋते शर्वात् पिनाकिनः ।
 स्थितं च तारतम्येन प्राणिनां परमं त्विदम् ॥ ३६९
 धीबलैश्वर्यकार्यादिप्रमाणं महतां महत् ।
 यस्मान्न कञ्चिदपरं सर्वे यस्मात् प्रवर्तते ॥ ३७०
 यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता ।
 एष मे व्यवसायश्च दीर्घोऽतिविपरीतकः ॥ ३७१
 यात वा तिष्ठतैवाथ मुनयो मद्विधायकाः ।
 एवं निशम्य वचनं देव्या मुनिवरास्तदा ॥ ३७२
 आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सस्वजुस्तां तपस्विनीम् ।
 ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः ॥ ३७३

तदनन्तर भगवान् नारायण अपनी छायाका आश्रय ग्रहण करते हैं और उससे प्रेरित हो नाना प्रकारका जन्म धारण करते हैं। वह प्रेरणा भी भाग्याधीन प्राणियोंके कर्मके अनुरूप ही कही गयी है, जो उन्माद आदिसे युक्त पुरुषकी बुद्धि-जैसी होती है; क्योंकि वह अपनी यथार्थ इष्ट वस्तुओंको भी विपरीत ही मानता है और सदा लोकके लिये रचे गये व्यवहारोंमें कष्ट भोगता है। इस प्रकार धर्म और अधर्मके फलकी प्राप्तिमें विष्णु ही कारण माने गये हैं। यद्यपि विष्णुको सामान्यतया आत्मरूपसे अनादि माना जाता है, तथापि उनका किसी भी देहमें दीर्घ जीवन नहीं देखा गया। आपलोग भी उनके आदि-अन्तको नहीं जानते, किंतु देहधारियोंका यह धर्म है कि वे कहीं जन्म लेते हैं तो मरते कहीं हैं। कहीं गर्भमें ही नष्ट हो जाते हैं तो कहीं बुढ़ापा और रोगसे ग्रस्त होकर भी जीवित रहते हैं। कोई सौ वर्षोंतक जीवित रहता है तो कोई बचपनमें ही कालके गालमें चला जाता है। जिस पुरुषकी आयु सौ वर्षकी होती है, वह थोड़ी आयुवालेकी अपेक्षा अनन्त आयुवाला कहा जाता है। सदा जीवित रहते हुए जो आगे चलकर मृत्युको नहीं प्राप्त होता, उसे अमर कहा जाता है। इस तरह विष्णु आदि देवगण भी प्रारब्ध, जन्म और मृत्युसे युक्त माने गये हैं। भला, जो विनाश आदिके संयोगसे नाना प्रकारके आश्र्वयमय स्वरूपोंसे युक्त है, उस संसारमें ऐसा विशुद्ध ऐश्वर्य किसको प्राप्त हो सकता है? अतः भद्रपुरुषो! मैं पिनाकधारी शङ्करजीके अतिरिक्त इन सभी मलिन एवं स्वल्प विभूतिवाले देवताओंको नहीं वरण करना चाहती। प्राणियोंकी यह उत्कृष्टता तो क्रमशः चली ही आ रही है, किंतु जो महापुरुष हैं, उनके बल, बुद्धि, ऐश्वर्य और कार्यका प्रमाण भी विशाल होता है। अतः जिन शङ्करजीसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है और जहाँ पहुँचकर सभी समाप्त हो जाते हैं तथा जिनका ऐश्वर्य आदि-अन्तसे रहित है, मैंने उन्हींकी शरण ग्रहण की है। मेरा यह व्यवसाय अत्यन्त महान् तथा विचित्र है। मेरे कल्याणका विधान करनेवाले मुनियो! अब आपलोग चाहे चले जायें अथवा ठहरें, यह आपकी इच्छापर निर्भर है। पार्वती देवीके ऐसे वचन सुनकर उन मुनिवरोंकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। तब उन्होंने उस तपस्विनी कन्याको गले लगाया। फिर वे परम प्रसन्न होकर पार्वतीसे मधुर वाणीमें बोले ॥ ३५९—३७३ ॥

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुतास्यहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिवामला ।
प्रसादयति नो भावं भवभावप्रतिश्रयात् ॥ ३७४
न तु विद्मो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम् ।
त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहागताः ॥ ३७५
अचिरादेव तन्वङ्गि कामस्तेऽयं भविष्यति ।
क्वादित्यस्य प्रभा याति रलेभ्यः क्व द्युतिः पृथक् ॥ ३७६
कोऽर्थो वर्णालिकाव्यक्तः कथं त्वं गिरिशं विना ।
यामो नैकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम् ॥ ३७७
अस्माकमपि वै सोऽर्थः सुतरां हृदि वर्तते ।
अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्थतो नीतिस्त्वमेव हि ॥ ३७८
अतो निःसंशयं कार्यं शङ्करोऽपि विधास्यति ।
इत्युक्त्वा पूजिता याता मुनयो गिरिकन्यया ॥ ३७९
प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत् ।
गङ्गाम्बुप्लावितात्मानं पिङ्गलबद्धजटासटम् ॥ ३८०
भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमस्त्रजम् ।
गिरेः सम्प्राप्य ते प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम् ॥ ३८१
प्रशान्ताशेषसत्त्वौधं नवस्तिमितकाननम् ।
निःशब्दाक्षोभसलिलप्रपानं सर्वतोदिशम् ॥ ३८२
तत्रापश्यस्ततो द्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम् ।
सप्त ते मुनयः पूज्या विनीताः कार्यगौरवात् ॥ ३८३
ऊचुर्मधुरभाषिण्या वाचा ते वाग्मिनां वराः ।
द्रष्टुं वयमिहायाताः शरण्यं गणनायकम् ॥ ३८४
त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः ।
त्वमेव नो गतिस्तत्त्वं यथा कालानतिक्रमः ॥ ३८५
सा प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयः प्रभुः ।
इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात् तानुवाच सः ॥ ३८६

ऋषियोने कहा—पुत्रि! तुम तो अत्यन्त अद्भुत निर्मल ज्ञानकी मूर्ति—जैसी प्रतीत हो रही हो। अहो! शङ्करजीके भावसे भावित तुम्हारा भाव हमलोगोंको परम आनन्दित कर रहा है। शैलजे! उन देवाधिदेव शङ्करके इस अद्भुत ऐश्वर्यको हमलोग नहीं जानते हैं—ऐसी बात नहीं है, अपितु हमलोग तुम्हारे निश्चयकी दृढ़ता जाननेके लिये यहाँ आये हैं। तन्वङ्गि! शीघ्र ही तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा। भला, सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड़कर कहीं जा सकती है? रलोंकी कान्ति रलोंसे पृथक् होकर कहीं ठहर सकती है? तथा अक्षरसमूहोंसे प्रकट होनेवाला अर्थ अक्षरोंसे अलग कहीं रह सकता है? उसी प्रकार तुम शङ्करजीके बिना कैसे रह सकती हो। अच्छा, अब हमलोग अनेकों उपायोंद्वारा शङ्करजीसे प्रार्थना करनेके निमित्त जा रहे हैं; क्योंकि हमलोगोंके हृदयमें भी वही प्रयोजन निश्चित-रूपसे वर्तमान है। उसकी सिद्धिके लिये तुम्हीं वह बुद्धि और नीति हो। अतः शङ्करजी भी निःसंदेह उस कार्यका विधान करेंगे। ऐसा कहकर गिरिराजकुमारीद्वारा पूजित हो वे मुनिगण वहाँसे चल पड़े। तदनन्तर जो अपने शरीरको गङ्गा-जलसे आप्लावित करते हैं, जिनके मस्तकपर पीली जटा बँधी रहती है तथा जिनके गलेमें पड़ी हुई मन्दार-पुष्पोंकी माला हथेलीतक लटकती रहती है, जिसपर भँवरे मँड़राते रहते हैं, उन शङ्करजीका दर्शन करनेके लिये वे सप्तर्षि हिमालयके विशाल शिखरकी ओर प्रस्थित हुए। हिमालयके उस शिखरपर पहुँचकर उन्होंने शङ्करजीके आश्रमको देखा। उस आश्रममें सम्पूर्ण प्राणिसमूह शान्तरूपसे बैठे हुए थे। वहाँका नूतन कानन भी शान्त था। चारों दिशाओंमें शब्दरहित एवं स्वच्छन्दगतिसे प्रवाहित होनेवाले जलसे युक्त झरने झरे रहे थे। उस आश्रमके द्वारपर उन पूज्य एवं विनीत सप्तर्षियोंने हाथमें बेत धारण किये वीरकको देखा। तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ वे सप्तर्षि कार्यके गौरववश वीरकसे मधुर वाणीमें बोले—‘द्वारपाल! ऐसा समझो कि हमलोग देवकार्यसे प्रेरित होकर यहाँ शरणदाता एवं गणनायक त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये आये हैं। इस विषयमें तुम्हीं हमलोगोंके साधन हो। इसलिये हमलोगोंकी यह प्रार्थना है कि ऐसा उपाय करो, जिससे हमलोगोंका कालातिक्रम न हो; क्योंकि स्वामियोंको सूचना तो प्रायः द्वारपालसे ही मिलती है।’ मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वीरकने गौरववश उनसे कहा—

समन्वास्यापरां संध्यां स्नातुं मन्दाकिनीजलैः ।
क्षणेन भविता विप्रास्तत्र द्रक्ष्यथ शूलिनम् ॥ ३८७

इत्युक्ता मुनयस्तस्थुस्ते तत्कालप्रतीक्षिणः ।
गम्भीराम्बुधरं प्रावृद्धृषिताश्चातका यथा ॥ ३८८

ततः क्षणेन निष्पन्नसमाधानक्रियाविधिः ।

वीरासनं बिभेदेशो मृगचर्मनिवासितम् ॥ ३८९

ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीस्थितिम् ।

उवाच वीरको देवं प्रणामैकसमाश्रयः ॥ ३९०

सम्प्राप्ता मुनयः सम द्रष्टुं त्वां दीमतेजसः ।

विभो समादिश द्रष्टुमवगन्तुमिहार्हसि ।

तेऽब्रुवन् देवकार्येण तव दर्शनलालसाः ॥ ३९१

इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना ।

भूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा ॥ ३९२

मूर्धकम्पेन तान् सर्वान् वीरकोऽपि महामुनीन् ।

आजुहावाविदूरस्थान् दर्शनाय पिनाकिनः ॥ ३९३

त्वराबद्धार्धचूडास्ते लम्बमानाजिनाम्बराः ।

विविशुर्वेदिकां सिद्धां गिरिशस्य विभूतिभिः ॥ ३९४

वद्धपाणिपुटाक्षिसनाकपुष्पोत्करास्तः ।

पिनाकिपादयुगलं वन्द्यं नाकनिवासिनाम् ॥ ३९५

ततः स्निग्धेक्षिताः शान्ता मुनयः शूलपाणिना ।

मन्मथार्दिं ततो हष्टाः सम्यक् तुष्टुवुरादृताः ॥ ३९६

मुनय ऊचुः

अहो कृतार्थं वयमेव साम्प्रतं

सुरेश्वरोऽप्यत्र पुरो भविष्यति ।

भवत्प्रसादामलवारिसेकतः

फलेन काचित् तपसा नियुज्यते ॥ ३९७

‘विप्रवरो ! अभी-अभी दोपहरकी संध्या समाप्त कर शङ्करजी मन्दाकिनीके जलमें स्नान करनेके लिये गये हैं, अतः क्षणभर ठहरिये, फिर आपलोग उन त्रिशूलधारीका दर्शन कीजियेगा ।’ इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण उस कालकी प्रतीक्षा करते हुए उसी प्रकार खड़े रहे, जैसे वर्षा-ऋतुमें प्यासे चातक जलसे भरे हुए बादलकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं ॥ ३७४—३८८ ॥

तत्पश्चात् थोड़ी देर बाद जब समाधि सम्पन्न करके शङ्करजी मृगचर्मपर लगाये हुए वीरासनको छोड़कर उठे, तब वीरकने विनम्र भावसे पृथ्वीपर घुटने टेककर प्रणाम करते हुए महादेवजीसे कहा—‘विभो ! प्रचण्ड तेजस्वी सप्तर्षि आपका दर्शन करनेके लिये आये हुए हैं । उन्हें दर्शन करनेके लिये आदेश दीजिये अथवा इस विषयमें आप जैसा उचित समझें । उनके मनमें आपके दर्शनकी लालसा है और वे कह रहे हैं कि हमलोग देवकार्यसे आये हुए हैं ।’ तब उस महात्मा वीरकद्वारा इस प्रकार सूचित किये जानेपर जटाधारी शङ्करने भौंहोंके संकेतसे उन लोगोंके लिये प्रवेशाज्ञा प्रदान की । फिर तो वीरकने भी समीपमें ही स्थित उन सभी मुनियोंको सिर हिलाकर संकेतसे पिनाकधारी शङ्करका दर्शन करनेके लिये बुलाया । यह देखकर उतावलीवश आधी बँधी हुई शिखावाले एवं मृगचर्मरूपी वस्त्रको लटकाये हुए वे मुनिलोग शङ्करजीकी विभूतिसे सिद्ध हुई वेदीमें प्रविष्ट हुए । वहाँ उन्होंने बँधी हुई अञ्जलि तथा दोनेमें रखे हुए स्वर्गीय पुष्पसमूहोंको स्वर्गवासियोंद्वारा वन्दनीय शिवजीके दोनों चरणोंपर बिखेरकर नमस्कार किया । तब त्रिशूलधारी शङ्करने उन शान्तस्वभाव मुनियोंकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे देखा । इस प्रकार सत्कृत होनेसे प्रसन्न हुए ऋषिगण कामदेवके शत्रु भगवान् शङ्करकी सम्यक् प्रकारसे स्तुति करने लगे ॥ ३८९—३९६ ॥

मुनियोंने कहा—अहो भगवन् ! इस समय हमलोग तो कृतार्थ हो ही गये, आगे चलकर देवराज इन्द्र भी सफलमनोरथ होंगे । इसी प्रकार आपकी कृपारूपी निर्मल जलके सिंचनसे कोई तपस्विनी भी अपनी तपस्याके फलसे युक्त होगी ।

जयत्यसौ धन्यतरो हिमाचल-
स्तदाश्रयं यस्य सुता तपस्यति ।
स दैत्यराजोऽपि महाफलोदयो
विमूलिताशेषसुरो हि तारकः ॥ ३९८
त्वदीयमंशं प्रविलोक्य कल्पषात्
स्वकं शरीरं परिमोक्ष्यते हि यः ।
स धन्यधीर्लोकपिता चतुर्मुखो
हरिश्च यत्सम्भ्रमवहिनीपितः ॥ ३९९
त्वदइघियुग्मं हृदयेन बिभ्रतो
महाभितापप्रशमैकहेतुकम् ।
त्वमेव चैको विविधकृतक्रियः
किलेति वाचा विद्युर्विभाष्यते ॥ ४००
अथाद्य एकस्त्वमवैषि नान्यथा
जगत्तथा निर्धृणतां तव स्पृशेत् ।
न वेत्सि वा दुःखमिदं भवात्मकं
विहन्यते ते खलु सर्वतः क्रिया ॥ ४०१
उपेक्षसे चेज्जगतामुपद्रवं
दयामयत्वं तव केन कथ्यते ।
स्वयोगमायामहिमागुहाश्रयं
न विद्यते निर्मलभूतिगौरवम् ॥ ४०२
वयं च ते धन्यतमाः शरीरिणां
यदीदृशं त्वां प्रविलोक्यामहे ।
अदर्शनं तेन मनोरथो यथा
प्रयाति साफल्यतया मनोगतम् ॥ ४०३
जगद्विधानैकविधौ जगन्मुखे
करिष्यसेऽतो बलभिच्चरा वयम् ।
विनेमुरित्थं मुनयो विसृज्य तां
गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ ।
उत्कृष्टकेदार इवावनीतले
सुबीजमुष्टि सुफलाय कर्षकाः ॥ ४०४
तेषां श्रुत्वा ततो रम्यां प्रक्रमोपक्रमक्रियाम् ।
वाचं वाचस्पतिरिव प्रोवाच स्मितसुन्दरः ॥ ४०५

इस धन्यवादके पात्र हिमाचलकी जय हो, जिनके आश्रयमें रहकर उनकी कन्या तपस्या कर रही है। सम्पूर्ण देवताओंको उखाड़ फैकनेवाले दैत्यराज तारकके भी महान् पुण्यफलका उदय हो गया है, जो आपके अंशसे उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर पापसे निर्मुक्त हो अपने शरीरका परित्याग करेगा। लोकपिता चतुर्मुख ब्रह्माकी तथा तारकके भयरूपी अग्निसे संतस श्रीहरिकी भी बुद्धि धन्य है, जो महान् संतापके प्रशमनके लिये एकमात्र कारणभूत आपके दोनों चरणोंको अपने हृदयमें धारण करते हैं। एकमात्र आप ही अनेकविधि दुरुह कार्योंको सम्पन्न करनेवाले हैं, दुःखी लोग आपका ऐसा विरद गाते हैं। इसे अकेले आप ही जानते हैं, अतः इसके विपरीत कोई ऐसा कार्य न कीजिये, जिससे जगत्को आपकी निर्दयताका अनुभव होने लगे। अथवा यदि आप इस सांसारिक दुःखकी ओर ध्यान नहीं देते तो आपकी सर्वतोमुखी क्रिया लुप्त होने जा रही है। यदि आप इस प्रकार जगत्के उपद्रवकी उपेक्षा कर दे रहे हैं तो किसलिये आपको दयामय कहा जा सकता है। साथ ही अपनी योगमायाकी महिमारूपी गुफामें स्थित रहनेवाला आपके निर्मल ऐश्वर्यका गौरव भी विद्यमान नहीं रह सकता। शरीरधारियोंमें हमलोग भी अतिशय धन्यवादके पात्र हैं, जो इस प्रकार आपका दर्शन कर रहे हैं। इसलिये हमारा मनोरथ नष्ट नहीं होना चाहिये। आप जगत्की रक्षाके विधानमें जगत्के लिये ऐसा करें जिससे हमारे मनोगत भाव सफल हो जायें। हमलोग देवराज इन्द्रके दूत बनकर आये हैं। ऐसा कहकर वे मुनिगण शङ्करजीके चरणोंमें अवनत हो गये। उस समय उन्होंने शङ्करजीके कानरूपी भूमिके निकट उस वाणीरूपी बीजको इस प्रकार छाँट दिया था, जैसे किसानलोग भलीभाँति जोती हुई भूमिपर अच्छे फलकी प्रासिके निमित्त उत्तम बीजकी मूँठ डाल देते हैं ॥ ३९७—४०४ ॥

तदनन्तर उन मुनियोंकी सिलसिलेवार योजनासे युक्त मनोहर वाणीको सुनकर भगवान् शङ्करके मुखपर मुसकानकी छटा बिखर गयी। तब वे बृहस्पतिकी तरह सान्त्वनापूर्ण वचन बोले ॥ ४०५ ॥

शर्व उवाच

जाने लोकविधानस्य कन्यासत्कार्यमुत्तमम् ।
 जाता प्रालेयशैलस्य संकेतकनिरूपणाः ॥ ४०६
 सत्यमुत्कण्ठिताः सर्वे देवकार्यार्थमुद्यताः ।
 तेषां त्वरन्ति चेतांसि किंतु कार्यं विवक्षितम् ॥ ४०७
 लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेण विचक्षणैः ।
 सेवन्ते ते यतो धर्मं तत्प्रामाण्यात्परे स्थिताः ॥ ४०८
 इत्युक्ता मुनयो जग्मुस्त्वरितास्तु हिमाचलम् ।
 तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम् ।
 ऊर्ध्वमुनिवराः प्रीताः स्वल्पवर्णं त्वरान्विताः ॥ ४०९

मुनय ऊचुः

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गते ।
 तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहृत्येवानलार्पणात् ॥ ४१०
 कार्यमेतच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते ।
 जगदुद्धरणायैष क्रियतां वै समुद्यमः ॥ ४११
 इत्युक्तस्तैस्तदा शैलो हर्षाविष्टोऽवदन्मुनीन् ।
 असमर्थोऽभवद् वक्तुमुत्तरं प्रार्थयच्छिवम् ॥ ४१२
 ततो मेना मुनीन् वन्द्य प्रोवाच स्नेहविकलवा ।
 दुहितुस्तान् मुनींश्चैव चरणाश्रयमर्थवित् ॥ ४१३

मेनोवाच

यदर्थं दुहितुर्जन्म नेच्छन्त्यपि महाफलम् ।
 तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम् ॥ ४१४
 कुलजन्मवयोरूपविभूत्यद्धियुतोऽपि यः ।
 वरस्तस्यापि चाहूय सुता देया ह्याचतः ॥ ४१५
 तत्समस्ततपो घोरं कथं पुत्री प्रयास्यति ।
 पुत्रीवाक्याद्यदत्रास्ति विधेयं तद्विधीयताम् ॥ ४१६

शङ्करजीने कहा—मुनिवरो ! जगत्के कल्याणके लिये किये जाते हुए कन्याके उस उत्तम सत्कार्यको मैं जानता हूँ । वह कन्या हिमाचलकी पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई है । आपलोग उसीके संयोग-प्रस्तावका निरूपण कर रहे हैं । यह सत्य है कि सभी लोग देवकार्यकी सिद्धिके हेतु उत्सुक और उद्यत हैं, इसीसे उनके चित्त उतावलीसे भर गये हैं, किंतु यह कार्य कुछ कालकी अपेक्षा कर रहा है अर्थात् इसके पूर्ण होनेमें कुछ विलम्ब है । विद्वानोंको विशेषरूपसे लोकव्यवहारका निर्वाह करना चाहिये; क्योंकि वे जिस धर्मका सेवन करते हैं, वही दूसरोंके लिये प्रमाणरूप बन जाता है । ऐसा कहे जानेपर मुनिगण तुरंत ही हिमाचलके पास चल दिये । वहाँ पहुँचनेपर हिमाचलने उनकी आदरपूर्वक आवधारणा की । तब प्रसन्न हुए मुनिवर शीघ्रतापूर्वक थोड़े शब्दोंमें (इस प्रकार) बोले ॥ ४०६—४०९ ॥

मुनियोंने कहा—पर्वतराज ! पिनाकधारी साक्षात् महादेव आपको कन्याको प्राप्त करना चाहते हैं, अतः अग्निमें पड़ी हुई आहुतिकी तरह उसे शीघ्र ही उन्हें प्रदान करके अपने आत्माको पवित्र कर लीजिये । देवताओंका यह कार्य चिरकालसे चला आ रहा है, अतः जगत्का उद्धार करनेके लिये आप इस उद्योगको शीघ्र सम्पन्न कीजिये । मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उस समय हिमाचल हर्षविभोर हो मुनियोंको उत्तर देनेके लिये उद्यत हुए; किंतु जब उत्तर देनेमें असमर्थ हो गये, तब मन-ही-मन शङ्करजीसे प्रार्थना करने लगे । तत्पश्चात् प्रयोजनको समझनेवाली मेनाने मुनियोंको प्रणाम किया और पुत्रीके स्नेहसे व्याकुल हुई वह उन मुनियोंके चरणोंके निकट स्थित हो इस प्रकार बोली ॥ ४१०—४१३ ॥

मेनाने कहा—मुनिवरो ! जिन कारणोंसे लोग महान् फलदायक होनेपर भी कन्याके जन्मकी इच्छा नहीं करते, वही सब इस समय परम्परासे मेरे सामने आ उपस्थित हुआ है । (विवाहकी प्रथा तो यह है कि) जो वर उत्तम कुल, जन्म, अवस्था, रूप, ऐश्वर्य और सम्पत्तिसे भी युक्त हो, उसे अपने घर बुलाकर कन्या प्रदान करनी चाहिये, किंतु कन्याकी याचना करनेवालेको नहीं । भला बताइये, इस प्रकार समस्त घोर तर्पोंके करनेवाले वरके साथ मेरी पुत्री कैसे जायगी । इसलिये इस विषयमें मेरी पुत्रीके कथनानुसार जो उचित हो, वही आपलोग करें ।

इत्युक्ता मुनयस्ते तु प्रियया हिमभूभृतः ।
ऊचुः पुनरुदारार्थं नारीचित्तप्रसादकम् ॥ ४१७
मुनय ऊचुः
ऐश्वर्यमवगच्छस्व शंकरस्य सुरासुरैः ।
आराध्यमानपादाब्जयुगलत्वात् सुनिर्वृतैः ॥ ४१८
यस्योपयोगि यद्गूपं सा च तत्प्राप्तये चिरम् ।
घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृतिः ॥ ४१९
यस्तद्वतानि दिव्यानि नविष्यति समाप्तनम् ।
तत्र सावहिता तावत् तस्मात् सैव भविष्यति ॥ ४२०
इत्युक्त्वा गिरिणा सार्थं ते यथुर्यत्र शैलजा ।
जितार्कञ्चलनञ्चाला तपस्तेजोमयी ह्युमा ॥ ४२१
प्रोचुस्तां मुनयः स्निग्धं सम्मान्यपथमागतम् ।
रम्यं प्रियं मनोहारि मा रूपं तपसा दह ॥ ४२२
प्रातस्ते शंकरः पाणिमेष पुत्रि ग्रहीष्यति ।
वयमर्थितवन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः ॥ ४२३
पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम् ॥ ४२४
इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा ।
त्वरमाणा यद्यौ वेशम पितुर्दिव्यार्थशोभितम् ॥ ४२५
सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सती ।
हरदर्शनसंजातमहोत्कण्ठा हिमाद्रिजा ॥ ४२६
ततो मुहूर्ते ब्राह्मे तु तस्याश्रकुः सुख्नियः ।
नानामङ्गलसंदोहान् यथावत्क्रमपूर्वकम् ॥ ४२७
दिव्यमण्डनमङ्गानां मन्दिरे बहुमङ्गले ।
उपासत गिरि मूर्ता ऋतवः सार्वकात्मकाः ॥ ४२८
वायवो वारिदाश्वासन् सम्मार्जनविधौ गिरेः ।
हर्ष्येषु श्रीः स्वयं देवी कृतनानाप्रसाधना ॥ ४२९
कान्तिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्वाभवदाकुला ।
चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाः शैलं समंततः ॥ ४३०

हिमाचलकी पत्नी मेनाद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण पुनः नारीके चित्तको प्रसन्न करनेवाले उदार अर्थसे युक्त वचन बोले ॥ ४१४—४१७ ॥

मुनियोंने कहा—मेना ! तुम शङ्करजीके ऐश्वर्यका ज्ञान उन देवताओं और असुरोंसे प्राप्त करो, जो उनके दोनों चरणकमलोंकी आराधना करके भलीभाँति संतुष्ट हो चुके हैं । जिसके लिये जो रूप उपयोगी होता है, वह उसीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है । इस नियमके अनुसार वह कन्या शंकरजीकी प्राप्तिके लिये चिरकालसे घोर तपस्या कर रही है । उसे उसी रूपसे पूर्ण संतोष है । जो पुरुष उसके दिव्य ब्रतोंका समाप्तन करेगा, उसके प्रति वह अतिशय प्रसन्न एवं संतुष्ट होगी । ऐसा कहकर वे मुनिगण हिमाचलके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ सूर्य और अग्निकी ज्वालाको जीतनेवाली एवं तपस्याके तेजसे युक्त पार्वती उमा तपस्या कर रही थीं । वहाँ पहुँचकर मुनियोंने पार्वतीसे स्नेहपूर्ण वाणीमें कहा—‘पुत्रि ! अब तुम्हारे लिये सम्मान्यका पथ प्राप्त हो गया है, इसलिये अब तुम अपने इस रमणीय, प्रिय एवं मनको लुभानेवाले रूपको तपस्यासे दग्ध मत करो । प्रातःकाल वे शङ्कर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे । हमलोग उनसे प्रार्थना करके पहले ही तुम्हारे पिताके पास आ गये हैं । अब तुम अपने पिताके साथ घर लौट जाओ और हमलोग अपने निवासस्थानको जा रहे हैं । इस प्रकार कही जानेपर पार्वती ‘तपका फल निश्चय ही सत्य होता है’—ऐसा विचारकर दिव्य पदार्थोंसे सुशोभित अपने पिताके घरकी ओर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुई । वहाँ पहुँचकर पार्वतीके मनमें शङ्करजीके दर्शनकी महान् उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, जिससे सती पार्वतीको वह रात्रि दस हजार वर्षोंके समान प्रतीत होने लगी ॥ ४१८—४२६ ॥

तदनन्तर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें देवाङ्गनाओंने पार्वतीके लिये क्रमशः नाना प्रकारके माङ्गलिक कार्योंको यथार्थरूपसे सम्पन्न किया । फिर उस विविध प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त भवनमें पार्वतीके अङ्गोंको दिव्य श्रृंगारसे सुशोभित किया गया । उस समय सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली छहों ऋतुएँ शरीर धारणकर हिमाचलकी सेवामें उपस्थित हुईं, वायु और बादल पर्वतकी गुफाओंमें झाड़-बुहारके कार्यमें संलग्न थे । अट्टालिकाओंपर स्वयं लक्ष्मीदेवी नाना प्रकारकी सामग्रियोंको सँजोये हुए विराजमान थीं । सभी पदार्थोंमें कान्ति फूटी पड़ती थी । ऋद्धि आकुल हो उठी थी । चिन्तामणि आदि रत्न पर्वतपर चारों ओर

उपतस्थुर्नगाश्चापि कल्पकाममहाद्रुमाः ।
 ओषध्यो मूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः ॥ ४३१
 रसाश्च धातवश्चैव सर्वे शैलस्य किङ्कराः ।
 किङ्करास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाज्ञानुवर्तिनः ॥ ४३२
 नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जड्मं च यत् ।
 तत्सर्वं हिमशैलस्य महिमानमवर्धयत् ॥ ४३३
 अभवन् मुनयो नागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
 शंकरस्यापि विबुधा गन्धमादनपर्वते ॥ ४३४
 सर्वे मण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्तयः ।
 शर्वस्यापि जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामहः ॥ ४३५
 बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः ।
 कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्यबन्धत ॥ ४३६
 उवाच चापि वचनं पुत्रं जनय शंकर ।
 यो दैत्येन्द्रकुलं हत्वा मां रक्तेस्तर्पयिष्यति ॥ ४३७
 शौरिर्ज्वलच्छिरोरलमुकुटं चानलोल्बणम् ।
 भुजगाभरणं गृहा सज्जं शम्भोः पुरोऽभवत् ॥ ४३८
 शक्रो गजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम् ।
 दधे सरभसं स्विद्विस्तीर्णमुखपङ्कजम् ॥ ४३९
 वायुश्च विपुलं तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम् ।
 वृषं विभूषयामास हरयानं महौजसम् ॥ ४४०
 वितेनुर्यनान्तःस्थाः शम्भोः सूर्यानलेन्दवः ।
 स्वां द्युतिं लोकनाथस्य जगतः कर्मसाक्षिणः ॥ ४४१
 चिताभस्म समाधाय कपाले रजतप्रभम् ।
 मनुजास्थिमयीं मालामाबबन्ध च पाणिना ॥ ४४२
 प्रेताधिपः पुरो द्वारे सगदः समवर्तत ।
 नानाकारमहारत्नभूषणं धनदाहतम् ॥ ४४३
 विहायोदग्रसर्पेन्द्रकटकेन स्वपाणिना ।
 कणोन्तंसं चकारेशो वासुकिं तक्षकं स्वयम् ॥ ४४४
 जलाधीशाहतां स्थास्नुप्रसूनावेष्टितां पृथक् ।

बिखरे हुए थे। कल्पवृक्ष आदि महनीय वृक्षोंसे युक्त अन्यान्य पर्वत भी सेवामें उपस्थित थे। दिव्यौषधिसे युक्त मूर्तिमती ओषधियाँ तथा सभी प्रकारके रस और धातुएँ हिमाचलके परिचारकरूपमें विद्यमान थे। हिमाचलके वे सभी किंकर आज्ञापालनके लिये उतावले हो रहे थे। इनके अतिरिक्त सभी समुद्र और नदियाँ तथा समस्त स्थावर-जड्म प्राणी उस समय हिमाचलकी महिमाको बढ़ा रहे थे ॥ ४२७—४३३ ॥

उधर गन्धमादन पर्वतपर शङ्करजीके विवाहोत्सवमें सभी मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व और किंनर आदि देवगण सम्मिलित हुए। वे सभी निर्मल मूर्ति धारणकर शृङ्गारसामग्रीके जुटानेमें तत्पर थे। उस समय प्रेम एवं उदार भावनासे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले ब्रह्माने शंकरजीके जटाजूटमें चन्द्रखण्डको बाँधा। चामुण्डाने उनके मस्तकपर एक विशाल कपालमाला बाँधी और इस प्रकार कहा—‘शंकर! ऐसा पुत्र उत्पन्न करो, जो दैत्यराज तारकके कुलका संहार कर मुझे रक्तसे तृप्त करे।’ भगवान् विष्णु अग्निके समान उद्दीप एवं चमकीले अग्रभागवाले रत्नोंसे निर्मित मुकुट और सर्पोंके आभूषण आदि शृङ्गारसामग्री लेकर शंकरजीके आगे उपस्थित हुए। इन्द्रने वेगपूर्वक गजचर्म लाकर शंकरजीको धारण कराया, जिसका अग्रभाग चर्बीसे लिप्त हुआ था। उस समय प्रसन्नतासे खिले हुए इन्द्रके मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। वायुने शंकरजीके बाहन उस वृषभराज नन्दीश्वरको विभूषित किया, जिसका शरीर विशाल था, जिसके सींग तीखे थे तथा जो हिमाचलके समान उज्ज्वल कान्तिवाला एवं महान् ओजस्वी था। जगत्के कर्मोंके साक्षी सूर्य, अग्नि और चन्द्र लोकनायक शम्भुके नेत्रोंके अन्तस्तलमें स्थित होकर अपनी-अपनी प्रभाका विस्तार करने लगे। प्रेतराज यमने शंकरजीके मस्तकपर चाँदीके समान चमकीला चिताभस्म लगाकर एक हाथसे मनुष्योंकी हड्डियोंसे बनी हुई मालाको बाँधा और फिर वे हाथमें गदा लेकर द्वारपर खड़े हो गये। तत्पश्चात् शिवजीने कुबेरद्वारा लाये गये नाना प्रकारके बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषणों और वरुणद्वारा लायी गयी अम्लान (न कुम्हलानेवाले) पुष्पोंसे गूँथी गयी मालाको पृथक् रखकर विषेले सर्पोंके कङ्कणसे सुशोभित अपने हाथसे स्वयं वासुकि और तक्षकको अपना कुण्डल बनाया ॥ ४३४—४४४ ॥

ततस्तु ते गणाधीशा विनयात् तत्र वीरकम् ॥ ४४५

प्रोचुर्व्यग्राकृते त्वं नो समावेदय शूलिने ।
निष्पन्नाभरणं देवं प्रसाध्येशं प्रसाधनैः ॥ ४४६

सप्त वारिधयस्तस्थुः कर्तुं दर्पणविभ्रमम् ।
ततो विलोकितात्मानं महाम्बुधिजलोदरे ॥ ४४७

धरामालिङ्ग्य जानुभ्यां स्थाणुं प्रोवाच केशवः ।
शोभसे देव रूपेण जगदानन्ददायिना ॥ ४४८

मातरः प्रेरयन् कामवधूं वैधव्यचिह्निताम् ।
कालोऽयमिति चालक्ष्य प्रकारेङ्गितसंज्ञया ॥ ४४९

ततस्ताश्वेदिता देवमूचुः प्रहसिताननाः ।
रतिः पुरस्तव प्राप्ता नाभाति मदनोऽञ्जिता ॥ ४५०

ततस्तां सन्निवार्याह वामहस्ताग्रसंज्ञया ।
प्रयाणे गिरिजावक्त्रदर्शनोत्सुकमानसः ॥ ४५१

ततो हरो हिमगिरिकन्दराकृतिं
समुन्नतं मृदुगतिभिः प्रचोदयन् ।

महावृषं गणतुमुलाहितेक्षणं
स भूधरानशनिरिव प्रकम्पयन् ॥ ४५२

ततो हरिर्द्वृतपदपद्धतिः पुरः-
सरः श्रमाद् द्रुमनिकरेषु विश्रमन् ।

धरारजः शबलितभूषणोऽब्रवीत्
प्रयात मा कुरुत पथोऽस्य संकटम् ॥ ४५३

प्रभोः पुनः प्रथमनियोगमूर्जयन्
सुतोऽब्रवीद् भृकुटिमुखोऽपि वीरकः ।

वियच्चरा वियति किमस्ति कान्तकं
प्रयात नो धरणिधरा विदूरतः ॥ ४५४

महार्णवाः कुरुत शिलोपमं पयः
सुरद्विषागमनमहातिकर्दमम् ।

गणेश्वराश्वपलतया न गम्यतां
सुरेश्वरैः स्थिरगतिभिश्च गम्यताम् ॥ ४५५

तत्पश्चात् वहाँ आये हुए गणाधीशोंने विनयपूर्वक वीरकसे कहा—‘भयंकर आकृतिवाले वीरक! तुम शंकरजीसे हमारे आगमनकी सूचना दे दो। हमलोग सजे-सजाये महादेवको शृङ्गार-सामग्रियोंद्वारा पुनः सुशोभित करेंगे।’ इतनेमें वहाँ सातों समुद्र दर्पणकी स्थानपूर्ति करनेके लिये उपस्थित हुए। तब उस महासागरके जलके भीतर अपने रूपको देखकर भगवान् केशव घुटनोंद्वारा पृथ्वीका आलिङ्गन करके (अर्थात् पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर) शंकरजीसे बोले—‘देव! इस समय आप अपने इस जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले रूपसे सुशोभित हो रहे हैं।’ इसी बीच मातृकाओंने उपयुक्त समय जानकर वैधव्यके चिह्नोंसे युक्त काम-पत्नी रतिको इशारेसे शंकरजीके सम्मुख जानेके लिये प्रेरित किया। (तब वह शिवजीके समक्ष जाकर खड़ी हो गयी।) तब वे मातृकाएँ हँसती हुई शंकरजीसे बोलीं—‘देव! आपके सम्मुख खड़ी हुई कामदेवसे रहित यह रति शोभा नहीं पा रही है।’ तब शंकरजी अपने बायें हाथके अग्रभागके संकेतसे उसे सान्त्वना देते हुए सामनेसे हटाकर प्रस्थित हुए। उस समय उनका मन गिरिजाके मुखका अवलोकन करनेके लिये समुत्सुक हो रहा था ॥ ४४५—४५१ ॥

तदुपरान्त शंकरजीने विशालकाय महावृषभ नन्दीश्वर-पर, जिसकी आकृति हिमाचलके गुफा-सदृश थी तथा जिसके नेत्र प्रमथगणोंकी ओर लगे हुए थे, सवार होकर उसे धीमी चालसे आगे बढ़ाया। उस समय उनके प्रस्थानसे पृथ्वी उसी प्रकार काँप रही थी, मानो वज्रके प्रहारसे पर्वत काँप रहे हों। तत्पश्चात् श्रीहरिने जिनके आभूषण पृथ्वीकी धूलसे धूसरित हो गये थे, शीघ्रतापूर्वक कदम बढ़ाते हुए आगे जाकर श्रमवश घने वृक्षोंके नीचे विश्राम करते हुए लोगोंसे कहा—‘अरे! चलो, आगे बढ़ो, इस मार्गमें भीड़ मत करो।’ पुनः शंकरजीका पुत्र वीरक भाँहें टेढ़ी कर श्रीहरिकी प्रथम आज्ञाको उच्च स्वरसे फैलाता हुआ बोला—‘अरे आकाशचारियो! आकाशमें कौन-सी सुन्दर वस्तु रखी है, जिसे सब लोग देख रहे हो, आगे बढ़ो। पर्वतसमूहो! तुमलोग एक-दूसरेसे अलग-अलग होकर चलो। महासागरो! तुमलोग राक्षसोंके आगमनसे उत्पत्र हुए महान् कीचड़से युक्त जलको शिलासदृश कर दो। गणेश्वरो! तुमलोग चञ्चलतापूर्वक मत चलो। सुरेश्वरोंको स्थिरगतिसे चलना चाहिये।

न भृङ्गिणा स्वतनुमवेक्ष्य नीयते
 पिनाकिनः पृथुमुखमण्डमग्रतः ।
 वृथा यम प्रकटितदन्तकोटरं
 त्वमायुधं वहसि विहाय सम्भ्रमम् ॥ ४५६
 पदं न यद्रथतुरगैः पुरद्विषः
 प्रमुच्यते बहुतरमातृसंकुलम् ।
 अमी सुराः पृथगनुयायिभिर्वृताः
 पदातयो द्विगुणपथान् हरप्रियाः ॥ ४५७
 स्ववाहनैः पवनविधूतचामैर-
 श्वलध्वजैर्व्रजत विहारशालिभिः ।
 सुराः स्वकं किमिति न रागमूर्जितं
 विचार्यते नियतलयत्रयानुगम् ॥ ४५८
 न किन्नरैरभिभवितुं हि शक्यते
 विभूषणप्रचयसमुद्भवो ध्वनिः ।
 स्वजातिकाः किमिति न षड्जमध्यम-
 पृथुस्वरं बहुतरमत्र वक्ष्यते ॥ ४५९
 नतानतानतनततानतां गताः
 पृथक्तया समयकृता विभिन्नताम् ।
 विशङ्किता भवदतिभेदशीलिनः
 प्रयान्त्यमी द्रुतपदमेव गौडकाः ॥ ४६०
 विसंहताः किमिति न षाडवादयः
 स्वगीतकैर्लिलितप्रदप्रयोजकैः ।
 प्रभोः पुरो भवति हि यस्य चाक्षतं
 समुदगतार्थकमिति तत्प्रतीय ॥ ४६१
 अमी पृथगिवरचितरम्यरासकं
 विलासिनो बहुगमकस्वभावकम् ।
 प्रयुञ्जते गिरिशयशोविसारिणं
 प्रकीर्णकं बहुतरनागजातयः ॥ ४६२
 अमी कथं ककुभि कथाः प्रतिक्षणं
 ध्वनन्ति ते विविधवधूविमिश्रिताः ।
 न जातयो ध्वनिमुरजासमीरिता
 न मूर्च्छिताः किमिति च मूर्च्छनात्मिकाः ॥ ४६३ ।

शङ्करजीके आगे-आगे विशाल पानपात्रको लेकर चलने-वाले भृङ्गी अपने शरीरकी रक्षा करते हुए नहीं चल रहे हैं । यम ! तुम अपने इस निकले हुए दाँतोंवाले आयुधको व्यर्थ ही धारण किये हुए हो । भय छोड़कर चलो । शङ्करजीके रथके घोड़े अपने मार्गको बहुत-सी माताओंसे व्यास होनेपर भी नहीं छोड़ रहे हैं । ये शङ्करजीके प्रिय देवगण पृथक्-पृथक् अपने अनुयायियोंसे घिरे हुए पैदल ही दूना मार्ग तय कर रहे हैं ॥ ४५२—४५७ ॥

‘देवगण ! आपलोग आमोदके साधनोंसे सम्पन्न एवं वायुके आवेगसे हिलते हुए चामरोंसे युक्त अपने वाहनोंद्वारा, जिनपर ध्वजाएँ फहरा रही हैं, अलग-अलग होकर चलिये । आपलोग नियतरूपसे तीनों लयोंका अनुगमन करनेवाले अपने ऊर्जस्वी रागके विषयमें क्यों नहीं विचार कर रहे हैं ? किंनरगण (अपने वाद्योंद्वारा) आभूषणसमूहसे उत्पन्न हुई ध्वनिको परास्त नहीं कर सकते । अपनी जातिवाले गणेश्वरो ! इस समय षड्ज, मध्यम और पृथु स्वरसे युक्त गीत अधिक मात्रामें क्यों नहीं गाये जा रहे हैं । ये गौड़ी-रागके जानकार लोग कालभेदके अनुसार विभिन्नताको प्राप्त हुए एवं नतानत, नत और आनतके लयसे युक्त अत्यन्त भेदवाले रागको पृथक्-रूपमें निःशङ्कभावसे अलापते हुए बड़ी शीघ्रतासे चले जा रहे हैं । षाडवै रागके ज्ञातालोग पृथक्-पृथक् अपने ललित पदोंके प्रयोजक गीतोंको अलापते हुए शंकरजीके आगे-आगे क्यों नहीं चल रहे हैं ? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शंकरजीकी हर्षपूर्ण यात्रामें विघ्न न पड़ जाय, इस भयसे वे ऐसा नहीं कर रहे हैं । ये विभिन्न जातियोंके विलासोन्मत्त नाग शंकरजीके यशका विस्तार करनेवाले, अधिकांश गमकैके स्वभावसे सम्पन्न तथा मनोहर ध्वनिसे युक्त संगीतका पृथक्-पृथक् प्रयोग कर रहे हैं । उधर उस दिशामें ये वधुओंसहित अनेकों संगीतज्ञ प्रतिक्षण कैसा संगीत अलाप रहे हैं ? पता नहीं क्यों, न तो उसमें मृदङ्गसे निकली हुई ध्वनिकी जातियाँ लक्षित हो रही हैं, न मूर्छनाँ—आरोह-अवरोहसे युक्त स्वरका ही भान हो रहा है ।

१. एक संकर राग । २. रागकी एक जाति, जिसमें केवल छः स्वर आते हैं । ३. सातों स्वरोंका क्रमसे आरोह-अवरोह । ४. गानेमें एक श्रुतिसे दूसरी श्रुतिपर जानेकी एक रीति ।

श्रुतिप्रियकमगतिभेदसाधनं

ततादिकं किमिति न तुम्बरेरितम्।

न हन्यते बहुविधवाद्यडम्बरं

प्रकीर्णवीणामुरजादि नाम यत्॥ ४६४

इतीरितां गिरमवधार्य शालिनीं

सुरासुराः सपदि तु वीरकाज्ञया।

नियामिताः प्रययुतीव हर्षिता-

श्राचरं जगदखिलं ह्यपूरयन्॥ ४६५

इति स्तनत्कुभि रसन् महार्णवे

स्तनदध्यने विदलितशैलकन्द्रे।

जगत्यभूत् तुमुल इवाकुलीकृतः

पिनाकिना त्वरितगतेन भूधरः॥ ४६६

परिज्वलत्कनकसहस्रतोरणं

क्वचिन्मिलन्मरकतवेशमवेदिकम्।

क्वचित्क्वचिद्विमलविदूर्यभूमिकं

क्वचिदगलजलधररम्यनिर्झरम्॥ ४६७

चलदध्वजप्रवरसहस्रमणिडतं

सुरद्वुमस्तबकविकीर्णचत्वरम् ।

सितासितारुणरुचिधातुवर्णिकं

श्रियोज्ज्वलं प्रविततमार्गगोपुरम्॥ ४६८

विजृम्भिताप्रतिमध्वनिवारिदं

सुगच्छिभिः पुरपवनैर्मनोहरम् ।

हरो महागिरिनगरं समासदत्

क्षणादिव प्रवरसुरासुरस्तुतः॥ ४६९

तं प्रविशन्तमगात् प्रविलोक्य

व्याकुलतां नगरं गिरिभर्तुः।

व्यग्रपुरन्धिजनं जवियानं

धावितमार्गजनाकुलरथ्यम्॥ ४७०

हर्ष्यगवाक्षगतामरनारी-

लोचननीलसरोरुहमालम् ।

सुप्रकटा समदृश्यत काचित्

स्वाभरणांशुवितानविगूढा॥ ४७१

काप्यखिलीकृतमण्डनभूषा

त्यक्तसखीप्रणया हरमैक्षत्।

काचिदुवाच कलं गतमाना

कातरतां सखि मा कुरु मूढे॥ ४७२

तुम्बुरुद्वारा बजाये जानेवाले कर्णप्रिय तथा क्रम एवं गतिके भेदसे युक्त तारवाले बाजे क्यों नहीं बजाये जा रहे हैं? इधर वीणा, मृदंग आदि अनेकों प्रकारके वाद्यसमूह क्यों नहीं बजाये जा रहे हैं?'॥ ४५८—४६४॥

इस प्रकार कही गयी उस सुन्दर वाणीको सुनकर देवता और दैत्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तब वे तुरंत ही वीरकी आज्ञासे सम्पूर्ण चराचर जगत्को आच्छादित करते हुए नियमपूर्वक आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार शंकरजीके शीघ्रतापूर्वक गमनसे दिशाओंमें कोलाहल गूँज उठा, महासागरोंमें ज्वार उठने लगा, बादल गरजने लगे, पर्वतकी कन्दराएँ तहस-नहस हो गयीं, जगत्में तुमुल ध्वनि व्याप हो गयी और हिमाचल व्याकुल हो गये। इस प्रकार श्रेष्ठ सुरों एवं असुरोंद्वारा प्रशंसित होते हुए शिवजी क्षणमात्रमें ही पर्वतराज हिमाचलके उस नगरमें जा पहुँचे, जो तपाये गये सुवर्णके सहस्रों तोरणोंसे सुशोभित था। उसमें कहीं-कहीं मरकतमणिके संयोगसे बने हुए घरोंमें वेदिकाएँ बनी हुई थीं। कहीं-कहीं निर्मल वैदूर्य मणिके फर्श बने थे। कहीं बादलके समान रमणीय झरने झर रहे थे। वह नगर हजारों फहराते हुए ऊँचे-ऊँचे ध्वजोंसे विभूषित था। वहाँ चबूतरोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंके गुच्छे बिखेरे गये थे। वह श्वेत, काले और लाल रंगकी धातुओंसे रँगा हुआ था। उसकी उज्ज्वल छटा फैल रही थी। उसके मार्ग और फाटक अत्यन्त विस्तृत थे। वहाँ उमड़े हुए बादलोंका अनुपम शब्द हो रहा था। सुगन्धयुक्त वायुके चलनेसे वह पुर अत्यन्त मनोहर लग रहा था॥ ४६५—४६९॥

शिवजीको उस नगरमें प्रवेश करते देखकर पर्वतराज हिमाचलका सारा नगर व्याकुल हो गया। पति-पुत्र आदिसे युक्त सम्मानित नारियाँ व्याकुल होकर वेगपूर्वक इधर-उधर भागने लगीं। मार्गों और गलियोंमें भागते हुए लोगोंकी भीड़ लग गयी। कोई देवाङ्गना अट्टालिकाके झरोखेमें बैठकर अपने नीलकमलके-से नेत्रोंसे उसकी शोभा बढ़ा रही थी। कोई नारी अपने आभूषणोंकी किरणोंसे छिपी होनेपर भी प्रत्यक्ष रूपमें दीख रही थी। कोई सुन्दरी अपनेको सम्पूर्ण शृङ्खारोंसे विभूषितकर सखीके प्रेमको छोड़कर शिवजीकी ओर निहार रही थी। कोई नारी अभिमानरहित हो मधुर वाणीमें बोली—'अरी भोली-

दग्धमनोभव एव पिनाकी
 कामयते स्वयमेव विहर्तुम्।
 काचिदपि स्वयमेव पतन्ती
 प्राह परां विरहस्खलिताङ्गीम्॥ ४७३
 मा चपले मदनव्यतिषङ्गं
 शङ्करजं सखलनेन वद त्वम्।
 कापि कृतव्यवधानमदृष्टा
 युक्तिवशाद्विरिशो हयमूचे॥ ४७४
 एष स यत्र सहस्रमखाद्या
 नाकसदामधिपाः स्वयमुक्तेः।
 नामभिरिन्दुजटं निजसेवा-
 प्राप्तिफलाय नतास्तु घटन्ते॥ ४७५
 एष न चैष स एष यद्ये
 चर्मपरीततनुः शशिमौली।
 धावति वज्रधरोऽमरराजो
 मार्गममुं विवृतीकरणाय॥ ४७६
 एष स पद्मभवोऽयमुपेत्य
 प्रांशुजटामृगचर्मनगूढः।
 सप्रणायं करघट्टितवक्त्रः
 किंचिदुवाच मितं श्रुतिमूले॥ ४७७
 एवमभूत सुरनारिकुलानां
 चित्तविसंस्थुलता गुरुरागात्।
 शंकरसंश्रयणाद्विरिजाया
 जन्मफलं परमं त्विति चोचुः॥ ४७८
 ततो हिमगिरेर्वेशम विश्वकर्मनिवेदितम्।
 महानीलमयस्तम्भं ज्वलत्काञ्छनकुट्टिमम्॥ ४७९
 मुक्ताजालपरिष्कारं ज्वलितौषधिदीपितम्।
 क्रीडोद्यानसहस्राङ्गं काञ्छनाबद्धदीर्घिकम्॥ ४८०
 महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे सुरा दृष्टा तदद्भुतम्।
 नेत्राणि सफलान्यद्य मनोभिरिति ते दधुः॥ ४८१
 विमर्दकीर्णकेयूरा हरिणा द्वारि रोधिताः।
 कथंचित् प्रमुखास्तत्र विविशुर्नाकवासिनः॥ ४८२
 प्रणतेनाचलेन्द्रेण पूजितोऽथ चतुर्मुखः।
 चकार विधिना सर्वं विधिमन्त्रपुरःसरम्॥ ४८३

भाली सखि! तुम कातर मत होओ। यद्यपि शिवजीने कामदेवको जला दिया है, तथापि वे स्वयं ही विहार करनेकी इच्छा करते हैं।' कोई सुन्दरी, जो स्वयं मनोभवके फंदेमें पड़ गयी थी, विरहसे सखलित अङ्गोंवाली दूसरी नारीसे बोली—'चपले! तुम भूलसे शङ्करजीके साथ कामदेवके संयोगकी चर्चा मत किया कर।' कोई कामिनी व्यवधान पड़नेके कारण शङ्करजीको न देखकर युक्तिपूर्वक 'शङ्कर यही हैं'—ऐसा मानकर कह रही थी—'वे शिव यही हैं, जिन चन्द्रशेखरको अपनी सेवाके फलकी प्राप्तिके निमित्त स्वर्गवासियोंके अधीक्षर इन्द्र आदि देवगण स्वयं अपना-अपना नाम लेकर नमस्कार कर रहे हैं।' कोई नारी कह रही थी—'ओ! शिवजी यह नहीं हैं, वे तो वह हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभा पा रहा है और जिनका शरीर चमड़ेसे ढाँका हुआ है तथा जिनके आगे वज्रधारी देवराज इन्द्र इस मार्गको निर्बाध करनेके लिये दौड़ रहे हैं। देखो, ये लम्बी जटाओं और मृगचर्मसे सुशोभित पदायोनि ब्रह्मा भी उनके निकट जाकर हाथसे मुख पकड़े हुए प्रेमपूर्वक उनके कानोंमें कुछ कह रहे हैं।' इस प्रकार अतिशय प्रेमके कारण देवाङ्गनाओंके चित्तमें परम संतोष हुआ। तब वे कहने लगीं कि शङ्करजीका आश्रय ग्रहण करनेसे पार्वतीको अपने जन्मका परम फल प्राप्त हो गया॥ ४७०—४७८॥

तदनन्तर भगवान् शङ्कर हिमाचलके उस भवनमें प्रविष्ट हुए, जिसका निर्माण देवशिल्पी विश्वकर्मने किया था तथा जिसमें महानीलमणिके खम्भे लगे हुए थे, जिसका फर्श तपाये हुए स्वर्णका बना हुआ था, जो मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित और जलती हुई औषधियोंके प्रकाशसे उद्दीप हो रहा था, जिसमें हजारों क्रीडोद्यान थे तथा जिसकी बावलियोंकी सीढ़ियाँ सोनेकी बनी हुई थीं। उस अद्भुत भवनको देखकर महेन्द्र आदि सभी देवताओंने अपने मनमें ऐसा समझा कि आज हमारे नेत्र सफल हो गये। उस भवनके द्वारपर श्रीहरिद्वारा रोके जानेपर भीड़के कारण जिनके केयूर परस्पर रगड़ खाकर चूर-चूर हो गये थे, ऐसे कुछ प्रमुख स्वर्गवासी किसी प्रकार उस भवनमें प्रविष्ट हुए। तदनन्तर वहाँ (मण्डपमें) पर्वतराज हिमाचलने विनप्रभावसे ब्रह्माकी पूजा की। तब

शर्वेण पाणिग्रहणमग्निसाक्षिकमक्षतम्।
दाता महीभूतां नाथो होता देवश्चतुर्मुखः ॥ ४८४
वरः पशुपतिः साक्षात् कन्या विश्वारणिस्तथा ।
चराचराणि भूतानि सुरासुरवराणि च ॥ ४८५
तत्राप्येते नियमतो ह्यभवन् व्यग्रमूर्तयः ।
मुमोचाभिनवान् सर्वान् सस्यशालीन् रसौषधीः ॥ ४८६
व्यग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावमनोरमा ।
गृहीत्वा वरुणः सर्वरत्नान्याभरणानि च ॥ ४८७
पुण्यानि च पवित्राणि नानारत्नमयानि तु ।
तस्थौ साभरणो देवो हर्षदः सर्वदेहिनाम् ॥ ४८८
धनदश्चापि दिव्यानि हैमान्याभरणानि च ।
जातरूपविचित्राणि प्रयतः समुपस्थितः ॥ ४८९
वायुर्वौ सुसुरभिः सुखसंपर्शनो विभुः ।
छत्रमिन्दुकरोदगारं सुसितं च शतक्रतुः ॥ ४९०
जग्राह मुदितः स्नग्नी बाहुभिर्बहुभूषणौ ।
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४९१
वादयन्तोऽति मधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ।
मूर्ताश्च ऋतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्च वै ॥ ४९२
चपलाश्च गणास्तस्थुलोलयन्तो हिमाचलम्।
उत्तिष्ठन् क्रमशश्चात्र विश्वभुग्नेत्रहा ॥ ४९३
चकारौद्वाहिकं कृत्यं पत्न्या सह यथोचितम्।
दत्तार्थो गिरिराजेन सुरवृन्दैर्विनोदितः ॥ ४९४
अवसत् तां क्षपां तत्र पत्न्या सह पुरान्तकः ।
ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि ॥ ४९५
स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुद्धो विबुधाधिपः ।
आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते चोमया सह ।
जगाम मन्दरगिरि वायुवेगेन शृङ्गिणा ॥ ४९६

उन्होंने विधानानुसार मन्त्रोचारणपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न किया । तदुपरान्त शिवजीने अग्निको साक्षी बनाकर गिरिजाका अटूट पाणिग्रहण किया । उस विवाहोत्सवमें पर्वतोंके राजा हिमाचल दाता, देवाधिदेव ब्रह्मा होता, साक्षात् शिव वर तथा विश्वकी अरणिभूता पार्वती कन्या थीं । उस समय प्रधान देवता एवं असुर तथा चराचर सभी प्राणी (कार्याधिक्यके कारण) नियमको छोड़कर व्यग्र हो उठे । सभी प्रकारके मनोरम भावोंसे परिपूर्ण पृथ्वीदेवी आकुल होकर सभी प्रकारके नूतन अन्नों, रसों और औषधियोंको उड़े़लने लगीं । सभी प्राणियोंको हर्ष प्रदान करनेवाले वरुणदेव स्वयं आभूषणोंसे विभूषित हो सभी प्रकारके रत्नों तथा अनेकविध रत्नोंसे निर्मित पुण्यमय एवं पावन आभरणोंको लेकर वहाँ उपस्थित थे ॥ ४७९—४८८ ॥

उस समय वहाँ कुबेर भी विनम्रभावसे विभिन्न प्रकारके स्वर्णमय दिव्य आभूषणोंको लिये हुए उपस्थित थे । स्पर्शसे सुख उत्पन्न करनेवाली परम सुगन्धित वायु चारों ओर बहने लगी । मालाधारी इन्द्र हर्षपूर्वक अनेकों आभूषणोंसे विभूषित अपनी भुजाओंद्वारा चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिमान् अत्यन्त उज्ज्वल छत्र लिये हुए थे । प्रधान-प्रधान गन्धर्व गीत गा रहे थे और अप्सराएँ नाच रही थीं । कुछ अन्य गन्धर्व और किंनर बाजा बजाते हुए अत्यन्त मधुर स्वरसे राग अलाप रहे थे । वहाँ छहों ऋष्टुएँ भी शरीर धारणकर नाचती और गाती थीं । चञ्चल प्रकृतिवाले प्रमथगण हिमाचलको विचलित करते हुए उपस्थित थे । इसी समय विश्वके पालनकर्ता एवं भगदेवताके नेत्रोंके विनाशक भगवान् शिव उठे और अपनी पत्नी पार्वतीके साथ क्रमशः सारा वैवाहिक कार्य यथोचितरूपसे सम्पन्न किये । उस समय पर्वतराज हिमाचलने उन्हें अर्थं प्रदान किया और सुरसमूह विनोदकी बातें करने लगे । तत्पश्चात् त्रिपुरके विनाशक भगवान् शङ्करने उस रातमें पत्नीके साथ वहाँ निवास किया । प्रातःकाल गन्धर्वोंके गीत, अप्सराओंके नृत्य तथा देवों एवं दैत्योंके स्तुतियोंके माध्यमसे जगाये गये देवेश्वर शङ्कर पर्वतराज हिमाचलसे आज्ञा लेकर उमाके साथ वायुके समान वेगशाली नन्दीश्वरपर सवार हो मन्दराचलको चले गये ॥ ४९९—४९६ ॥

ततो गते भगवति नीललोहिते
सहोमया रतिमलभन्न भूधरः ।
सबान्धवो भवति च कस्य नो मनो
विह्वलं च जगति हि कन्यकापितुः ॥ ४९७
ज्वलन्मणिस्फटिकहाटकोत्कठं
स्फुटद्युति स्फटिकगोपुरं पुरम् ।
हरो गिरौ चिरमनुकलितं तदा
विसर्जितामरनिवहोऽविशत् स्वकम् ॥ ४९८
तदोमासहितो देवो विजहार भगाक्षिहा ।
पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च ॥ ४९९
सुरक्तहृदयो देव्या मकराङ्कपुरःसरः ।
ततो बहुतिथे काले सुतकामा गिरेः सुता ॥ ५००
सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः ।
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमध्यज्य शैलजा ॥ ५०१
चूर्णेरुद्धर्तयामास मलिनान्तरितां तनुम् ।
तदुद्धर्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् ॥ ५०२
पुत्रकं क्रीडती देवी तं चाक्षिपयदम्भसि ।
जाह्वव्यास्तु शिवासख्यास्ततः सोऽभूद् बृहद्वपुः ॥ ५०३
कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा ।
पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्यूचे च जाह्वी ॥ ५०४
गाङ्गेय इति देवैस्तु पूजितोऽभूद्वाजाननः ।
विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः ॥ ५०५
पुनः सा क्रीडनं चक्रे पुत्रार्थं वरवर्णिनी ।
मनोऽमङ्कुरं रुद्धमशोकस्य शुभानना ॥ ५०६
वर्धयामास तं चापि कृतसंस्कारमङ्गला ।
बृहस्पतिमुखैर्विप्रैर्दिवस्पतिपुरोगमैः ॥ ५०७
ततो देवैश्च मुनिभिः प्रोक्ता देवी त्विदं वचः ।
भवानि भवती भव्या सम्भूता लोकभूतये ॥ ५०८
प्रायः सुतफलो लोकः पुत्रपौत्रैश्च लभ्यते ।
अपुत्रा च प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते दैवहेतुतः ॥ ५०९

तदनन्तर नीललोहित भगवान् शङ्करके उमासहित चले जानेपर भाई-बन्धुओंसहित हिमाचलका मन खिन्न हो गया; क्योंकि जगत्में भला ऐसा कौन कन्याका पिता होगा, जिसका मन उसकी विदाईके समय विह्वल न हो जाता हो? उधर मन्दराचलपर शिवजीका नगर बहुत पहलेसे ही विरचित था। वह चमकती हुई मणियों, स्फटिक-शिलाओं और स्वर्णसे निर्मित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर लग रहा था, उसकी कान्ति फूटी पड़ती थी और उसमें स्फटिकके फाटक लगे हुए थे। वहाँ पहुँचकर शिवजी देवसमूहको विदा कर अपने नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ ४९७-४९८ ॥

वहाँ भग-नेत्रहारी भगवान् शङ्कर उमासहित नगरके रमणीय उद्यानों तथा एकान्त वनोंमें विहार करने लगे। उस समय उनका हृदय कामके वशीभूत होनेके कारण पार्वतीदेवीके प्रति अतिशय अनुरक्त हो गया था। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके पश्चात् पार्वतीके मनमें पुत्रकी कामना उत्पन्न हुई, तब वे सखियोंके साथ कृत्रिम पुत्र बनाकर क्रीडा करने लगीं। किसी समय पार्वतीने सुगन्धित तेलसे शरीरको मलकर उसके मैल जमे हुए अङ्गोंमें चूर्णका उबटन भी लगाया। फिर उस लेपनको इकट्ठाकर उससे हाथीके-से मुखवाले पुरुषकी आकृतिका निर्माण किया। उसके साथ क्रीडा करनेके पश्चात् पार्वतीदेवीने उसे अपनी सखी जाह्वीके जलमें डलवा दिया। वहाँ वह विशाल शरीरवाला हो गया और अपने उस अत्यन्त विशाल शरीरसे सारे जगत्को आच्छादित कर लिया। तब पार्वतीदेवीने उसे 'पुत्र' ऐसा कहा और उधर जाह्वीने भी उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। अन्तमें वह गजानन 'गाङ्गेय' नामसे देवताओंद्वारा सम्मानित किया गया और ब्रह्माने उसे विनायकोंका आधिपत्य प्रदान किया। तत्पश्चात् सुन्दर मुखवाली सुन्दरी पार्वतीने पुनः पुत्रकी कामनासे अशोकके नये निकले हुए सुन्दर अङ्कुरको खिलौना बनाया और बृहस्पति आदि विप्रों तथा इन्द्र आदि देवताओंद्वारा अपना माङ्गलिक संस्कार कराकर उसे पाला-पोसा। यह देखकर देवताओं और मुनियोंने पार्वतीदेवीसे यह बात कही—'भवानि! आप तो परम सुन्दर रूपवाली हो और लोकके कल्याणके लिये प्रकट हुई हो। प्रायः संसार पुत्ररूप फलका ही प्रेमी है और वह फल पुत्र-पौत्रोंद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जगत्में जो प्रजाएँ पुत्रहीन हैं, वे प्रायः प्रारब्धके कारण ही वैसा दीख पड़ती हैं।

अथुना दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमहसि ।
फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः ।
इत्युक्ता हर्षपूर्णाङ्गी प्रोवाचोमा शुभां गिरम् ॥ ५१०

देव्युच्चाच

एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद् बुधः ।
बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य वसेत् संवत्सरं दिवि ॥ ५११
दशकूपसमा वापी दशवापीसमो हृदः ।
दशहृदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो ह्रुमः ।
एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी ॥ ५१२
इत्युक्तास्तु ततो विप्रा बृहस्पतिपुरोगमा ।
जगमुः स्वमन्दिराण्येव भवानीं बन्ध्य सादरम् ॥ ५१३
गतेषु तेषु देवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम् ।
पाणिनाऽऽलम्ब्य वामेन शनैः प्रावेशयच्छुभाम् ॥ ५१४
चित्तप्रसादजननं प्रासादमनुगोपुरम् ।
लम्बमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम् ॥ ५१५
निधौतकलधौतं च क्रीडागृहमनोरमम् ।
प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिकुलकूजितम् ॥ ५१६
किन्नरोदीतसङ्गीतगृहान्तरितभित्तिकम् ।
सुगच्छिधूपसङ्घातमनःप्रार्थ्यमलक्षितम् ॥ ५१७
क्रीडन्मयूरनारीभिर्वृतं वै ततवादिभिः ।
हंससंघातसङ्घुष्टं स्फाटिकस्तम्भवेदिकम् ॥ ५१८
अनारतमतिप्रीत्या बहुशः किन्नराकुलम् ।
शुकैर्यत्राभिहन्यन्ते पद्मागविनिर्मिताः ॥ ५१९
भित्तयो दाढिमध्नान्त्या प्रतिबिम्बितमौक्तिकाः ।
तत्राक्षक्रीडया देवी विहर्तुमुपचक्रमे ॥ ५२०
स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडने यत्र धिष्ठितौ ।
वपुःसहायतां प्रासौ विनोदरसनिर्वृत्तौ ॥ ५२१
एवं प्रकीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा ।
प्रादुर्भवन्महाशब्दस्तदगृहोदरगोचरः ॥ ५२२

देवि ! इस समय आप शास्त्रद्वारा प्रदर्शित मार्गकी मर्यादा निर्धारित करें। इन कल्पित तरुपुत्रकोंसे क्या लाभ उपलब्ध होगा ?' ऐसा कही जानेपर उमाके अङ्ग हर्षसे पूर्ण हो गये, तब वे सुन्दर वाणीमें बोलीं ॥ ४९९—५१० ॥

पार्वतीदेवीने कहा—‘विप्रवरो ! इस प्रकारके जलरहित प्रदेशमें जो बुद्धिमान् पुरुष कुओँ बनवाता है, वह कुएँके जलके एक-एक बूँदके बराबर वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। इस प्रकार दस कुएँके समान एक बावली, दस बावलीके सदृश एक सरोवर, दस सरोवरकी तुलनामें एक पुत्र और दस पुत्रके समान एक वृक्ष माना गया है। यही लोकोंका कल्याण करनेवाली मर्यादा है, जिसे मैं निर्धारित कर रही हूँ। इस प्रकार कहे जानेपर बृहस्पति आदि विप्रगण भवानीको आदरपूर्वक नमस्कार कर अपने-अपने निवास-स्थानको चले गये। उन सबके चले जानेपर देवाधिदेव शङ्करने भी सुन्दरी पार्वतीको बायें हाथका सहारा देकर धीरे-धीरे अपने भवनमें प्रवेश कराया। चित्तको प्रसन्न करनेवाला वह भवन फाटकके निकट ही था। उसमें मोतियोंकी लम्बी-लम्बी झालरें लटक रही थीं, वेदिकाएँ पुष्पहारोंसे सुसज्जित थीं, तपाये हुए स्वर्णके मनोरम क्रीडागृह बने हुए थे, बिखरे हुए पुष्पोंकी सुगन्धसे उन्मत्त हुए भँवरे गुंजार कर रहे थे, किन्नरोंद्वारा गाये गये संगीतसे गृहकी भीतरी दीवाल प्रतिध्वनित हो रही थी, मनको अच्छी लगनेवाली सुगच्छित धूपोंकी भीनी सुगन्ध फैल रही थी। वह नाचती हुई मयूरियों तथा तारवाले बाजे बजानेवाले वादकोंसे व्यास था। वहाँ हंस-समूहोंकी ध्वनि गूँज रही थी, स्फटिकके खम्भोंसे युक्त वेदिकाएँ सुशोभित थीं, अधिकांश किन्नर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर उपस्थित रहते थे। उसमें पद्मराग मणिकी दीवालें बनी हुई थीं, जिनपर मोतियोंकी झलक पड़ रही थी, इस कारण अनारके भ्रमसे शुकसमूह उनपर अपने ठोरोंसे आघात कर रहे थे। ऐसे भवनमें पार्वतीदेवी द्यूतक्रीडाके माध्यमसे विहार करने लगीं। निर्मल इन्द्रनील मणिके बने हुए उस क्रीडा-स्थानपर क्रीडा करते हुए शिव-पार्वती विनोदके रसमें निमग्न हो परस्पर एक-दूसरेके शरीरकी सहायताको प्राप्त हुए ॥ ५११—५२१ ॥

इस प्रकार वहाँ पार्वती और शंकरके क्रीडा करते समय उस गृहके भीतर महान् भयंकर शब्द प्रादुर्भूत हुआ।

तच्छ्रुत्वा कौतुकाद् देवी किमेतदिति शङ्करम् ।
 पप्रच्छ तं शुभतनुर्हं विस्मयपूर्वकम् ॥ ५२३
 उवाच देवीं नैतत् ते दृष्टपूर्वं सुविस्मिते ।
 एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन् मत्प्रियाः सदा ॥ ५२४
 तपसा ब्रह्मचर्येण नियमैः क्षेत्रसेवनैः ।
 यैरहं तोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः ॥ ५२५
 मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने ।
 कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः ॥ ५२६
 कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम् ।
 सामरस्यास्य जगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥ ५२७
 ब्रह्मविष्णवन्द्रगन्धवैः सकिन्नरमहोरगैः ।
 विवर्जितोऽप्यहं नित्यं नैभिर्विरहितो रमे ॥ ५२८
 हृद्या मे चारुसर्वाङ्गास्त एते क्रीडिता गिरौ ।
 इत्युक्ता तु ततो देवी त्यक्त्वा तद्विस्मयाकुला ॥ ५२९
 गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते विस्मितानना ।
 यावन्तस्ते कृशा दीर्घा हृस्वाः स्थूला महोदराः ॥ ५३०

व्याघ्रे भवदनाः केचित् केचिन्मेषाजरूपिणः ।
 अनेकप्राणिरूपाश्च ज्वालास्याः कृष्णपिङ्गलाः ॥ ५३१

सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिङ्गलासटाः ।
 नानाविहङ्गवदना नानाविधमृगाननाः ॥ ५३२

कौशेयचर्मवसना नग्नाश्रान्ये विरूपिणः ।
 गोकर्णा गजकर्णश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः ॥ ५३३

बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः ।
 अनेककुसुमापीडा नानाव्यालविभूषणाः ॥ ५३४

वृत्ताननायुधधरा नानाकवचभूषणाः ।
 विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः ॥ ५३५

उसे सुनकर सुन्दर शरीरवाली पार्वतीदेवीने कुतूहलवश आश्चर्यपूर्वक भगवान् शंकरसे पूछा—‘यह क्या हो रहा है?’ तब शिवजीने पार्वतीसे कहा—‘सुविस्मिते! तुमने पहले इसे नहीं देखा है। मेरे परम प्रिय ये गणेश्वर इस पर्वतपर सदा क्रीडा करते रहते हैं। शुभानने! जो लोग पहले तपस्या, ब्रह्मचर्य, नियमपालन और तीर्थसेवनद्वारा मुझे संतुष्ट कर चुके हैं, वे ही ये श्रेष्ठ पुरुष मेरे पास प्राप्त हुए हैं। ये मुझे परम प्रिय हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, महान् उत्साहसे सम्पन्न तथा अतिशय सौन्दर्य एवं गुणोंसे युक्त हैं। इन बलशालियोंके कार्योंसे तो मुझे भी परम विस्मय हो जाता है। ये देवताओंसहित इस जगत्की सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं। अतः ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, गन्धर्व, किंनर और प्रधान-प्रधान नागोंसे नित्य विलग रहनेपर भी मुझे कष्ट नहीं होता, परंतु इनसे वियुक्त होनेपर मुझे कभी आनन्द नहीं प्राप्त होता। इनके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं और ये सभी मुझे परम प्रिय हैं। वे ही ये सब इस पर्वतपर क्रीडा कर रहे हैं।’ इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने विस्मयसे व्याकुल हो द्यूतक्रीडा छोड़ दी और वे भौंचककी-सी हो झरोखेमें बैठकर उनकी ओर देखने लगीं ॥ ५२२—५२९ ९ ॥

वे जितने थे, उनमें कुछ दुबले-पतले, लम्बे, छोटे और विशाल पेटवाले थे। किन्हींके मुख व्याघ्र और हाथीके समान थे तो कोई भेड़ और बकरेके-से रूपवाले थे। उनके रूप अनेकों प्राणियोंके सदृश थे। किन्हींके मुखसे ज्वाला निकल रही थी तो कोई काले एवं पीले रंगके थे। किन्हींके मुख सौम्य, किन्हींके भयंकर और किन्हींके मुसकानयुक्त थे। किन्हींके मस्तकपर काले एवं पीले रंगकी जटा बँधी थी। किन्हींके मुख नाना प्रकारके पक्षियोंके-से तथा किन्हींके मुख विभिन्न प्रकारके पशुओं-सदृश थे। किन्हींके शरीरपर रेशमी वस्त्र थे तो कोई वस्त्रके स्थानपर चमड़ा ही लपेटे हुए थे और कुछ नंगे ही थे। कुछ अत्यन्त कुरुप थे। किन्हींके कान गौ-सरीखे थे तो किन्हींके कान हाथी-जैसे थे। किन्हींके बहुत-से मुख, नेत्र और पेट थे तो किन्हींके बहुत-से पैर और भुजाएँ थीं। उनके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र शोभा पा रहे थे। किन्हींके मस्तकोंपर नाना प्रकारके पुष्प बँधे हुए थे तो कोई अनेकविध सर्पोंके ही आभूषण धारण किये हुए थे। कोई गोल मुखवाले अख लिये हुए थे तो कोई विभिन्न प्रकारके कवचोंसे विभूषित थे। कुछ दिव्य रूपधारी थे और विचित्र वाहनोंपर आरूढ़ हो आकाशमें विचर रहे थे।

वीणावाद्यमुखोद्घुष्टा नानास्थानकनर्तकाः ।
गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम् ॥ ५३६
देव्युवाच

गणेशः कति संख्याताः किं नामाः किमात्मकाः ।
एकैकशो मम ब्रूहि धिष्ठिता ये पृथक् पृथक् ॥ ५३७

शङ्कर उवाच

कोटिसंख्या हृसंख्याता नानाविख्यातपौरुषाः ।
जगदापूरितं सर्वैरभिर्भीमैर्महाबलैः ॥ ५३८
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेशमसु ।
दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च ।
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः ॥ ५३९
ऊष्मपाः फेनपाश्वैव धूमपा मधुपायिनः ।
रक्तपाः सर्वभक्षाश्च वायुपा ह्यम्बुभोजनाः ॥ ५४०
गेयनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरविप्रियाः ।
न ह्येषां वै अनन्तत्वाद् गुणान् वक्तुं हि शक्यते ॥ ५४१

देव्युवाच

मार्गत्वगुत्तरासङ्गः शुद्धाङ्गो मुञ्जमेखली ।
वामस्थेन च शिक्येन चपलो रञ्जिताननः ॥ ५४२
मृगदंष्ट्रो ह्युत्पलानां स्त्रगदामो मधुराकृतिः ।
पाषाणशक्लोत्तानकांस्यतालप्रवर्तकः ॥ ५४३
असौ गणेश्वरो देवः किं नामा किंनरानुगः ।
य एष गणगीतेषु दत्तकणो मुहुर्मुहुः ॥ ५४४

शर्व उवाच

स एष वीरको देवि सदा मद्ददयप्रियः ।
नानाश्रव्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः ॥ ५४५

देव्युवाच

इदृशस्य सुतस्यास्ति ममोत्कण्ठा पुरान्तक ।
कदाहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायिनम् ॥ ५४६

कुछ मुखसे वीणा आदि बाजे बजा रहे थे और कुछ यत्र-
तत्र नाच रहे थे। इस प्रकार उन गणेश्वरोंको देखकर पार्वतीदेवी
शंकरजीसे बोलीं ॥ ५३०—५३६ ॥

देवीने पूछा—‘प्रभो! इन गणेश्वरोंकी संख्या कितनी
है? इनके क्या-क्या नाम हैं? इनके स्वभाव कैसे हैं?
ये जो पृथक्-पृथक् बैठे हैं, इनमेंसे मुझे एक-एकका
परिचय दीजिये ॥ ५३७ ॥

शंकरजी बोले—‘देवि! यों तो ये असंख्य हैं,
परंतु प्रधान-प्रधान गणेश्वरोंकी संख्या एक करोड़ है।
ये विभिन्न प्रकारके पुरुषार्थोंके लिये विख्यात हैं। इन
सभी महाबली भयंकर गणोंसे सारा जगत् परिपूर्ण है।
नाना प्रकारके आहार-विहारसे युक्त ये गणेश्वर हर्षपूर्वक
सिद्ध क्षेत्रों, गलियों, पुराने उद्यानों, घरों, दानवोंके
शरीरों, बालकों और पागलोंमें प्रवेश करते हैं। ये सभी
ऊष्मा, फेन, धूम, मधु, रक्त और वायुका पान करनेवाले
हैं। जल इनका भोजन है और ये सर्वभक्षी हैं। ये नाच-
गानके उपहारसे प्रसन्न होनेवाले और अनेकों प्रकारके
वाद्य-शब्दोंके प्रेमी हैं। अनन्त होनेके कारण इनके
गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५३८—५४१ ॥

देवीने पूछा—‘स्वामिन्! जो मृगचर्मका दुपट्टा लपेटे
हुए हैं, जिसके सभी अङ्ग शुद्ध हैं; जो मूँजकी मेखला
धारण किये हुए हैं, जिसके बायें कंधेपर झोली लटक
रही है, जो अत्यन्त चञ्चल और रँगे हुए मुखवाला है,
जिसकी दाढ़ सिंहके सदृश है, जो कमल-पुष्पोंकी माला
धारण किये हुए, सुन्दर आकृतिसे युक्त और पाषाण-
खण्डसे उत्तान रखे हुए काँसेके बाजेपर ताल लगा रहा है
तथा जिसके पीछे किन्नर लोग चल रहे हैं और जो अन्य
गणोंद्वारा गाये गये गीतोंपर बार-बार कान लगाये हुए हैं,
उस गणेश्वर देवका क्या नाम है? ॥ ५४२—५४४ ॥

शंकरजीने कहा—‘देवि! यही वीरक है, जो
सदा मेरे हृदयको प्रिय लगनेवाला है। यह नाना प्रकारके
आश्र्यजनक गुणोंका आश्रय तथा सभी गणेश्वरोंद्वारा
पूजित—सम्मानित है ॥ ५४५ ॥

देवीने पूछा—‘त्रिपुरनाशक भगवन्! मेरे मनमें
ऐसा ही पुत्र प्राप्त करनेकी प्रबल उत्कण्ठा है। मैं कब
ऐसे आनन्ददायक पुत्रको देखूँगी? ॥ ५४६ ॥

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेऽस्तु नयनानन्दहेतुकः ।
त्वया मात्रा कृतार्थस्तु वीरकोऽपि सुमध्यमे ॥ ५४७
इत्युक्ता प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुका ।
वीरकानयनायाशु दुहिता हिमभूभृतः ॥ ५४८
सावरुह्य त्वरायुक्ता प्रासादादम्बरस्पृशः ।
विजयोवाच गणपं गणमध्ये प्रवर्तिता ॥ ५४९
एहि वीरक चापल्यात् त्वया देवः प्रकोपितः ।
किमुत्तरं वदत्यर्थे नृत्यरङ्गे तु शैलजा ॥ ५५०
इत्युक्तस्त्यक्तपाषाणशक्लो मार्जिताननः ।
आहूतस्तु तयोद्भूतमूलप्रस्तावशंसकः ॥ ५५१
देव्याः समीपमागच्छद् विजयानुगतः शनैः ।
प्रासादशिखरात्कुल्लरक्ताम्बुजनिभद्युतिः ॥ ५५२
तं दृष्ट्वा प्रस्तुतानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा ।
गिरिजोवाच सस्नेहं गिरा मधुरवर्णया ॥ ५५३

उमोवाच

एह्येहि यातोऽसि मे पुत्रतां
देवदेवेन दत्तोऽधुना वीरक ।
इत्येवमङ्गे निधायाथ तं पर्यचुम्बत्
कपोले शनैः कलवादिनम् ॥ ५५४
मूर्ध्युपाघाय सम्मार्ज्य गात्राणि
ते भूषयामास दिव्यैः स्वजैर्भूषणैः ।
किङ्किणीमेखलानूपौ-
माणिक्यकेयूरहारोरुमूलगुणैः ॥ ५५५
कोमलैः पल्लवैश्वित्रितैश्वारुभि-
र्दिव्यमन्त्रोद्भवैस्तस्य शुभ्रैस्ततो
भूरिभिश्वाकरोन्मिश्र-
सिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम् ॥ ५५६
एवमादाय चोवाच कृत्वा स्त्रजं
मूर्धिन गोरोचनापत्रभङ्गोज्ज्वलैः ॥ ५५७
गच्छ गच्छाधुना क्रीड सार्धं गणै-
रप्रमन्तो वस श्वभ्रवर्जी शनै-

शिवजीने कहा—सुमध्यमे ! नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला यह वीरक ही तुम्हारा पुत्र हो और वीरक भी तुम-जैसी माताको पाकर कृतार्थ हो जाय । इस प्रकार कही जानेपर पर्वतराजकी कन्या पार्वतीने हर्षसे उत्सुक होकर तुरंत ही वीरकको बुला लानेके लिये विजयाको भेजा । तब विजया शीघ्र ही उस गगनचुम्बी अट्टालिकासे नीचे उतरकर गणोंके मध्यमें पहुँची और गणेश्वर वीरकसे बोली—‘वीरक ! यहाँ आओ, तुम्हारी चञ्चलतासे भगवान् शंकर क्रुद्ध हो गये हैं । तुम्हरे इस नाच-रंगके विषयमें माता पार्वती भी देखो क्या कहती हैं ।’ विजयाके ऐसा कहनेपर वीरकने पाषाणखण्डको फेंक दिया और वह अपने मुखको धोकर माताद्वारा बुलाये जानेके मूल कारणके विषयमें सोचता हुआ विजयाके पीछे-पीछे पार्वतीदेवीके निकट आया । खिले हुए लाल कमलपुष्पकी-सी कान्तिवाली पार्वतीने अट्टालिकाके शिखरपरसे जब वीरकको आते हुए देखा तो उनके स्तनोंसे अधिक मात्रामें स्वादिष्ट दूध टपकने लगा । तब गिरिजा स्नेहपूर्वक मधुर वाणीमें वीरकसे बोलीं ॥ ५४७-५५३ ॥

उमाने कहा—वीरक ! आओ, यहाँ आओ, देवाधिदेवने तुम्हें मुझे प्रदान किया है । अब तुम मेरे पुत्रस्वरूप हो गये हो । ऐसा कहकर माता पार्वती वीरकको अपनी गोदमें बैठाकर उस मधुरभाषी पुत्रके कपोलोंका चुम्बन करने लगीं । उन्होंने उसका मस्तक सूँघकर शरीरके सभी अङ्गोंको नहलाकर स्वच्छ किया । फिर किंकिणी, कटिसूत्र, नूपुर, मणिनिर्मित केयूर, हार और ऊरुमूलगुण (कच्छी) आदि दिव्य आभूषणोंसे उसे स्वयं विभूषित किया । तत्पश्चात् अत्यन्त सुन्दर विचित्र रंगके कोमल पल्लवों, दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित अनेकों माङ्गलिक सूक्लों तथा अनेक धातुओंके चूर्णोंसे मिश्रित सफेद सरसोंसे उसके अङ्गोंकी रक्षाका विधान किया । इस प्रकार उसे गोदमें लेकर मुखपर गोरोचनसे उज्ज्वल पत्रभंगीकी रचना करके उसके मस्तकपर माला डालकर कहा—‘बेटा ! अब जाओ और अपने साथी गणोंके साथ सावधान होकर खेलो । उनके साथ कपटरहित होकर निवास करो ।

व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुम-
 दन्तिभिर्भिन्नसाराः परे सङ्ग्निः ॥ ५५८
 जाह्नवीयं जलं क्षुब्धतोयाकुलं
 कूलं मा विशेथा बहुव्याघ्रदुषे वने ।
 वत्सासंख्येषु दुर्गा गणेशोष्वेतस्मिन्
 वीरके पुत्रभावोपतुष्टान्तःकरणा तिष्ठतु ॥ ५५९
 स्वस्य पितृजनप्रार्थितं
 भव्यमायातिभाविन्यसौ भव्यता ।
 सोऽपि निर्वर्त्य सर्वान् गणान् सम्पय-
 माह बालत्वलीलारसाविष्ठधीः ॥ ५६०
 एष मात्रा स्वयं मे कृतभूषणो-
 ऽत्र एष पटः पटलैर्बिन्दुभिः ।
 सिन्दुवारस्य पुष्पैरियं मालती-
 मिश्रिता मालिका मे शिरस्याहिता ॥ ५६१
 कोऽयमातोद्यधारी गणस्तस्य
 दास्यामि हस्तादिदं क्रीडनम् ।
 दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तर-
 मुत्तरात्पूर्वमध्येत्य सख्या युता प्रेक्षती ॥ ५६२
 तं गवाक्षान्तराद्वीरकं शैलपुत्री बहिः
 क्रीडनं यज्जगन्मातुरप्येष चित्तभ्रमः ।
 पुत्रलुब्धो जनस्तत्र को मोहमायाति
 न स्वल्पचेता जडो मांसविण्मूत्रसङ्घातदेहः ॥ ५६३
 द्रष्टुमध्यन्तरं नाकवासेश्वरै-
 रिन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम् ।
 वाहनात्यावरोहा गणास्तैर्युतो लोक-
 पालास्त्रमूर्तौ ह्ययं खड्गो विखडगकरः ॥ ५६४
 निर्ममः कृतान्तः कस्य केनाहतो ब्रूत
 मौनेभवन्तोऽस्त्रदण्डेन किं दुःस्पृहाः ।
 भीममूर्त्यानेनास्ति कृत्यं गिरौ
 य एषोऽस्त्रज्ञेन किं वध्यते ॥ ५६५
 मा वृथा लोकपालानुगच्छित्तता
 एवमेवैतदित्यूचुरस्मै तदा देवताः ।
 देवदेवानुगं वीरकं लक्षणा प्राह
 देवी वनं पर्वतं निर्दिशाण्यग्निदेव्यान्यथो ॥ ५६६

तुम्हारे दूसरे साथी व्यालसमूहोंसे व्याकुल और पर्वतशिखर, वृक्ष और गजराजोंसे परास्त हो रहे हैं। गङ्गाका जल अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है, उसने तटको जर्जर कर दिया है, अतः वहाँ तथा बहुत-से दुष्ट व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें मत प्रवेश करना। इन पुत्ररूप असंख्य गणेश्वरोंमें इस वीरकपर दुर्गादेवी सदा पुत्रभावसे संतुष्ट अन्तःकरणवाली बनी रहें। अपने पितृजनोंद्वारा प्रार्थित भावी अवश्य घटित होती है, अतः यह भव्यता तुम्हें भविष्यमें प्राप्त होगी'॥ ५५४—५५९३॥

तदनन्तर बालक्रीडाके रसमें निमग्नबुद्धि वीरक भी वहाँसे लौटकर सभी गणोंसे हँसते हुए बोला—'मित्रो ! देखो, स्वयं माताने मेरा यह शृङ्खार किया है। उन्होंने ही यह गुलाबी बुंदियोंसे युक्त वस्त्र पहनाया है और मालती-पुष्पोंसे मिली हुई यह सिन्दुवार-पुष्पोंकी माला मेरे सिरपर रखी है। यह आतोद्य नामक बाजा धारण करनेवाला कौन गण है ? मैं उसे अपने हाथसे वह खिलौना ढूँगा।' उधर सखीके साथ पार्वती कभी दक्षिणसे पश्चिम, कभी पश्चिमसे उत्तर और कभी उत्तरसे पूर्वकी ओर धूम-धूमकर गवाक्ष मार्गसे बाहर खेलते हुए वीरककी ओर निहार रही थीं। जब जगन्माता पार्वतीके चित्तमें (पुत्रको खेलते हुए देखकर) इस प्रकार व्यामोह उत्पन्न हो जाता है, तब भला स्वल्पबुद्धि, मूर्ख, मांस, विष्णा और मूत्रकी राशिसे भरे हुए शरीरको धारण करनेवाला ऐसा कौन पुत्रप्रेमी जन होगा जिसे मोहन प्राप्त हो। इसी बीच देवगण भगवान् चन्द्रशेखरका दर्शन करनेके लिये कक्षके भीतर प्रविष्ट हुए और प्रमथगण अपने वाहनोंपर आरूढ़ हो गये। उनसे धिरे हुए वीरकने लोकपाल यमके अख खड़गको म्यानसे खींचकर कहा— 'तुमलोग बतलाओ, निर्दय कृतान्त किस कारण किसका वध करना चाहता है ? तुमलोग मौन क्यों हो ? अखदण्डसे क्या अलभ्य है ? भयंकर आकृतिवाले मेरे वर्तमान रहते इस पर्वतपर ऐसा कौन-सा कार्य है जो अखज्ञद्वारा सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ५६०—५६५३॥

वीरकके इस प्रकार कहनेपर देवताओंने उनसे कहा—‘वीरक ! तुम्हें इस प्रकार लोकपालोंके चित्तका अनुगमन नहीं करना चाहिये ।’ फिर लक्षणादेवी देवाधिदेव महादेवके अनचर वीरकसे बोलीं—‘तमलोग प्राणियोंकी

भूतपा निर्झराभ्योनिपातेषु निमज्जत
 पुष्पजालावनद्वेषु धामस्वपि शेत प्रोत्तुङ्ग ।
 नानाद्विकुञ्जेष्वनुगञ्जन्तु हेमा-
 रुतास्फोटसंक्षेपणात्कामतः ॥ ५६७
 काञ्छनोत्तुङ्गशृङ्गावरोहक्षितौ हेमरेणू-
 त्करासङ्घट्युतिं खेचराणां वनाधायिनि ।
 रम्ये बहुरूपसम्पत्प्रकरे गणान्वासितं
 मन्दरकदरे सुन्दरमन्दारपुष्पप्रवालाम्बुजे ॥ ५६८
 सिद्धनारीभिरापीतरूपामृतं विस्तृतै-
 नेंत्रपात्रैरुन्मेषिभिर्वीरकं ।
 शैलपुत्री निमेषान्तरादस्मर-
 त्पुत्रगृष्णी विनोदार्थिनी ॥ ५६९
 सोऽपि तादृक्षणावासपुण्योदयो
 योऽपि जन्मान्तरस्यात्मजत्वं गतः
 क्रीडतस्तस्य तृसिः कथं जायते
 योऽपि भाविजगद्वेधसा तेजसः कल्पितः
 प्रतिक्षणं दिव्यगीतक्षणो
 नृत्यलोलो गणेशः प्रणतः ॥ ५७०
 क्षणं सिंहनादाकुले गण्डशैले
 सृजद्रलजाले बृहत्सालताले ।
 क्षणं फुल्लनानातमालालिकाले
 क्षणं वृक्षमूले विलोलो मराले ॥ ५७१
 क्षणे स्वल्पपङ्के जले पङ्कजाङ्के
 क्षणं मातुरङ्के शुभे निष्कलङ्के ।
 परिक्रीडते बाललीलाविहारी
 गणेशाधिपो देवतानन्दकारी
 निकुञ्जेषु विद्याधरैर्गीतशीलः
 पिनाकीव लीलाविलासैः सलीलः ॥ ५७२
 प्रकाशय भुवनाभोगी ततो दिनकरे गते ।
 देशान्तरं तदा पश्चाद् दूरमस्तावनीधरम् ॥ ५७३
 उदयास्ते पुरो भावी यो हि चास्तेऽवनीधरः ।
 मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये परिचिन्त्यताम् ॥ ५७४

रक्षा करते हुए वन, पर्वत, निर्झर और अग्नियुक्त स्थानोंपर विचरण करते हुए झरनोंके जलप्रवाहमें मज्जन करो, पुष्पोंसे सुसज्जित भवनोंमें शयन करो और ऊँचे-ऊँचे विभिन्न पर्वतोंके कुँओंमें स्वेच्छानुसार झंझावातके अव्यक्त शब्दका अनुकरण करते हुए गर्जना करो। विनोदकी अभिलाषावाली पुत्रप्रेमी पार्वती ऊँचे स्वर्णमय शिखरोंकी ढालू भूमिसे युक्त, आकाशचारियोंकी रमणीय वनस्थलीरूप, अनेकों प्रकारकी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण तथा सुन्दर मन्दारपुष्प, प्रवाल और कमल-पुष्पोंसे सुशोभित मन्दराचलके खोहोंमें खेलते वीरकको जिसकी अङ्गकान्ति सुवर्णकी रेणु-सरीखी थी, सिद्धोंकी स्त्रियाँ जिसके रूपामृतका पान कर रही थीं और जो गणोंके साथ विराजमान था, क्षण-क्षणपर निमेषरहित विस्फारित नेत्रोंसे देखती हुई स्मरण करती रहती थीं। वीरकका भी उस समय जन्मान्तरका पुण्य उदय हो गया था, जिससे वह पार्वतीका पुत्र हो गया। ऐसी दशामें उसे खेलसे तृप्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? वह जगत्कर्ता ब्रह्माद्वारा तेजके भावी अंशसे कल्पित किया गया था। वह प्रतिक्षण दिव्य गीतोंको सुनता था और स्वयं भी चञ्चलतापूर्वक नृत्य करता था। गणेश्वर उसके सामने नतमस्तक रहते थे। वह चञ्चलतापूर्वक किसी क्षण सिंहनादसे व्यास, रत्नसमूहोंकी खानवाले तथा बड़े-बड़े साल और ताड़के वृक्षोंसे सुशोभित पर्वत-शिखरपर, किसी क्षण खिले हुए बहुत-से तमाल वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण काले दीखनेवाले बनोंमें, किसी क्षण राजहंसपर चढ़कर, किसी क्षण कमलसे भरे हुए थोड़े कीचड़ और जलवाले सरोवरमें तथा किसी क्षण माताकी निष्कलंक सुन्दर गोदमें बैठकर क्रीडा करता था। इस प्रकार देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाला एवं गणेश्वरोंका भी अधिष्ठित वह बाललीलाविहारी वीरक निकुञ्जोंमें विद्याधरोंके साथ गान करता और शंकरजीकी तरह लीलाविलाससे युक्त हो क्रीडा करता था ॥ ५६६—५७२ ॥

तदनन्तर भगवान् सूर्य सारे भुवनोंको प्रकाशित करनेके पश्चात् सायंकाल अस्ताचलकी ओर प्रस्थित हुए। उदयाचल और अस्ताचल—ये दोनों पर्वत पूर्वकालकी निश्चित योजनाके अनुसार स्थित हैं। इनमें सूर्यकी अस्ताचलके साथ सुदृढ़ मित्रता है—ऐसा विचारकर

नित्यमाराधितः श्रीमान् पृथुमूलः समुन्नतः ।
नाकरोत् सेवितुं मेरुरुपहारं पतिष्ठतः ॥ ५७५

जलेऽप्येषा व्यवस्थेति संशयेताखिलं बुधः ।
दिनान्तानुगतो भानुः स्वजनत्वमपूरयत् ॥ ५७६

संध्याबद्धाञ्जलिपुटा मुनयोऽभिमुखा रविम् ।
याचन्त्यागमनं शीघ्रं निवार्यात्मनि भाविताम् ॥ ५७७

व्यजृष्पदथ लोकेऽस्मिन् क्रमाद् वैभावरं तमः ।
कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः ॥ ५७८

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ।
शयनं शशिसङ्घातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५७९

नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ।
रत्नकिङ्गिणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥ ५८०

कमनीयचलत्तलोलवितानाच्छादिताम्बरम् ।
मन्दिरे मन्दसञ्चारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८१

तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ।
शशिमौलिसितज्योत्त्वाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८२

गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ।
विभावर्या च सम्पृक्ता बभूवातितमोमयी ।
तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ५८३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भवमें एक सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५४ ॥

नित्य सूर्यद्वारा आराधित, शोभाशाली, स्थूल मूल भागवाले एवं समुन्नत मेरुने गिरते हुए सूर्यकी सेवा करनेके लिये कोई उपहार नहीं समर्पित किया । जलमें भी यही व्यवस्था है—इन सभी विषयोंपर बुद्धिमान् पुरुष संशय करेंगे । दिनके अवसानका अनुगमन करनेवाले सूर्यने अपनत्वकी पूर्ति की । संध्याके समय हाथ जोड़े हुए मुनिगण सूर्यके सम्मुख उपस्थित हो आत्मामें उत्पन्न हुई (बिछोहकी) भावनाको रोककर पुनः शीघ्र ही आगमनकी याचना कर रहे हैं । इस प्रकार सूर्यके अस्त हो जानेपर सारे जगत्‌में रात्रिका अन्धकार क्रमशः उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे कुटिल मनुष्यके हृदयमें पाप मनको दूषित करते हुए फैल जाता है ॥ ५७३—५७८ ॥

तत्पश्चात् जिसकी दीवालें प्रभापूर्ण सर्पोंकी मणिरूपी दीपकोंसे उद्भाषित हो रही थीं, ऐसे भवनमें शश्या बिछी थी, जिसपर चाँदनीकी राशि—जैसी उज्ज्वल चादर बिछी थी, नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिसे सुशोभित होनेके कारण वह इन्द्रधनुषकी विडम्बना कर रही थी, उसमें रत्ननिर्मित क्षुद्रघण्टिकाएँ तथा मोतियोंकी लम्बी-लम्बी झालों लटक रही थीं और उसका ऊपरी भाग हिलते हुए कमनीय वितानसे आच्छादित था, ऐसी शश्यापर मन्दगतिसे चलते हुए भगवान् शंकर पार्वतीके साथ विराजमान हुए । उस समय उनका कंधा पार्वतीकी भुजलतासे संयुक्त था । चन्द्रभूषणकी उज्ज्वल एवं निर्मल प्रभा सर्वत्र फैल रही थी । कजरारे नेत्रोंवाली गिरिजाकी भी छवि नीले कमल-दलके समान थी । रात्रिसे संयुक्त होनेके कारण वे विशेषरूपसे तमोमयी दीख रही थीं । उस समय भगवान् शंकर पार्वतीसे क्रीडाकेलिकी कलासे युक्त वचन बोले ॥ ५७९—५८३ ॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

**भगवान् शिवद्वारा पार्वतीके वर्णपर आक्षेप, पार्वतीका वीरकको अन्तःपुरका
रक्षक नियुक्त कर पुनः तपश्चर्याके लिये प्रस्थान**

शर्व उवाच

शरीरे मम तन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः ।
भुजङ्गीवासिता शुद्धा संश्लष्टा चन्दने तरौ ॥ १
चन्द्रातपेन सम्पृक्ता रुचिराम्बरया तथा ।
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना ।
उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ ३

देव्युवाच

स्वकृतेन जनः सर्वे जाड्येन परिभूयते ।
अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डन ॥ ४
तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् ।
तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदे पदे ॥ ५
नैवास्मि कुटिला शर्व विषमा नैव धूर्जटे ।
सविषस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तं दोषाकराश्रयः ॥ ६
नाहं पूष्णोऽपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि ।
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७
मूर्धिं शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ।
यत्स्वं मामाह कृष्णोति महाकालेति विश्रुतः ॥ ८
यास्याम्यहं परित्यक्त्वा चात्मानं तपसा गिरिम् ।
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया ॥ ९
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्षणाक्षरं भवः ।
उवाचाधिकसम्भ्रान्तिप्रणयोन्मिश्रया गिरा ॥ १०

शर्व उवाच

अगात्मजासि गिरिजे नाहं निन्दापरस्तव ।
त्वद्वक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम् ॥ ११

शिवजीने (विवाहके बाद एक बार पार्वतीसे) कहा—कृशाङ्गी पार्वति! कृष्ण कन्तिसे युक्त तुम मेरे श्वेत शरीरमें लिपटनेपर चन्दन-वृक्षमें लिपटी हुई सीधी काली नागिन-जैसी दीखती हो। तुम कृष्णपक्षमें चाँदनीके पीछे काले आकाश तथा अँधेरी रात्रिकी तरह मेरी दृष्टिको दूषित कर रही हो। भगवान् शंकरद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वती उनके गलेसे अलग हो गयी। क्रोधके कारण उनके नेत्र लाल हो गये। तब वे मुख और भाँहोंको टेढ़ी करके बोलीं ॥ १—३ ॥

देवीने कहा—चन्द्रभूषण! सभी लोग अपने द्वारा की गयी मूर्खताका दुष्परिणाम भोगते हैं। स्वार्थी मनुष्य जनसमाजमें अवश्य ही अपमानित होता है। दीर्घकालिक तपस्याद्वारा मैंने जिस मनोरथकी प्रार्थना की थी, उसके परिणामस्वरूप मुझे यह पग-पगपर तिरस्कार प्राप्त हो रहा है। जटाधारी शंकर! (आपके कथनानुसार) न तो मैं कुटिल हूँ और न विषम ही हूँ, अपितु आप स्वयं स्पष्टरूपसे विषयुक्त अर्थात् विषयी और दोषोंके समूह (अथवा चन्द्रमा)-के आश्रयरूपसे प्रसिद्ध हैं। मैं पूषाके दाँत और भगके नेत्र भी नहीं हूँ। बारह भागोंमें विभक्त भगवान् सूर्य मुझे भलीभाँति जानते हैं। अपने दोषोंद्वारा मुझपर आक्षेप करते हुए आप मेरे सिरमें पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं। आपने मुझे जो 'कृष्ण' नामसे सम्बोधित किया है सो आप भी तो 'महाकाल' नामसे विष्वात हैं। अतः अब मैं जीवनका मोह त्यागकर तपस्या करनेके लिये पर्वतपर जाऊँगी; क्योंकि आप-जैसे धूर्तसे अपमानित होकर जीवित रहनेसे मैं अपना कोई प्रयोजन नहीं समझ रही हूँ। तब पार्वतीके इस प्रकार क्रोधके कारण तीखे अक्षरोंसे युक्त वचनको सुनकर भगवान् शंकर अतिशय प्रेमसे सनी हुई वाणीमें इस प्रकार बोले ॥ ४—१० ॥

शंकरजीने कहा—गिरिजे! तुम पर्वतकी पुत्री हो, अतः मैं तुम्हारी निन्दा करनेपर उतारू नहीं हूँ। यह तो मैंने तुम्हरे ऊपर भक्तिपूर्ण बुद्धिसे तुम्हारे नामका कारण बतलाया है।

विकल्पः स्वस्थचित्तेऽपि गिरिजे नैव कल्पना ।
 यद्येवं कुपिता भीरु त्वं तवाहं न वै पुनः ॥ १२
 नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ।
 शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाञ्जलिः ॥ १३
 स्नेहेनावमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् ।
 तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल ॥ १४
 अनेकैश्चाटुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता ।
 कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता ॥ १५
 अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शङ्करपाणिना ।
 विपर्यस्तालका वेगद्यातुमैच्छत शैलजा ॥ १६
 तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ।
 सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः ॥ १७
 हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः ।
 तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥ १८
 काठिन्याङ्गस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता ।
 कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ।
 संक्रान्तिं सर्वमेवैतत् तन्वङ्गि हिमभूधरात् ॥ १९
 इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा ।
 कम्पकम्पितमूर्धा च प्रस्फुरद्वशनच्छदा ॥ २०

उमोवाच

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान् ।
 तवापि दुष्टसम्पर्कात्संक्रान्तं सर्वमेव हि ॥ २१
 व्यालेभ्योऽधिकजिह्वत्वं भस्मना स्नेहबन्धनम् ।
 हृत्कालुष्यं शशाङ्कात् दुर्बोधित्वं वृषादपि ॥ २२
 तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते ।
 श्वशानवासान्निर्भीस्त्वं नग्रत्वान्न तव त्रपा ॥ २३
 निर्धृणत्वं कपालित्वाद् दया ते विगता चिरम् ।
 इत्युक्त्वा मन्दिरात् तस्मान्निर्जग्गाम हिमाद्रिजा ॥ २४
 तस्यां व्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः ।
 कव मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविताः पुनः ॥ २५

गिरिजे ! मेरे स्वस्थ चित्तमें भी तुम्हें विकल्पकी कल्पना नहीं करनी चाहिये । भीरु ! यदि तुम इस प्रकार कुपित हो गयी हो तो अब मैं पुनः तुम्हारे साथ परिहासकी बात नहीं करूँगा । शुचिस्मिते ! तुम क्रोध छोड़ दो । देखो, मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़कर सिर झुकाये हूँ । जो प्रेमयुक्त अवमानना तथा व्याजनिन्दासे कुछ हो जाता है, उस व्यक्तिके साथ कभी भी परिहासकी बात नहीं करनी चाहिये । इस प्रकार महादेवजीने अनेकों चाटुकारिताभरी बातोंसे पार्वतीको समझाया, परंतु सतीका वह उत्कट क्रोध शान्त नहीं हुआ; क्योंकि उस व्यङ्गसे उनका मर्मस्थल विद्ध हो गया था । तत्पश्चात् पार्वती शंकरजीके हाथसे पकड़े हुए अपने वस्त्रको छुड़ाकर बाल बिखेरे हुए वेगपूर्वक वहाँसे चली जानेकी चेष्टा करने लगीं । क्रोधावेशसे जानेके लिये उद्यत हुई पार्वतीसे त्रिपुरारिने पुनः कहा— ‘तुम सचमुच ही सभी अवयवोंद्वारा अपने पिताके सदृश उनकी कन्या हो । जैसे हिमाचलके मेघसमूहसे व्यास ऊँचे शिखरोंके कारण आकाश दुर्गम्य हो जाता है, उसी तरह तुम्हारा हृदय भी दुःखगाह्य हृदयोंसे भी अत्यन्त कठोर है । तुम्हारे सभी चिह्न बहुधा वनोंकी अपेक्षा कठिनतासे परिपूर्ण हैं । तुम्हारी चालमें पहाड़ी मार्गोंसे भी बढ़कर कुटिलता है । तुम्हारा सेवन बर्फसे भी अधिक कठिन है । सूक्ष्माङ्गी पार्वती ! ये सभी गुण तुम्हारे शरीरमें हिमाचलसे ही संक्रमित हुए हैं । शिवजीद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीका मस्तक क्रोधके कारण काँपने लगा और होंठ फड़कने लगे । तब वे पुनः शंकरजीसे बोलीं ॥ ११—२० ॥

उमाने कहा—भगवन् ! आप अन्यान्य सभी गुणीजनोंमें दोष लगाकर उनकी निन्दा मत करें; क्योंकि आपमें भी तो सभी गुण दुष्टोंके संसर्गसे ही प्रविष्ट हुए हैं । आपमें सर्पोंके सम्पर्कसे अधिक टेढ़ापन, भस्मसे प्रेमहीनता, चन्द्रमासे हृदयकी कालिमा और वृषसे दुर्बोधता भर गयी है । आपके विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ ? वह तो केवल वचनका परिश्रम ही होगा । आप शमशानमें निवास करनेके कारण निर्भीक हो गये हैं । नग्न रहनेके कारण आपमें लज्जा रह नहीं गयी है । कपाली होनेके कारण आप निर्मम हो गये हैं और आपकी दया तो चिरकालसे नष्ट हो गयी है । ऐसा कहकर पार्वती उस भवनसे बाहर निकल गयीं । उनको इस प्रकार जाती देखकर देवेशके गण (प्रमथ) किलकारी मारकर रोते हुए उनके पीछे दौड़े और कहने लगे—‘माँ ! हमलोगोंको

विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम्।
प्रोवाच मातः किंत्वेतत्क यासि कुपितान्तरा ॥ २६

अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम्।
नो चेत् पतिष्ठे शिखरात् तपोनिष्ठे त्वयोऽन्धितः ॥ २७
उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना।
उवाच वीरकं माता शोकं पुत्रक मा कृथाः ॥ २८
शैलाग्रात् पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह।
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु ॥ २९
कृष्णोत्युक्त्वा हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता।
साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम् ॥ ३०
एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मध्यनन्तरम्।
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्धान्ववेक्षिणा ॥ ३१
यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम्।
दृष्ट्वा परां लियं चात्र वदेथा मम पुत्रक ॥ ३२
शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम्।
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह साम्प्रतम् ॥ ३३
मातुराजामृताहादप्लाविताङ्गो गतञ्चरः।
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम् ॥ ३४

इति श्रीमात्ये महापुराणे कुमारसम्भवे देव्यास्तपोऽनुगमनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें देवीका तपके लिये अनुगमन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५५ ॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

कुसुमामोदिनी और पार्वतीकी गुप्त मन्त्रणा, पार्वतीका तपस्यामें निरत होना, आडि दैत्यका पार्वतीरूपमें शंकरके पास जाना और मृत्युको प्राप्त होना तथा पार्वतीद्वारा वीरकको शाप

सूत उवाच

देवीं सापश्यदायान्तीं सखीं मातुर्विभूषिताम्।
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १
सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा।
क्र पुत्रि गच्छसीत्युच्चैरालिङ्गयोवाच देवता ॥ २

छोड़कर आप कहाँ जा रही हैं?' तत्पश्चात् वीरक देवीके दोनों चरणोंको पकड़कर वाष्पगद्गद वाणीमें बोला—'माँ! यह क्या हो गया? आप कुछ होकर कहाँ जा रही हैं? तपोनिष्ठे! इस प्रकार स्नेहे छोड़कर जाती हुई आपके पीछे मैं भी चलूँगा, अन्यथा आपके त्याग देनेपर मैं पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण दे दूँगा ॥ २१—२७ ॥
तदनन्तर माता पार्वती अपने दाहिने हाथसे वीरकके मुखको ऊपर उठाकर बोलीं—'बेटा! शोक मत करो। तुम्हारा पर्वतशिखरसे कूदना या मेरे साथ चलना उचित नहीं है। पुत्र! मैं जिस कार्यसे जा रही हूँ, वह तुम्हें बतला रही हूँ, सुनो। मेरे अनिन्द्य होनेपर भी शंकरजीने मुझे 'कृष्ण' कहकर मेरी निन्दा की है। इसलिये अब मैं तपस्या करूँगी, जिससे गौर वर्णकी प्राप्ति कर सकूँ। मेरे चले जानेके बाद ये महादेव लीलम्पट न हो जायें, इसके लिये तुम्हें सभी छिद्रोंपर दृष्टि रखते हुए नित्य द्वारकी रक्षा करनी चाहिये, जिससे यहाँ कोई ली शंकरजीके निकट प्रवेश न करने पावे। बेटा! यहाँ किसी परायी लीको देखकर मुझे तुरंत सूचित करना। फिर उसके बाद जैसा उचित होगा, मैं शीघ्र ही उपाय कर लूँगी।' इसपर वीरकने देवीसे कहा—'माँ! ऐसा ही होगा।' इस प्रकार माताकी आज्ञारूपी अमृतके आह्वादसे आप्लावित अङ्गोंवाला वीरक शोकरहित हो माताके चरणोंमें प्रणाम कर अन्तःपुरकी रखवाली करनेके लिये चला गया ॥ २८—३४ ॥

सूतजी कहते हैं—'ऋषियो! आगे बढ़नेपर पार्वतीने शृङ्गारसे विभूषित कुसुमामोदिनी (देवी)-को आते देखा, जो पार्वतीकी माता मेनाकी सखी और पर्वतराजकी प्रधान देवता थीं। उधर पार्वतीको देखकर कुसुमामोदिनीका भी मन स्नेहसे व्याकुल हो उठा। तब उन देवताने पार्वतीका आलिङ्गन कर उच्चस्वरसे पूछा—'बेटी! कहाँ जा रही

सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम्।
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम्॥ ३
उमोवाच

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते।
सर्वतः संनिधानं ते मम चातीव वत्सला॥ ४

अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया।
अन्यस्त्रीसम्प्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः॥ ५

रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ।
पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे॥ ६

ततोऽहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम्।
इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम्॥ ७

उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम्।
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा॥ ८

ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतमा वर्षांसु च जलोषिता॥ ९

वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थणिडलशायिनी।
एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता॥ १०

ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे बली।
अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन्॥ ११

देवान् सर्वान् विजित्याजौ बकभ्राता रणोत्कटः।
आडिनामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः॥ १२

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः।
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम्॥ १३

विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना।
हते तदान्धके दैत्ये गिरिशेनामरद्विषि॥ १४

आडिश्वकार विपुलं तपः परमदारुणम्।
तपागत्याब्रवीद् ब्रह्मा तपसा परितोषितः॥ १५

किमाडे दानवश्रेष्ठ तपसा प्रासुमिच्छसि।
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे॥ १६

हो ?'' तत्पश्चात् गिरिजाने उन देवीसे शंकरजीके प्रति उत्पन्न हुए अपने क्रोधके सारे कारणोंका वर्णन किया और फिर मातृ-तुल्य हतैषिणी देवतासे इस प्रकार कहा ॥ १—३ ॥

उमा बोलीं—‘अनिन्दिते ! आप मेरे पिता पर्वतराज हिमाचलकी देवता हैं, अतः आपका यहाँ नित्य निवास है। साथ ही मुझपर भी आपका अत्यन्त स्नेह है, इसलिये इस समय जो कार्य करना है उसे मैं आपके ध्यानमें ला रही हूँ। आपको इस पर्वतपर सावधान चित्तसे निरन्तर प्रयत्नपूर्वक ऐसी देखभाल करनी चाहिये कि यहाँ शिवजीके पास एकान्तमें कोई अन्य स्त्री प्रवेश न करने पाये। अनघे ! यदि कोई स्त्री शंकरजीके पास प्रवेश करती है तो आपको मुझे तुरंत उसकी सूचना देनी चाहिये। उसके बाद जो कुछ करना होगा, उसका विधान मैं कर लूँगी। ऐसा कहे जानेपर वे ‘तथेति’—ऐसा ही करूँगी’ यों कहकर अपने मङ्गलमय पर्वतकी ओर चली गर्या। इधर गिरिराजकुमारी उमा भी तुरंत ही मेघसमूहमें चमकती हुई बिजलीकी तरह आकाशमार्गसे अपने पिताके उद्यानमें जा पहुँची। वहाँ उन्होंने आभूषणोंका परित्याग कर वृक्षोंका वल्कल धारण कर लिया। वे ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तपती थीं, वर्षा-ऋतुमें जलमें निवास करती थीं और जाड़में शुष्क बंजरभूमिपर शयन करती थीं। वनके फल-मूल ही उनके आहार थे तथा वे कभी-कभी निराहार ही रह जाती थीं। इस प्रकार साधना करती हुई वे वहाँ तपस्यामें संलग्न हो गर्या ॥ ४—१० ॥

इसी बीच अन्धकासुरका पुत्र एवं बकासुरका भ्राता आडि नामक दैत्य जो बलवान्, घमंडी, रणमें दुःसह, देवताओंका शत्रु और निरन्तर शंकरजीके छिद्रान्वेषणमें निरत रहनेवाला था, पार्वतीको तपस्यामें संलग्न जानकर अपने पिताके वधका अनुस्मरण करते हुए युद्धस्थलमें सभी देवताओंको पराजित कर त्रिपुरहन्ता शंकरजीके नगरमें आ धमका। वहाँ आकर उसने वीरको द्वारपर स्थित देखा। तब वह पूर्वकालमें ब्रह्माद्वारा दिये गये अपने वरदानके विषयमें सोच-विचार करने लगा। शंकरजीद्वारा देवद्रोही अन्धक दैत्यके मारे जानेपर आडिने बहुत दिनोंतक परम कठोर तप किया था। तब उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माने उसके निकट आकर कहा था—‘दानवश्रेष्ठ आडि ! तुम तपस्याद्वारा क्या प्राप्त करना चाहते हो ?’ तब उस दैत्यने ब्रह्मासे कहा था—‘प्रभो ! मैं अमरताका वरदान चाहता हूँ’ ॥ ११—१६ ॥

ब्रह्मोवाच

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव विद्यते ।
 यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ॥ १७
 इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम् ।
 रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसम्भव ॥ १८
 तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम् ।
 इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसम्भवः ॥ १९
 यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति ।
 तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति ॥ २०
 इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ।
 तस्मिन् काले तु संसृत्य तद्वधोपायमात्मनः ॥ २१
 परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा ।
 भुजङ्गरूपी रन्धेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२
 परिहत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः ।
 अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम् ॥ २३
 भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः ।
 उमारूपी छ्ललयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥ २४
 कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतकर्यमनोहरम् ।
 सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ २५
 कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान् ।
 तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः ॥ २६
 कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम् ।
 पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः ॥ २७
 तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदाऽलिङ्ग्य महासुरम् ।
 मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैवयवान्तरैः ॥ २८
 अपृच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि न कृत्रिमः ।
 या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि ॥ २९
 त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्रयम् ।
 प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि ॥ ३०

तब ब्रह्माने कहा था—‘दानव ! इस सृष्टिमें कोई भी मनुष्य मृत्युसे रहित नहीं है । दैत्येन्द्र ! शरीरधारीको किसी-न-किसी प्रकारसे मृत्यु प्राप्त होती ही है । ऐसा कहे जानेपर दैत्यसिंह आडिने पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा था—‘पद्मसम्भव ! जब मेरे रूपका परिवर्तन हो जाय तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा मैं अमर बना रहूँ ।’ उसके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उस समय कमलयोनि ब्रह्माने प्रसन्न होकर उससे कहा था कि ‘ठीक है, जब तुम्हारे रूपका दूसरा परिवर्तन होगा, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, अन्यथा नहीं होगी ।’ ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह महाबली दैत्यपुत्र आडि अपनेको अमर मानने लगा । उस समय उसने अपनी मृत्युके उस उपायका स्मरणकर वीरकें दृष्टिमार्गको बचानेके लिये सर्पका रूप धारण कर लिया और एक बिलमें प्रविष्ट हो गया । फिर वह परम दुर्जय दानव गणेश्वर वीरकें दृष्टिपथको बचाकर उनसे अलक्षितरूपसे भगवान् शंकरके पास पहुँच गया । तदनन्तर उस मोहित चित्तवाले महासुर आडिने शंकरजीको छलनेके लिये सर्पका रूप त्यागकर उमाका रूप धारण कर लिया । उसने मायाका आश्रय लेकर पार्वतीके ऐसे अकल्पनीय एवं मनोहर रूपका निर्माण किया था, जो सभी अवयवोंसे परिपूर्ण तथा सभी लक्षणोंसे युक्त था । फिर वह दैत्य मुखके भीतर वज्रके समान सुटूँद और तीखे अग्रभागवाले दाँतोंका निर्माण कर मूर्खतावश शंकरजीका वध करनेके लिये उद्यत हुआ ॥ २७—२८ ॥

तदनन्तर वह पापी दैत्य सुन्दर रूप एवं चित्र-विचित्र आभूषणों और वस्त्रोंसे विभूषित हो उमाका रूप धारण कर शंकरजीके निकट गया । उसे देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये । तब उन्होंने उस महासुरको सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पार्वती मानते हुए उसका आलिङ्गन करके पूछा—‘गिरिजे ! अब तो मेरे प्रति तुम्हारा भाव उत्तम है न ? बनावटी तो नहीं है ? सुन्दरि ! (ऐसा प्रतीत होता है कि) तुम मेरे अभिप्रायको जानकर ही यहाँ आयी हो; क्योंकि तुम्हारे बिना मैं त्रिलोकीको सूना-सा मान रहा था । अब जो तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ आ गयी हो, तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित ही है !’

इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयज्ञानैः ।
न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः ॥ ३१

देव्युवाच

यातास्म्यहं तपश्चर्तुं वाल्लभ्याय तवातुलम् ।
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम् ॥ ३२

इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां कांचित्प्राप्यावधारयत् ।
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ३३

कुपिता मयि तन्वज्ञि प्रकृत्या च दृढव्रता ।
अप्राप्तकामा सम्प्राप्ता किमेतत्संशयो मम ॥ ३४

इति चिन्त्य हरस्तस्या अभिज्ञानं विधारयन् ।
नापश्यद्वामपाश्वें तु तदङ्गे पद्मलक्षणम् ॥ ३५

लोमावर्त तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक् ।
अबुध्यद्वानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः ॥ ३६

मेघे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमसूदयत् ।
अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥ ३७

हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ।
अपरिच्छन्नतत्त्वार्थी शैलपुत्रै न्यवेदयत् ॥ ३८

दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता ।
श्रुत्वा वायुमुखादेवी क्रोधरक्तविलोचना ।
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे आडिवधो नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें आडिवध नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५६ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर दानवेन्द्र आडि मुसकराते हुए धीरे-धीरे बोला । वह त्रिपुरहन्ता शंकरजीद्वारा पार्वतीके शरीरमें लक्षित किये गये चिह्नको प्रायः नहीं जानता था ॥ २७—३१ ॥

देवी(रूपधारी आडि)-ने कहा—‘पतिदेव ! आपके अतुलनीय पति-प्रेमकी प्राप्तिके अभिप्रायसे मैं तपस्या करने गयी थी, किंतु उसमें मेरा मन नहीं लगा, अतः पुनः आपके निकट लौट आयी हूँ । उसके ऐसा कहनेपर शंकरजीके मनमें कुछ शङ्का उत्पन्न हो गयी, परंतु उसे उन्होंने हृदयमें ही समाधान करके छिपा लिया । फिर वे मुसकराते हुए बोले—‘सूक्ष्माज्ञि ! तुम तो मुझपर कुपित होकर तपस्या करने गयी थी न ? साथ ही तुम स्वभावसे ही सुदृढ़ प्रतिज्ञावाली हो, फिर बिना मनोरथ सिद्ध किये लौट आयी हो, यह क्या बात है ? इससे तो मुझे संदेह हो रहा है ।’ ऐसा विचारकर शंकरजी पार्वतीके उस लक्षणका स्परण करने लगे, जिसे उन्होंने पार्वतीके शरीरके बायें भागमें बालोंको घुमाकर पद्मके रूपमें बनाया था, परंतु वह उन्हें दिखायी न पड़ा ।* तब पिनाकधारी महादेवने समझ लिया कि यह दानवी माया है । फिर तो उन्होंने अपने आकारको छिपाते हुए जननेन्द्रियमें वज्रास्त्रको अभिमन्त्रित करके उस दैत्यको मार डाला । इस प्रकार मारे गये दानवेन्द्र आडिकी बात वीरको नहीं जात हुई । उधर इसके यथार्थ तत्त्वको न जानेवाली हिमाचलकी देवता कुसुमामोदिनीने शंकरजीद्वारा स्त्रीरूपधारी दानवेश्वरको मारा गया देखकर अपने शीश्रगामी दूत वायुद्वारा पार्वतीको इसकी सूचना भेज दी । वायुके मुखसे वह संदेश सुनकर पार्वती देवीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । तब वे दुःखी हृदयसे अपने पुत्र वीरको शाप देते हुए बोलीं ॥ ३२—३९ ॥

* यह महा-सौभाग्यजनक चिह्न है । भगवान् विष्णु तथा अन्य भाग्यशलियोंके शरीरमें ऐसा चिह्न श्रीवत्स नामसे प्रसिद्ध है ।

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

पार्वतीद्वारा वीरकको शाप, ब्रह्माका पार्वती तथा एकानंशाको वरदान, एकानंशाका विष्ण्याचलके लिये प्रस्थान, पार्वतीका भवनद्वारपर पहुँचना और वीरकद्वारा रोका जाना

देव्युवाच

मातरं मां परित्यज्य यस्मात् त्वं स्नेहविक्लबात् ।
विहितावसरैः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ ॥ १
तस्मात् ते परुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता ।
गणेश क्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥ २
निमित्तमेतद् विष्ण्यातं वीरकस्य शिलोदये ।
सोऽभवत् प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः ॥ ३
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ।
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकन्धरः ।
प्रोद्धूतलम्बलाङ्गुलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः ॥ ५
व्यावृत्तास्यो ललजिह्वः क्षामकुक्षिश्चखादिषुः ।
तस्याशु वर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा ॥ ६
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः ।
आजगामाश्रमपदं सम्पदामाश्रयं तदा ।
आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा ॥ ७

ब्रह्मोवाच

किं पुत्रि प्रासुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ।
विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाज्ञया ॥
तच्छुत्वोवाच गिरिजा गुरुं गौरवगर्भितम् ।
वाक्यं वाचा चिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाज्जितम् ॥ ९

देव्युवाच

तपसा दुष्करेणासः पतित्वे शङ्करो मया ।
स मां श्यामलवर्णंति बहुशः प्रोक्तवान् भवः ॥ १०
स्यामहं काङ्गनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता ।
भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निविशेऽङ्गवत् ॥ ११

देवीने कहा—गणेश्वर वीरक! चूँकि तुमने मुझ माताका परित्याग कर स्नेहसे विकल हो शंकरजीके एकान्तमें अन्य स्त्रियोंको प्रवेश करनेका अवसर दिया है, इसलिये अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, मूर्ख, हृदयरहित एवं राख-सदृशी रूखी शिला तुम्हारी माता होगी। वीरकका शिलासे उत्पन्न होनेमें यही कारण विष्ण्यात है। आगे चलकर वही शाप क्रमशः विचित्र कथाओंका आश्रयस्थान बन गया। इस प्रकार पार्वतीके शाप दे देनेके पश्चात् क्रोध उनके मुखसे महाबली सिंहके रूपमें बाहर निकला। उस सिंहका मुख विकराल था, उसका कंधा जटाओंसे आच्छादित था, उसकी लम्बी पूँछ ऊपर उठी हुई थी, उसके मुखके दोनों किनारे भयंकर दाढ़ोंसे युक्त थे, वह मुख फैलाये हुए जीभ लपलपा रहा था, उसकी कुक्षिदुबली-पतली थी और वह किसीको खा जानेकी टोहमें था। यह देखकर पार्वतीदेवी शीघ्र ही उसपर आरूढ़ होनेकी चेष्टा करने लगीं। तब उनके मनोगत भावको जानकर भगवान् ब्रह्मा उस आश्रमस्थानपर आये जो सभी सम्पदाओंका आश्रयस्थान था। वहाँ आकर देवेश्वर ब्रह्मा गिरिजासे स्पष्ट वाणीमें बोले ॥ १—७ ॥

ब्रह्माने कहा—पुत्रि! अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इस अत्यन्त कष्टकर तपस्यासे विरत हो जाओ। बताओ, तुम क्या प्राप्त करना चाहती हो? मैं तुम्हें कौन-सी दुर्लभ वस्तु प्रदान करूँ? वह सुनकर गिरिजाने गौरवास्पद गुरुजन ब्रह्मासे अपने चिरकालसे निर्णीत मनोरथको स्पष्टकरोंसे युक्त वाणीद्वारा व्यक्त करते हुए कहा ॥ ८—९ ॥

देवी बोलीं—प्रभो! मैंने कठोर तपस्याके फलस्वरूप शंकरजीको पतिरूपमें प्राप्त किया है, किंतु वे मुझे बहुधा ‘श्यामवर्ण—काले रंगकी’ कहकर अपमानित करते रहते हैं। अतः मैं चाहती हूँ कि मेरा वर्ण सुवर्ण-सा गौर हो जाय, मैं उनकी परम वल्लभा बन जाऊँ और अपने भूतनाथ पतिदेवके शरीरमें एक ओर उन्हींके अङ्गकी तरह प्रविष्ट हो जाऊँ।

तस्यास्तद् भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः ।
 एवं भव त्वं भूयश्च भर्तुर्देहार्थधारिणी ॥ १२
 ततस्तत्याज भृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥ १३
 त्वचा सा चाभवद् दीपा घण्टाहस्ता त्रिलोचना ।
 नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयधारिणी ॥ १४
 तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ।
 निशे भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं ममाज्ञया ॥ १५
 सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरा ह्यसि ।
 य एष सिंहः प्रोद्धूतो देव्याः क्रोधाद् वरानने ॥ १६
 स तेऽस्तु वाहनं देवि केतौ चास्तु महाबलः ।
 गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७
 पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः ।
 दत्तस्ते किङ्गरो देवि मया मायाशतैर्युतः ॥ १८
 इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ।
 उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९
 प्रविशन्तीं तु तां द्वारादपकृष्य समाहितः ।
 रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ॥ २०
 तामुवाच च कोपेन रूपात् व्यभिचारिणीम् ।
 प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१
 देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ।
 प्रविष्टो न च दृष्टेऽसौ स वै देवेन घातितः ॥ २२
 घातिते चाहमाज्ञसो नीलकण्ठेन कोपिना ।
 द्वारेषु नावधानं ते यस्मात् पश्यामि वै ततः ॥ २३
 भविष्यसि न मदद्वाःस्थो वर्षपूर्णान्यनेकशः ।
 अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ॥ २४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे वीरकशापो नाम सपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें वीरक-शाप नामक एक सौ सत्तावनाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५७ ॥

पार्वतीके उस कथनको सुनकर कमलासन ब्रह्माने कहा—
 ‘ठीक है, तुम ऐसी ही होकर पुनः अपने पतिदेवके शरीरके अर्धभागको धारण करनेवाली हो जाओ ।’ ऐसा वरदान पाकर पार्वतीने अपने भ्रमर-सरीखे काले एवं खिले हुए नीले कमलके-से नीले चमड़ेको त्याग दिया । तब उनकी त्वचा उद्दीप हो उठी और वे तीन नेत्रोंसे भी युक्त हो गयीं । तदुपरान्त उन्होंने अपने शरीरको नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित कर पीले रंगकी रेशमी साड़ी धारण किया और हाथमें घण्टा ले लिया । तत्पश्चात् ब्रह्माने उस नीले कमलकी-सी कान्तिवाली देवीसे कहा—
 ‘निशे ! तुम पहलेसे ही एकानंशा नामसे विख्यात हो और इस समय मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरका सम्पर्क होनेके कारण तुम कृतकृत्य हो गयी हो । वरानने ! पार्वतीदेवीके क्रोधसे जो यह सिंह प्रादुर्भूत हुआ है, वह तुम्हारा वाहन होगा और तुम्हारी ध्वजापर भी इस महाबलीका आकार विद्यमान रहेगा । अब तुम विन्ध्याचलको जाओ । वहाँ देवताओंका कार्य सिद्ध करो । देवि ! जिसके पीछे एक लाख यक्ष चलते हैं, उस इस पञ्चाल नामक यक्षको मैं तुम्हें किंकरके रूपमें प्रदान कर रहा हूँ, यह सैकड़ों प्रकारकी मायाओंका ज्ञाता है ।’ ब्रह्माद्वारा ऐसा आदेश पाकर कौशिकी देवी विन्ध्यपर्वतकी ओर चली गयीं ॥ १०—१८ ॥

इधर उमा भी अपना मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त कर शंकरजीके पास चलीं । वहाँ द्वारपर हाथमें सोनेका ढंडा धारण किये हुए वीरक सावधानीपूर्वक पहरा दे रहा था । उसने प्रवेश करती हुई पार्वतीको दरवाजेसे खींचकर रोक दिया और गौर रूपसे दूसरी स्त्री-सी प्रतीत होनेवाली उनसे क्रोधपूर्वक कहा—‘तुम्हारा यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है, अतः जबतक मैं तुम्हें पीट नहीं दे रहा हूँ, उससे पहले ही भाग जाओ । यहाँ महादेवजीको छलनेके लिये एक दैत्य माता पार्वतीदेवीका रूप धारण कर प्रविष्ट हो गया था, जिसे मैं देख नहीं पाया था, किंतु महादेवजीने उसे यमलोकका पथिक बना दिया, उसे मारनेके बाद नीलकण्ठ शिवजीने कुद्ध होकर मुझे आज्ञा दी है कि अबसे तुम द्वारपर असावधानी मत करना । तभीसे मैं अच्छी तरह सजग होकर पहरा दे रहा हूँ । द्वारपर मेरे स्थित रहते हुए तुम अनेकों वर्षसमूहोंतक प्रविष्ट न हो सकेगी, इसलिये मैं तुम्हें भवनमें प्रवेश नहीं करने दूँगा । तुम शीघ्र ही यहाँसे चली जाओ’ ॥ १९—२४ ॥

एक सौ अद्वावनवाँ अध्याय

वीरकद्वारा पार्वतीकी स्तुति, पार्वती और शंकरका पुनः समागम,
अग्निको शाप, कृत्तिकाओंकी प्रतिज्ञा और स्कन्दकी उत्पत्ति

वीरक उवाच

एवमुक्त्वा गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ।
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ॥ १

इत्युक्ता तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा ।
न सा नारीति दैत्योऽसौ वायुर्में यामभाषत ॥ २

वृथैव वीरकः शसो मया क्रोधपरीतया ।
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः ॥ ३

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम् ।

अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ।
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥ ४

संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ।
लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥ ५

देव्युवाच

अहं वीरक ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः ।
शङ्करस्यास्मि दयिता सुता तुहिनभूभृतः ॥ ६

मम गात्रच्छविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र भावय ।
तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥ ७

मया शसोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते ।
ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते ॥ ८

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते ।
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात्स त्वं कामसमन्वितः ॥ ९

सूत उवाच

शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः ।
उवाचोदितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम् ॥ १०

वीरकने कहा—कमललोचने ! मेरी स्नेहवत्सला माता पार्वतीने भी मुझे ऐसा ही आदेश दिया है, अतः कोई भी परायी स्त्री भवनके भीतर प्रवेश नहीं कर सकती । वीरकद्वारा ऐसा कही जानेपर पार्वतीदेवी मनमें विचार करने लगीं कि वायुने मुझे जिस स्त्रीके विषयमें सूचना दी थी, वह स्त्री नहीं थी, प्रत्युत वह कोई दैत्य था । क्रोधके वशीभूत हो मैंने व्यर्थ ही वीरकको शाप दे दिया । क्रोधसे प्रेरित हुए मूर्खलोग प्रायः इसी प्रकार अकार्य कर बैठते हैं । क्रोध करनेसे कीर्ति नष्ट हो जाती है और क्रोध सुस्थिर लक्ष्मीका भी विनाश कर देता है । इसी कारण तत्त्वार्थको निश्चितरूपसे न जानकर मैंने अपने पुत्रको ही शाप दे दिया । जिनकी बुद्धि विपरीत अर्थको ग्रहण करती है, उन्हें विपत्तियाँ मिलती हैं । ऐसा विचारकर पार्वती कमल-सी कान्तिवाले मुखसे लज्जाका नाट्य करती हुई वीरकसे इस प्रकार कहने लगीं ॥ १—५ ॥

देवी बोलीं—वीरक ! तुम अपने मनमें मेरे प्रति संदेह मत करो । मैं ही हिमाचलकी पुत्री, शंकरजीकी प्रियतमा पत्नी और तुम्हारी माता हूँ । बेटा ! मेरे शरीरकी अभिनव शोभाके भ्रमसे तुम शङ्का मत करो । यह गौर कान्ति मुझे ब्रह्माने प्रसन्न होकर प्रदान की है । मुझे यह दैत्यद्वारा निर्मित वृत्तान्त ज्ञात नहीं था, अतः शंकरजीके एकान्तमें स्थित रहनेपर किसी अन्य नारीका प्रवेश (तुम्हारी असावधानीसे) जानकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया है । वह शाप तो अब टाला नहीं जा सकता, किंतु उससे उद्धारका उपाय तुम्हें बतला रही हूँ । तुम मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर वहाँ अपना मनोरथ पूरा करके शीघ्र ही मेरे पास वापस आ जाओगे ॥ ६—९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर वीरक प्रसन्न मनसे उदय हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी-सी कान्तिवाली माता पार्वतीको सिर झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् बोला ॥ १० ॥

वीरक उवाच

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणि-
प्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते ।
नगसुते शरणागतवत्सले
तव नतोऽस्मि नतार्तिविनाशिनि ॥ ११
तपनमण्डलमण्डितकन्थे
पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते ।
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते
गिरिसुते भवतीमहमाश्रये ॥ १२
जगति कः प्रणताभिमतं ददौ
झटिति सिद्धनुते भवती यथा ।
जगति कां च न वाञ्छति शङ्करो
भुवनधृतनये भवतीं यथा ॥ १३
विमलयोगविनिर्मितदुर्जय-
स्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले ।
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः
सुरवैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ १४
सितसटापटलोद्धतकन्थरा-
भरमहामृगराजरथस्थिता ।
विकलशक्तिमुखानलपिङ्गलायत
भुजौघ विषिष्ठमहासुरा ॥ १५
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका
जननि शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ।
प्रणतचिन्तितदानवदानव-
प्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ १६
वियति वायुपथे ज्वलनोज्वले-
उवनितले तव देवि च यद्वपुः ।
तदजितेऽप्रतिमे प्रणमाम्यहं
भुवनभाविनि ते भवत्लभे ॥ १७
जलधयो ललितोद्धतवीचयो
हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ।
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमा-
स्त्वदभिधास्यति मय्यभयंकराः ॥ १८
भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये
प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ।
करणजातमिहास्तु ममाचलं
नुतिलवासिफलाशयहेतुतः ॥ १९

वीरकने कहा—गिरिराजकुमारी ! आपके चरण-
नख प्रणत हुए सुरों और असुरोंके मुकुटोंमें लगी हुई
मणिसमूहोंकी उत्कट कान्तिसे सुशोभित होते रहते हैं ।
आप शरणागतवत्सला तथा प्रणतजनोंका कष्ट दूर करनेवाली
हैं । मैं आपके चरणोंमें नमस्कार कर रहा हूँ । गिरिनन्दिन !
आपके कन्थे सूर्य-मण्डलके समान चमकते हुए सुशोभित
हो रहे हैं । आपकी शरीरकान्ति प्रचुर सुवर्णसे परिपूर्ण सुमेरु
गिरिकी तरह है । आप विषैले सर्परूपी तरकससे विभूषित
हैं, मैं आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ । सिद्धोद्वारा नमस्कार
की जानेवाली देवि ! आपके समान जगतमें प्रणतजनोंके
अभीष्टको तुरंत प्रदान करनेवाला दूसरा कौन है ? गिरिजे !
इस जगतमें भगवान् शंकर आपके समान किसी अन्य
स्त्रीकी इच्छा नहीं करते । आपने महेश्वर-मण्डलको निर्मल
योगबलसे निर्मित अपने शरीरके तुल्य दुर्जय बना दिया
है । आप मारे गये अन्धकासुरके भाई-बन्धुओंका संहार
करनेवाली हैं । सुरेश्वरोंने सर्वप्रथम आपकी स्तुति की
है । आप श्वेत वर्णकी जटा (केश)-समूहसे आच्छादित
कंधेवाले विशालकाय सिंहरूपी रथपर आरूढ़ होती हैं ।
आपने चमकती हुई शक्तिके मुखसे निकलनेवाली अग्निकी
कान्तिसे पीला पड़नेवाली लम्बी भुजाओंसे प्रधान-
प्रधान असुरोंको पीसकर चूर्ण कर दिया है ॥ ११—१५ ॥
जननि ! त्रिभुवनके प्राणी आपको शुम्भ-निशुम्भका
संहार करनेवाली चण्डिका कहते हैं । एकमात्र आप
इस भूतलपर विनम्र जनोंद्वारा चिन्तना किये गये प्रधान-
प्रधान दानवोंका वेगपूर्वक मर्दन करनेमें उत्साह
रखनेवाली हैं । देवि ! आप अजेय, अनुपम, त्रिभुवन-
सुन्दरी और शिवजीकी प्राणप्रिया हैं, आपका जो शरीर
आकाशमें, वायुके मार्गमें, अग्निकी भीषण ज्वालाओंमें
तथा पृथ्वीतलपर भासमान है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ ।
रुचिर एवं भीषण लहरोंसे युक्त महासागर, अग्निकी
लपटें, चराचर जगत् तथा हजारों फण धारण
करनेवाले बड़े-बड़े नाग—ये सभी आपका नाम
लेनेवाले मेरे लिये भयंकर नहीं दीख पड़ते । अनन्य
भक्तजनोंकी आश्रयभूता भगवति ! मैं आपके
चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ । आपके चरणोंमें प्रणत
होनेसे प्राप्त हुए थोड़े-से फलके कारण मेरा
इन्द्रियसमुदाय आपके चरणोंमें अटल स्थान प्राप्त करे ।

प्रशममेहि ममात्मजवत्सले
 तब नमोऽस्तु जगत् त्रयसंश्रये ।
त्वयि ममास्तु मतिः सततं शिवे
 शरणगोऽस्मि नतोऽस्मि नमोऽस्तु ते ॥ २०
 सूत उवाच

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता ।
 प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥ २१
 द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः ।
 व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकम् ॥ २२
 नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः ।
 निभृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥ २३
 गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः ।
 ज्वलनं चोदयामासुर्जातुं शङ्करचेष्टितम् ॥ २४
 प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः ।
 ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २५
 ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् ।
 तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्वितः ॥ २६

शर्व उवाच

यस्मात् त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वव्युपपद्यते ।
 इत्युक्तः प्राञ्जलिर्बहिरपिबद् वीर्यमाहितम् ॥ २७
 तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्त्वायविभेदतः ।
 विपाठ्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः ॥ २८
 निष्क्रान्तं तस्मेमाभं वितते शङ्कराश्रमे ।
 तस्मिन् सरो महजातं विमलं बहुयोजनम् ॥ २९
 प्रोत्पुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ।
 तच्छुत्वा तु ततो देवी हेमद्वूममहाजलम् ॥ ३०

जगाम कौतुकाविष्टा तत्सरः कनकाम्बुजम् ।
 तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा ॥ ३१
 उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ।
 पातुकामा च तत्त्वां स्वादु निर्मलपङ्कजम् ॥ ३२

पुत्रवत्सले ! मेरे लिये पूर्णरूपसे शान्त हो जाइये । त्रिलोकीकी आश्रयभूता देवि ! आपको नमस्कार है । शिवे ! मेरी बुद्धि निरन्तर आपके चिन्तनमें ही लगी रहे । मैं आपके शरणागत हूँ और चरणोंमें पड़ा हूँ । आपको नमस्कार है ॥ १६—२० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! वीरकके इस प्रकार संस्तवन करनेपर पार्वतीदेवी प्रसन्न हो गयीं, तब वे अपने पति शिवजीके सुन्दर भवनमें प्रविष्ट हुईं । इधर द्वारपाल वीरकने शिवजीके दर्शनकी अभिलाषासे आये हुए देवोंको आदरपूर्वक ऐसा कहकर अपने—अपने घरोंको लौटा दिया कि ‘देवगण ! इस समय मिलनेका अवसर नहीं है; क्योंकि भगवान् शंकर एकान्तमें पार्वतीदेवीके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं ।’ ऐसा कहे जानेपर वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये । इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर देवताओंके मनमें उतावली उत्पन्न हो गयी, तब उन्होंने शंकरजीकी चेष्टाका पता लगानेके लिये अग्निको भेजा । वहाँ जाकर अग्निदेवने शुकका रूप धारण किया और गवाक्षमार्गसे भीतर प्रवेश करके देखा कि शंकरजी गिरिजाके साथ शश्यापर विराजमान हैं । उधर देवेश्वर शंकरजीकी दृष्टि शुकरूपी अग्निपर पड़ गयी, तब महादेव कुछ कुद्ध-से होकर अग्निसे बोले ।

शिवजीने कहा—अग्ने ! चूँकि तुमने ही यह विघ्न उपस्थित किया है, इसलिये इसका फल भी तुम्हें भोगना पड़ेगा । ऐसा कहे जानेपर अग्नि हाथ जोड़कर शंकरजीहारा आधान किये गये वीर्यको पी गये और उसे सभी देवताओंके शरीरमें विभक्त करके उन्हें पूर्ण कर दिया । तदनन्तर शंकरजीका वह तपाये हुए स्वर्णके समान कान्तिमान् वीर्य देवताओंका उदर फाड़कर बाहर निकल आया और शंकरजीके उस विस्तृत आश्रममें अनेकों योजनोंमें विस्तृत एवं निर्मल जलसे पूर्ण महान् सरोवरके रूपमें परिणत हो गया । उसमें स्वर्णकी-सी कान्तिवाले कमल खिले हुए थे और नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे । तत्पश्चात् स्वर्णमय वृक्ष एवं अगाध जलसे सम्पन्न उस सरोवरके विषयमें सुनकर कुतूहलसे भरी हुई पार्वतीदेवी उस स्वर्णमय कमलसे भरे हुए सरोवरके तटपर गयीं और उसके कमलको सिरपर धारण करके जलक्रीडा करने लगीं । तत्पश्चात् पार्वतीदेवी सखीके साथ उस सरोवरके तटपर बैठ गयीं और उस सरोवरके कमलकी गन्धसे सुवासित स्वच्छ स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं ।

अपश्यत् कृत्तिका: स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभाः ।
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम् ॥ ३३

हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ।
ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजाम् ॥ ३४

कृत्तिका ऊतुः

दास्यामो यदि ते गर्भः सम्भूतो यो भविष्यति ।
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ।
भवेल्लोकेषु विष्ण्यातः सर्वेष्वपि शुभानने ॥ ३५
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्भात्रसम्भवः ।
सर्वेष्वरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत् ॥ ३६
ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ।
उत्तमान्युक्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३७
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः ।
ततस्ता हर्षसप्त्वर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः ॥ ३८
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ।
पीते तु सलिले तस्मिस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३९
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुदगतः ।
निश्चक्रामाद्दुतो बालः सर्वलोकविभासकः ॥ ४०
प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः ।
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः ॥ ४१
दीपो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ।
एतस्मात् कारणाद् देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने कुमारसम्भवो नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोद्यायः ॥ १५८ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें कुमारसम्भव नामक एक सौ अद्वावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५८ ॥

इतनेमें ही उनकी दृष्टि उस सरोवरमें स्नान कर निकली हुई छहों कृत्तिकाओंपर पड़ी जो सूर्यकी कान्तिके समान उद्भासित हो रही थीं तथा कमलके पत्तेके दोनेमें उस सरोवरके जलको लेकर घरकी ओर जानेके लिये उद्यत थीं । तब पार्वतीने उनसे हर्षपूर्वक कहा—‘मैं कमलके पत्तेमें रखे हुए जलको देख रही हूँ ।’ यह सुनकर उन कृत्तिकाओंने पार्वतीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७—३४ ॥

कृत्तिकाओंने कहा—शुभानने ! यह जल हमलोग आपको दे देंगी, किंतु यदि आप यह प्रतिज्ञा करें कि इस जलके पान करनेसे जो गर्भ स्थित होगा, उससे उत्पन्न हुआ बालक हमलोगोंका भी पुत्र कहलाये और हमलोगोंके नामपर उसका नामकरण किया जाय । वह बालक सभी लोकोंमें विष्ण्यात होगा । इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने कहा—‘भला जो मेरे समान सभी अङ्गोंसे युक्त होकर मेरे शरीरसे उत्पन्न होगा, वह आप लोगोंका पुत्र कैसे हो सकेगा ?’ तब कृत्तिकाओंने पार्वतीसे कहा—‘यदि हमलोग इस बालकके उत्तम मस्तकोंकी रचना करेंगी तो यह वैसा हो सकता है ।’ उनके ऐसा कहनेपर पार्वतीने कहा—‘अनिन्द्य सुन्दरियो ! ऐसा ही हो ।’ तब हर्षसे भरी हुई कृत्तिकाओंने कमलके पत्तेमें रखे हुए उस जलको पार्वतीको समर्पित कर दिया और पार्वतीने भी उस सारे जलको क्रमशः पी लिया । उस जलके पी लेनेपर उसी सरोवरके तटपर पार्वतीदेवीकी दाहिनी कोखको फाड़कर एक अद्भुत बालक निकल पड़ा जो समस्त लोकोंको उद्भासित कर रहा था । उसकी शरीरकान्ति सूर्यके समान थी । वह स्वर्ण-सदृश प्रकाशमान तथा हाथोंमें निर्मल एवं भयावनी शक्ति और शूल धारण किये हुए था । उसके छः मुख थे । वह सुवर्णकी-सी छविसे युक्त हो उद्धीस हो रहा था और पापाचारी दैत्योंको मारनेके लिये उद्यत-सा दीख रहा था । इसी कारण वे देव ‘कुमार’ नामसे भी प्रसिद्ध हुए ॥ ३५—४२ ॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

स्कन्दकी उत्पत्ति, उनका नामकरण, उनसे देवताओंकी प्रार्थना और उनके द्वारा देवताओंको आश्वासन, तारकके पास देवदूतद्वारा संदेश भेजा जाना और सिद्धोद्वारा कुमारकी स्तुति

सूत उवाच

वामं विदार्य निष्कान्तः सुतो देव्याः पुनः शिशुः ।
 स्कन्दाच्य वदने वह्ने: शुकात् सुवदनोऽरिहा ॥ १
 कृत्तिकामेलनादेव शाखाभिः सविशेषतः ।
 शाखाभिधाः समाख्याताः षट्सु वक्त्रेषु विस्तृताः ॥ २
 यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः ।
 स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः ॥ ३
 चैत्रस्य बहुले पक्षे पञ्चदश्यां महाबलौ ।
 सम्भूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने ॥ ४
 चैत्रस्यैव सिते पक्षे पञ्चम्यां पाकशासनः ।
 बालकाभ्यां चकारैकं मत्वा चामरभूतये ॥ ५
 तस्यामेव ततः षष्ठ्यामभिषिक्तो गुहः प्रभुः ।
 सर्वैरमरसंघातैर्ब्रह्मोन्द्रोपेन्द्रभास्करैः ॥ ६
 गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथा क्रीडनकैरपि ।
 छत्रैश्वामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः ॥ ७
 अभिषिक्तो विधानेन यथावत् षण्मुखः प्रभुः ।
 सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम् ॥ ८
 पत्न्यर्थं देवदेवस्य ददौ विष्णुस्तदायुधान् ।
 यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्मै धनाधिपः ॥ ९
 ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम् ।
 ददौ क्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम् ।
 एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनुत्तमम् ॥ १०
 ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे ॥ ११
 जानुभ्यामवनीं स्थित्वा सुरसंघास्तमस्तुवन् ।
 स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः ॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पुनः पार्वती देवीकी बार्यों को खको फाड़कर दूसरा शिशु पुत्ररूपमें बाहर निकला। सर्वप्रथम अग्निके मुखमें वीर्यका क्षरण होनेके कारण वह बालक सुन्दर मुखवाला और शत्रुओंका विनाशक हुआ। उसके छः मुख हुए। चौंकि छहों मुखोंमें विस्तृत शाखा नामसे प्रसिद्ध कृतिकाओंकी शाखाओंका विशेषरूपसे मेल हुआ था, इसलिये वह बालक लोकोंमें ‘विशाख’ नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार वह स्कन्द, विशाख, षड्वक्त्र और कार्तिकेयके नामसे प्रख्यात हुआ। चैत्रमासके कृष्णपक्षकी पंद्रहवीं तिथि (अमावास्या)-को विशाल सरपतके बनमें सूर्यके समान तेजस्वी एवं महाबली ये दोनों शिशु उत्पन्न हुए थे। पुनः चैत्रमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको पाकशासन इन्द्रने देवताओंके लिये कल्याणकारी मानकर दोनों बालकोंको सम्मिलित करके एकीभूत कर दिया। उसी मासकी षष्ठी तिथिको ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, सूर्य आदि सभी देवसमूहोंद्वारा सामर्थ्यशाली गुह (देव-सेनापतिके पदपर) अभिषिक्त किये गये। उस समय चन्दन, पुष्पमाला, माङ्गलिक धूप, खिलौना, छत्र, चौंचरसमूह, आभूषण और अङ्गरागद्वारा भगवान् षण्मुखका विधिपूर्वक यथावत् अभिषेक किया गया था। इन्द्रने ‘देवसेना’ नामसे विख्यात कन्याको उन्हें पत्नीरूपमें प्रदान किया। भगवान् विष्णुने देवाधिदेव गुहको अनेकों आयुध समर्पित किया। कुबेर उन्हें दस लाख यक्ष प्रदान किये। अग्निने तेज दिया। वायुने वाहन समर्पित किया। त्वष्टाने खिलौना तथा स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाला एक मुर्गा प्रदान किया। इस प्रकार उन सभी देवताओंने प्रसन्न मनसे सूर्यके समान तेजस्वी स्कन्दको सर्वश्रेष्ठ परिवार प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रधान-प्रधान देवताओंके समूह पृथ्वीपर घुटने टेककर उन वरदायक षण्मुखकी निमाङ्कित स्तोत्रद्वारा स्तुति करने लगे ॥१-१२॥

देवा ऊचुः

नमः कुमाराय महाप्रभाय
स्कन्दाय च स्कन्दितदानवाय।
नवार्कविद्युद्द्युतये नमोऽस्तु ते
नमोऽस्तु ते षण्मुख कामरूप॥ १३
पिनद्धनानाभरणाय भत्रे
नमो रणे दारुणदारुणाय।
नमोऽस्तु तेऽक्रप्रतिमप्रभाय
नमोऽस्तु गुह्याय गुह्याय तुभ्यम्॥ १४
नमोऽस्तु त्रैलोक्यभयापहाय
नमोऽस्तु ते बालकृपापराय।
नमो विशालामललोचनाय
नमो विशाखाय महाव्रताय॥ १५
नमस्तेऽस्तु मनोहराय
नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय।
नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय
नमोऽस्तु केयूरधराय तुभ्यम्॥ १६
धृतोदग्रपताकिने नमो
नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु।
नमो नमस्ते वरवीर्यशालिने
कृपापरो नो भव भव्यमूर्ते॥ १७
क्रियापरा यज्ञपतिं च स्तुत्वा
विरेमुरेवं त्वमराधिपाद्याः।
एवं तदा षड्वदनं तु सेन्द्रा
मुदा सुषुष्टश्च गुहस्ततस्तान्।
निरीक्ष्य नेत्रैरमलैः सुरेशान्
शत्रून् हनिष्यामि गतञ्चराः स्थ॥ १८

कुमार उवाच
कं वः कामं प्रयच्छामि देवता ब्रूत निर्वृताः।
यद्यप्यसाध्यं हृद्यं वो हृदये चिन्तितं परम्॥ १९
इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः।
सर्व एव महात्मानं गुहं तदगतमानसाः॥ २०
दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्वामरकुलान्तकृत्।
बलवान् दुर्जयो दुष्टो दुराचारोऽतिकोपनः।
तमेव जहि हृद्योऽर्थं एषोऽस्माकं भयापह॥ २१

देवताओंने कहा—कामरूप षण्मुख ! आप कुमार, महान् तेजस्वी, शिवतेजसे उत्पन्न और दानवोंका कचूमर निकालनेवाले हैं। आपकी शरीर-कान्ति उदयकालीन सूर्य एवं बिजलीकी-सी है। आपको हमारा बारंबार नमस्कार प्राप्त हो। आप नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, जगत्के पालनकर्ता और रणभूमिमें भीषण दानवोंके लिये अत्यन्त भयंकर हैं, आपको प्रणाम है। सूर्य-सरीखे प्रतिभाशाली आपको अभिवादन है। गुह्य रूपवाले आप गुहको हमारा नमस्कार है। त्रिलोकीके भयको दूर करनेवाले आपको प्रणाम है। कृपा करनेमें तत्पर रहनेवाले बालरूप आपको अभिवादन है। विशाल एवं निर्मल नेत्रोंवाले आपको नमस्कार है। महान् व्रतका पालन करनेवाले आप विशाखको प्रणाम है। सामान्यतया मनोहर रूपधारी तथा रणभूमिमें भयानक रूपसे युक्त आपको बारंबार अभिवादन है। उज्ज्वल मयूरपर सवार होनेवाले आपको नमस्कार है। आप केयूरधारीको प्रणाम है। अत्यन्त ऊँचाईपर फहरानेवाली पताकाको धारण करनेवाले आपको अभिवादन है। प्रणतजनोंपर प्रभाव डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप सर्वश्रेष्ठ पराक्रमसे सम्पन्न हैं। आपको बारंबार प्रणाम है। मनोहर रूपधारिन् ! हमलोगोंपर कृपा कीजिये। इस प्रकार देवराज इन्द्र आदि सभी क्रियापरायण देवगण जब हर्षपूर्वक यज्ञपति षड्गननकी स्तुति करके चुप हो गये, तब परम प्रसन्न हुए गुह अपने निर्मल नेत्रोंसे उन सुरेश्वरोंकी ओर निहारकर बोले—‘देवगण ! मैं आपलोगोंके शत्रुओंका संहार करूँगा, अब आपलोग शोकरहित हो जायँ’॥ १३—१८॥

कुमारने पूछा—देवगण ! आपलोग निःसंकोच बतलायें कि मैं आपलोगोंकी कौन-सी अभिलाषा पूर्ण करूँ ? वह उत्तम अभिलाषा, जिसे आपलोगोंने अपने हृदयमें चिरकालसे सोच रखा है, यदि दुःसाध्य भी होगी तो भी मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। कुमारद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सभी देवता उनके मनोऽनुकूल हो सिर झुकाकर महात्मा गुहसे बोले—‘भय-विनाशक गुह ! तारक नामवाले दैत्येन्द्रने सभी देवकुलोंका विनाश कर दिया है। वह बलवान्, दुर्जय, अत्यन्त दुष्ट, दुराचारी और अतिशय क्रोधी है, आप उसीका वध कीजिये। यही हमलोगोंकी हार्दिक अभिलाषा है।’

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः ।
जगाम जगतां नाथः स्तूयमानोऽमरेश्वरैः ॥ २२
तारकस्य वधार्थाय जगतः कण्टकस्य वै ।
ततश्च प्रेषयामास शक्रो लब्धसमाश्रयः ॥ २३
दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम् ।
स तु गत्वाब्रवीद् दैत्यं निर्भयो भीमदर्शनः ॥ २४

दूत उवाच

शक्रस्त्वामाह देवेशो दैत्यकेतो दिवस्पतिः ।
तारकासुर तच्छ्रुत्वा घट शक्त्या यथेच्छया ॥ २५
यज्जगददलनादासं किल्बिषं दानव त्वया ।
तस्याहं शासकस्तेऽद्य राजास्मि भुवनत्रये ॥ २६
श्रुत्वैतद् दूतवचनं कोपसंरक्षलोचनः ।
उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ॥ २७

तारक उवाच

दृष्टं ते पौरुषं शक्र रणेषु शतशो मया ।
निस्त्रपत्वात्र ते लज्जा विद्यते शक्र दुर्मते ॥ २८
एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः ।
नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेवं हि चार्हति ॥ २९
जितः स शक्रो नाकस्माज्जायते संश्रयाश्रयः ।
निमित्तानि च दुष्टानि सोऽपश्यद् दुष्टचेष्टितः ॥ ३०
पांशुवर्षमसुक्ष्यातं गगनादवनीतले ।
भुजनेत्रप्रकम्पं च वक्त्रशोषं मनोभ्रमम् ॥ ३१
स्वकान्तावक्त्रपदमानां म्लानतां च व्यलोकयत् ।
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान्सोऽपन्यद् दुष्टवेदिनः ॥ ३२
तदचिन्त्यैव दितिजो न्यस्तचिन्तोऽभवत् क्षणात् ।
यावदगजघटाघटारणत्काररवोत्कटाम् ॥ ३३

तद्वत्तुरगसङ्गातक्षुण्णभूरेणुपिञ्चराम् ।
चञ्चलस्यन्दनोदग्रध्वजराजिविरजिताम् ॥ ३४

देवताओंद्वारा ऐसा निवेदन किये जानेपर गुहने 'तथैति' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् वे जगत्राथ गुह देवेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए सम्पूर्ण देवगणोंके साथ जगत्के कण्टकस्वरूप तारकका वध करनेके लिये प्रस्थित हुए। तदुपरान्त सहायक उपलब्ध हो जानेपर इन्द्रने एक कठोर वचन बोलनेवाले दूतको दैत्यसिंह तारकके पास भेजा। वह भयंकर रूपधारी दूत दैत्यराजके पास जाकर निर्भय होकर बोला ॥१९—२४॥

दूतने कहा—दैत्यकेतु तारकासुर ! स्वर्गके अधीश्वर देवराज इन्द्रने तुम्हें कुछ संदेश कहला भेजा है, उसे सुनकर तुम शक्तिपूर्वक स्वेच्छानुसार प्रयत्न करो। (उन्होंने कहलाया है कि) 'दानव ! जगत्का विनाश करके तुमने जो पाप कमाया है, तुम्हारे उस पापका शासन करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूँ। इस समय मैं त्रिभुवनका राजा हूँ।' दूतकी ऐसी बात सुनकर तारकके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उसकी विभूति प्रायः नष्ट हो चुकी थी। तब उस दुष्टात्माने दूतसे कहा ॥२५—२७॥

तारक बोला—इन्द्र ! मैंने रणभूमिमें सैकड़ों बार तुम्हारे पुरुषार्थको देख लिया है। दुर्बुद्धि इन्द्र ! निर्लज्ज होनेके कारण तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा नहीं आती। ऐसा उत्तर पाकर दूतके चले जानेपर दानवराज तारक विचार करने लगा कि किसी विशिष्टकी सहायता प्राप्त हुए बिना इन्द्र इस तरहकी बातें नहीं कह सकते; क्योंकि वे हमसे पराजित हो चुके हैं। पता नहीं, अकस्मात् उन्हें कहाँसे सहायता उपलब्ध हो गयी है। इसी बीच उस दुष्ट चेष्टावाले दानवको अनर्थसूचक निमित्त दीख पड़े। उसी समय आकाशसे भूतलपर धूलकी वर्षा होने लगी तथा रक्षपात होने लगा। उसकी भुजाएँ और नेत्र काँपने लगे। उसका मुख सूख गया और उसके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। उसे अपनी पल्लियोंके मुखकमल मलिन दीख पड़ने लगे तथा अनर्थकी सूचना देनेवाले भयंकर दुष्ट प्राणियोंके दर्शन हुए, किंतु इन सबका कुछ भी विचार न कर दैत्य तारक क्षणभरमें ही चिन्तारहित हो गया। इतनेमें ही अट्टालिकापर बैठे हुए दैत्यने आती हुई देवताओंकी सेनाको देखा जिसमें गजयूथोंके बजते हुए घंटोंका उत्कट शब्द हो रहा था। उसी प्रकार जो घोड़ोंकी टापोंसे पिसी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण पीली दीख रही थी तथा चलते हुए रथोंके ऊपर फहराते हुए ध्वजसमूहों,

विमानैश्वादभुताकारैश्वलितामरचामैः ।
 तां भूषणनिबद्धां च किंनरोद्गीतनादिताम् ॥ ३५
 नानानाकतस्त्वुल्लकुसुमापीडधारिणीम् ।
 विकोशास्त्रपरिष्कारां वर्मनिर्मलदर्शनाम् ॥ ३६
 बन्धुद्युष्टस्तुतिरवां नानावाद्यनिनादिताम् ।
 सेनां नाकसदां दैत्यः प्रासादस्थो व्यलोकयत् ॥ ३७
 चिन्तयामास स तदा किंचिदुद्भान्तमानसः ।
 अपूर्वः को भवेद् योद्धा यो मया न विनिर्जितः ॥ ३८
 ततश्चिन्ताकुलो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम् ।
 सिद्धवन्दिभिरुद्युष्टमिदं हृदयदारणम् ॥ ३९

अथ गाथा

जयातुलशक्तिदीधितिपिञ्जर
 भुजदण्डचण्डरणरभस ।
 सुखद कुमुदकाननविकासनेन्दो कुमार
 जय दितिजकुलमहोदधिवडवानल ॥ ४०
 षण्मुख मधुरवमयूररथ
 सुरमुकुटकोटिधृतिचरणनखाङ्कुरमहासन ।
 जय ललितचूडाकलापनविमलदल-
 कमलकान्त दैत्यवंशदुःसहदावानल ॥ ४१
 जय विशाख विभो जय
 सकललोकतारक जय देवसेनानायक ।
 स्कन्द जय गौरीनन्दन घण्टाप्रिय
 प्रिय विशाख विभो धृतपताकप्रकीर्णपटल ।
 कनकभूषण भासुरदिनकरच्छाय ॥ ४२
 जय जनितसम्भ्रम लीलालूनाखिलाराते
 जय सकललोकतारक दितिजा सुरवर तारकान्तक ।
 स्कन्द जय बाल सप्तवासर
 जय भूवनावलिशोकविनाशन ॥ ४३ ।

इति श्रीमात्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे रणोद्योगे नामैकोनष्ठुष्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें रणोद्योग नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५९ ॥

हुलाये जाते हुए देवताओंके चँवरों और अद्भुत आकारवाले विमानोंसे सुशोभित थी । जो आभूषणोंसे विभूषित, किन्नरोंके गानसे निनादित, नाना प्रकारके स्वर्गीय वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंको मस्तकपर धारण करनेवाले सैनिकोंसे युक्त, म्यानरहित शस्त्रास्त्रोंसे परिष्कृत और निर्मल कवचोंसे युक्त थी, जिसमें वन्दियोंद्वारा गायी जाती हुई स्तुतियोंके शब्द सुनायी पड़ रहे थे और जो नाना प्रकारके बाजोंसे निनादित हो रही थी ॥ २८—३७ ॥

उसे देखकर तारकका मन कुछ उद्भ्रान्त हो उठा । तब वह विचार करने लगा कि यह कौन अपूर्व योद्धा हो सकता है, जिसे मैंने पराजित नहीं किया है । इस प्रकार वह दैत्य जब चिन्तासे व्याकुल हो रहा था, उसी समय उसने सिद्ध-वन्दियोंद्वारा गायी जाती हुई यह कठोर अक्षरोंवाली एवं हृदयविदारणी गाथा सुनी ॥ ३८-३९ ॥

कुमार ! अप्रमेय शक्तिकी किरणोंसे आपका वर्ण पीला हो गया है । आप अपने भुजदण्डोंसे प्रचण्ड युद्धका दृश्य उत्पन्न कर देनेवाले, भक्तोंके लिये सुखदायक, कुमुदिनीके बनको विकसित करनेके लिये चन्द्रमा और दैत्यकुलरूप महासागरके लिये बड़वानलके समान हैं, आपकी जय हो, जय हो । षण्मुख ! मधुर शब्द करनेवाला मयूर आपका वाहन है, आपका सिंहासन देवताओंके मुकुटोंकी कोरसे संघटित चरणनखोंके अङ्कुरसे सुशोभित होता है, आपका रुचिर चूडासमूह नूतन एवं निर्मल कमलदलके सम्मेलनसे सुशोभित होता है, आप दैत्यवंशके लिये दुःसह दावानलके समान हैं, आपकी जय हो । ऐश्वर्यशाली विशाख ! आपकी जय हो । आप सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेवाले हैं, आपकी जय हो । देवसेनाके नायककी जय हो । स्कन्द ! आप गौरीनन्दन और घंटाके प्रेमी हैं । ऐश्वर्यशाली प्रिय विशाख ! आप हाथमें पताकासमूह धारण करनेवाले हैं और आपकी छवि स्वर्णमय आभूषण धारण करनेसे सूर्यके समान चमकीली है, आपकी जय हो । आप भय उत्पन्न करनेवाले और लीलापूर्वक सम्पूर्ण शत्रुओंके विनाशकर्ता हैं, आपकी जय हो । आप सम्पूर्ण लोकोंके उद्धारक तथा असुरवर दैत्य तारकके विनाशकारक हैं, आपकी जय हो । सप्तदिवसीय बालक स्कन्द । आप समस्त भुवनोंके शोकका विनाश करनेवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो ॥ ४०—४३ ॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

तारकासुर और कुमारका भीषण युद्ध तथा कुमारद्वारा तारकका वध

सूत उवाच

श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देववन्दिभिः ।
 सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम् ॥ १
 स्मृत्वा धर्मं ह्यवर्माङ्गः पदातिरपदानुगः ।
 मन्दिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा ॥ २
 कालनेमिमुखा दैत्याः संरम्भाद् भ्रान्तचेतसः ।
 योधा धावत गृहीत योजयध्वं वस्तुथिनीम् ॥ ३
 कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः ।
 किं बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया ॥ ४
 त्वया न दानवा दृष्ट्वा यत्सङ्गरविभीषकाः ।
 बालत्वादथ ते बुद्धिरेवं स्वल्पार्थदर्शिनी ॥ ५
 कुमारोऽपि तपग्रस्थं बभाषे हर्षयन् सुरान् ।
 शृणु तारक शास्त्रार्थस्तव चैव निरूप्यते ॥ ६
 शास्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समये निर्भयैर्भटैः ।
 शिशुत्वं मावमंस्था मे शिशुः कालभुजङ्गमः ॥ ७
 दुष्ग्रेक्ष्यो भास्करो बालस्तथाहं दुर्जयः शिशुः ।
 अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सुस्फुरो दैत्य दृश्यते ॥ ८
 कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यशिक्षेप मुद्ररम् ।
 कुमारस्तं निरस्याथ वज्रेणामोघवर्चसा ॥ ९
 ततश्छिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम् ।
 करेण तच्च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा ॥ १०
 गदां मुमोच दैत्याय षण्मुखोऽपि खरस्वनाम् ।
 तया हतस्ततो दैत्यश्वकम्पेऽचलराडिव ॥ ११
 मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे ।
 चिन्तयामास बुद्ध्या वै प्राप्तः कालो न संशयः ॥ १२

सूतजी कहते हैं—त्रिष्णियो ! देववन्दियोंद्वारा उद्घोषित वह सारा प्रसङ्ग सुनकर तारकको ब्रह्मद्वारा कही हुई बालकके हाथसे वध होनेवाली बातका स्मरण हो आया । तब वह कालधर्मका स्मरण कर कवचरहित अवस्थामें अकेले पैदल ही तुरंत अपने भवनसे बाहर निकल पड़ा । उस समय उसका चित्त शोकसे ग्रस्त था । उसने पुकारकर कहा—‘अरे कालनेमि आदि प्रमुख दैत्य योद्धाओ ! यद्यपि आतुरतावश तुमलोगोंका चित्त उद्भ्रान्त हो उठा है, तथापि तुमलोग दौड़ो, इसे पकड़ लो और इस सेनाके साथ युद्ध करो ।’ तत्पश्चात् भयंकर आकृतिवाला तारक कुमारको देखकर बोला—‘अरे बच्चे ! क्या तुम युद्ध करना चाहते हो ? यदि ऐसी बात है तो आओ और कन्दुकक्रीडाकी तरह खेलो । तुमने अभीतक रणभूमिमें भय उत्पन्न करनेवाले दानवोंको नहीं देखा है । बालक होनेके कारण तुम्हारी बुद्धि इस प्रकारके छोटे-मोटे प्रयोजनोंको देखनेवाली है अर्थात् दूरदर्शिनी नहीं है ।’ यह सुनकर कुमार भी देवताओंको हर्षित करते हुए आगे खड़े हुए तारकसे बोले—‘तारक ! सुनो, मैं तुम्हारे शास्त्रीय अर्थका निरूपण कर रहा हूँ । निर्भीक योद्धा समरभूमिमें शास्त्रीय प्रयोजनको नहीं देखते । तुम मेरे बालकपनकी अवहेलना मत करो । जैसे साँपका बच्चा कष्टकारक होता है और उदयकालीन सूर्यकी ओर भी नहीं देखा जा सकता, उसी तरह मैं दुर्जय बालक हूँ । दैत्य ! थोड़े अक्षरोंवाला मन्त्र क्या महान् स्फूर्तिदायक नहीं देखा जाता ?’ ॥ १—८ ॥

कुमार इस प्रकारकी बातें कह ही रहे थे कि दैत्यने उनपर मुद्रसे आघात किया । तब कुमारने अपने अमोघ वर्चस्वी वज्रसे उसे निरस्त कर दिया । तत्पश्चात् दैत्येन्द्रने उन पर लोहनिर्मित भिन्दिपाल चलाया, किंतु देवशत्रुओंका विनाश करनेवाले कार्तिकेयने उसे हाथसे पकड़ लिया । फिर षडाननने उस दैत्यके ऊपर घोर शब्द करती हुई गदा फेंकी । उस गदासे आहत हो वह दैत्य पर्वतराजकी तरह काँप उठा । तब उस दैत्यने षडाननको रणभूमिमें अजेय मान लिया और वह बुद्धिसे विचार करने लगा कि निश्चय ही मेरा काल आ पहुँचा है ।

कुपितं तु यमालोक्य कालनेमिपुरोगमाः ।
 सर्वे दैत्येश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम् ॥ १३
 स तैः प्रहौरैरस्पृष्टो वृथाक्लेशो महाद्युतिः ।
 रणशौण्डास्तु दैत्येन्द्राः पुनः प्रासैः शिलीमुखैः ॥ १४
 कुमारं सामरं जघ्नुर्बलिनो देवकण्टकाः ।
 कुमारस्य व्यथा नाभूद् दैत्यास्त्रनिहतस्य तु ॥ १५
 प्राणान्तकरणो जातो देवानां दानवाहवः ।
 देवान्निपीडितान् दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत् ॥ १६
 ततोऽस्त्रैर्वारयामास दानवानामनीकिनीम् ।
 ततस्तर्निष्ठतीकारैस्ताडिताः सुरकण्टकाः ॥ १७
 कालनेमिमुखाः सर्वे रणादासन् पराङ्मुखाः ।
 विद्रुतेष्वथ दैत्येषु हतेषु च समंततः ॥ १८
 ततः कुद्धो महादैत्यस्तारकोऽसुरनायकः ।
 जग्राह च गदां दिव्यां हेमजालपरिष्कृताम् ॥ १९
 जघ्ने कुमारं गदया निष्टप्तकनकाङ्गदः ।
 शरैर्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखान् सुरान् ॥ २०
 तथा परैर्महाभल्लैर्मयूरं गुहवाहनम् ।
 विभेद तारकः कुद्धः स सैन्येऽसुरनायकः ॥ २१
 दृष्ट्वा पराङ्मुखान् देवान् मुक्तरक्तं स्ववाहनम् ।
 जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम् ॥ २२
 बाहुना हेमकेयूररुचिरेण घडाननः ।
 ततो जवान्महासेनस्तारकं दानवाधिपम् ॥ २३
 तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्बुद्धे जीवलोकं विलोकय ।
 हतोऽस्यद्य मया शक्त्या स्मर शास्त्रं सुशिक्षितम् ॥ २४
 इत्युक्त्वा च ततः शक्तिं मुमोच दितिजं प्रति ।
 सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा ।
 विभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्रकर्कशम् ॥ २५
 गतासुः स पपातोव्या प्रलये भूधरो यथा ।
 विकीर्णमुकुटोष्णीषो विस्वस्ताखिलभूषणः ॥ २६

तदनन्तर रणमें भीषण कार्य करनेवाले उन कुमारको कुद्ध देखकर कालनेमि आदि सभी दैत्येश्वर उनपर प्रहार करने लगे, परंतु उन प्रहारोंका परम कान्तिमान् कुमारपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उनका शस्त्रास्त्र छोड़नेका श्रम व्यर्थ हो गया। पुनः युद्धनिपुण, देवकण्टक महाबली दैत्येन्द्र देवताओंसहित कुमारपर भाले और बाणोंसे प्रहार करने लगे। इस प्रकार दैत्यास्त्रोंद्वारा प्रहार करनेपर भी कुमारको कुछ भी पीड़ा न हुई। पर दानवोंका वह युद्ध जब देवताओंके लिये प्राणधातक-सा दीखने लगा, तब देवताओंको अत्यन्त पीड़ित देख कुमार कुद्ध हो उठे। फिर तो उन्होंने अपने अस्त्रोंके प्रहारसे दानवोंकी सेनाको खदेड़ दिया। उन अनिवार्य अस्त्रोंकी चोटसे कालनेमि आदि सभी देवकण्टक दानव घायल हो गये, तब वे युद्धसे विमुख हो भाग खड़े हुए ॥ ९—१७ ॥

तदनन्तर चारों ओर दैत्योंके इस प्रकार मारे जाने एवं पलायन कर जानेपर असुरनायक महादैत्य तारक क्रोधमें भर गया। तब तपाये हुए स्वर्णके बने हुए बाजूबंदको धारण करनेवाले उस दैत्यने स्वर्णसमूहसे विभूषित अपनी दिव्य गदा हाथमें ली और उस गदासे कुमारपर प्रहार किया। फिर मोर-पंखसे सुशोभित बाणोंके आधातसे देवताओंको युद्ध-विमुख कर दिया। तदुपरान्त क्रोधसे भरे हुए असुरनायक तारकने उस सेनामें दूसरे भल्ल नामक विशाल बाणोंसे गुहके वाहन मयूरको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार रणभूमिमें देवताओंको युद्धविमुख और अपने वाहन मयूरको खून उगलते देखकर घडानने वेगपूर्वक अपने स्वर्णनिर्मित केयूरसे विभूषित हाथमें स्वर्णजटित निर्मल शक्ति ग्रहण की। तत्पश्चात् देव-सेनानायक कुमार दानवेश्वर तारकको ललकारते हुए बोले—‘सुदुर्बुद्धे! खड़ा रह, खड़ा रह और जीवलोककी ओर दृष्टिपात कर ले। अपने भलीभौति सीखे हुए शस्त्रका स्मरण कर ले। अब तू मेरी शक्तिद्वारा मारा जा चुका।’ ऐसा कहकर उन्होंने उस दैत्यपर अपनी शक्ति छोड़ दी। कुमारके हाथसे छूटी हुई उस शक्तिने उनके केयूरके शब्दका अनुगमन करती हुई आगे बढ़कर उस दैत्यके हृदयको, जो वज्र और पर्वतके समान अत्यन्त कठोर था, विदीर्ण कर दिया। फिर तो वह प्राणरहित हो भूतलपर उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे प्रलयकालमें पर्वत धराशायी हो जाते हैं। उसकी पगड़ी और मुकुट छिन्न-भिन्न हो गये और सारे आभूषण पृथ्वीपर बिखर गये ॥ १८—२६ ॥

तस्मिन् विनिहते दैत्ये त्रिदशानां महोत्सवे ।
नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत् ॥ २७
स्तुवन्तः षण्मुखं देवाः क्रीडन्तश्चाङ्गनायुताः ।
जगमुः स्वानेव भवनान् भूरिधामान उत्सुकाः ॥ २८
ददुश्चापि वरं सर्वे देवाः स्कन्दमुखं प्रति ।
तुष्टाः सम्प्राप्तसर्वेच्छाः सह सिद्धैस्तपोधनैः ॥ २९

देवा ऊचुः

यः पठेत् स्कन्दसम्बद्धां कथां मत्यो महामतिः ।
शृणुयाच्छावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान्नरः ॥ ३०
ब्रह्मायुः सुभगः श्रीमान् कान्तिमाञ्छुभदर्शनः ।
भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः ॥ ३१
संध्यामुपास्य यः पूर्वा स्कन्दस्य चरितं पठेत् ।
स मुक्तः किल्बिषैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत् ॥ ३२
बालानां व्याधिजुष्टानां राजद्वारं च सेवताम् ।
इदं तत्परमं दिव्यं सर्वदा सर्वकामदम् ।
तनुक्षये च सायुज्यं षण्मुखस्य व्रजेन्नरः ॥ ३३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकवधो नाम षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तारकवध नामक एक सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६० ॥

इस प्रकार उस दैत्यके मारे जानेपर देवताओंके उस महोत्सवके अवसरपर नरकोंमें भी कोई पापकर्मा प्राणी दुःखी नहीं था । परम तेजस्वी देवगण षडाननकी स्तुति करके अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित क्रीडा करते हुए उत्सुकतापूर्वक अपने-अपने गृहोंको चले गये । सभी इच्छाओंकी पूर्ति हो जानेके कारण सभी देवता परम संतुष्ट थे । वे जाते समय तपोधन सिद्धोंके साथ स्कन्दको वर देते हुए बोले ॥ २७—२९ ॥

देवताओंने कहा—जो महाबुद्धिमान् मरणधर्मा मनुष्य स्कन्दसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा दूसरेको सुनायेगा, वह कीर्तिमान्, दीर्घायु, सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, शुभदर्शन, सभी प्राणियोंसे निर्भय और सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित हो जायगा । जो मनुष्य प्रातःकालिक संध्याकी उपासना करनेके बाद स्कन्दके चरित्रका पाठ करेगा वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर महान् धनराशिका स्वामी होगा । यह परम दिव्य स्कन्द-चरित बालकों, रोगियों और राजद्वारपर सेवा करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वदा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । इसका पाठ करनेवाला मनुष्य शरीरान्त होनेपर षडाननकी सायुज्यताको प्राप्त हो जायगा ॥ ३०—३३ ॥

एक सौ एकसठवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्मद्वारा उसे वरप्राप्ति, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, विष्णुद्वारा देवताओंको अभ्यदान, भगवान् विष्णुका नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुकी विचित्र सभामें प्रवेश

ऋष्य ऊचुः

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ॥ १
सूत उवाच

पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्वकार स महत्पः ॥ २
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब हमलोग दानवराज हिरण्यकशिपुका वध तथा भगवान् नरसिंहके पापविनाशक माहात्म्यको सुनना चाहते हैं (आप उसे हमें सुनाइये) ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो ! पूर्वकालमें कृतयुगमें दैत्योंके आदि पुरुष सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुने महान् तप किया । उसने स्नान और मौनका व्रत धारण करके ग्यारह हजार वर्षोंतक जलमें निवास किया ।

ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च॥ ४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥ ५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः॥ ६
दिग्भृश्चैव विदिग्भृश्च नदीभिः सागरैस्तथा।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥ ७
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्थं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥ ८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥ ९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टुं काममाप्नुहि॥ १०

हिरण्यकशिपुरुच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मा देवसत्तम॥ ११
ऋषयो वा न मां शापैः शपेयुः प्रपितामह।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतो मया॥ १२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाथ वा॥ १३
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश॥ १४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः॥ १५

ब्रह्मोच

एते दिव्या परास्तात मया दत्तास्तवाद्गुताः।
सर्वान्कामान्सदा वत्स प्राप्त्यसे त्वं न संशयः॥ १६
एवमुक्त्वा स भगवाञ्चगामाकाश एव हि।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ १७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः॥ १८

तब उसके मनःसंयम, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, तपस्या और नियमपालनसे ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् ब्रह्मा सूर्यके समान तेजस्वी एवं चमकीले विमानपर, जिसमें हंस जुते हुए थे, सवार होकर आदित्यों, वसुओं, साध्यों, मरुदण्डों, देवताओं, रुद्रों, विश्वेदेवों, यक्षों, राक्षसों, नागों, दिशाओं, विदिशाओं, नदियों, सागरों, नक्षत्रों, मुहूर्तों, आकाशचारी महान् ग्रहों, देवगणों, ब्रह्मर्षियों, सिद्धों, सप्तर्षियों, पुण्यकर्मा राजर्षियों, गन्धर्वों और अप्सराओंके गणोंके साथ वहाँ आये। तदुपरान्त सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचरगुरु श्रीमान् ब्रह्मा उस दैत्यसे इस प्रकार बोले—‘सुव्रत! तुम-जैसे भक्तकी इस तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम यथेष्ट वर माँग लो और अपना मनोरथ सिद्ध करो’॥ २—१०॥

हिरण्यकशिपु बोला—देवसत्तम! देवता, असुर गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य अथवा पिशाच—ये कोई भी मुझे न मार सकें। प्रपितामह! ऋषिगण अपने शापोंद्वारा मुझे अभिशस न कर सकें। न अस्त्रसे, न शस्त्रसे, न पर्वतसे, न वृक्षसे, न शुष्क पदार्थसे, न गीले पदार्थसे, न दिनमें, न रातमें—अर्थात् कभी भी अथवा किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसों दिशाएँ क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यम, धनाध्यक्ष कुबेर और किम्पुरुषोंका अधीश्वर यक्ष हो जाऊँ। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही वर माँग रहा हूँ॥ ११—१५॥

ब्रह्माने कहा—तात! मैंने तुम्हें इन दिव्य एवं अद्भुत वरदानोंको प्रदान कर दिया। वत्स! तुम सदा सभी मनोरथोंको प्राप्त करते रहोगे, इसमें संशय नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाशमार्गसे ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित अपने वैराज नामक निवासस्थानको चले गये। तदनन्तर ऋषियोंसहित देवता, नाग और गन्धर्व इस प्रकारके वरप्रदानकी बात सुनते ही पितामहके पास पहुँचे (और बोले)॥ १६—१८॥

देवा ऊचुः

वरप्रदानाद् भगवन् वधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ १९
भगवन् सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
स्वष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः ॥ २०
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुधिः ॥ २१
अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसान्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥ २२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रजग्मुर्दुदान्विताः ॥ २३
लब्ध्यमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्देत्यो वरदानेन दर्पितः ॥ २४
आश्रमेषु महाभागान् स मुनीज्ञंसितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामास दानवः ॥ २५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥ २६
यदा वरमदोत्सक्तश्चोदितः कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद् दैत्यानयज्ञियाश्च देवताः ॥ २७
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणा यक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ॥ २८
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥ २९

देवा ऊचुः

नारायण महाभाग देवास्त्वां शरणं गताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ॥ ३०
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥ ३१

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाप्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ॥ ३२

देवताओंने कहा—भगवन्! आपके इस वरप्रदानसे वह असुर हमलोगोंका वध कर डालेगा। अतः प्रभो! कृपा कीजिये और शीघ्र ही उसके वधका भी उपाय सोचिये। भगवन्! आप स्वयं सम्पूर्ण प्राणियोंके आदिकर्ता, स्वामी, हव्य एवं कव्यके स्त्रष्टा, अव्यक्तप्रकृति और सर्वज्ञ हैं। देवताओंके समस्त लोकोंके लिये हितकारक ऐसे वचनको सुनकर प्रजापति ब्रह्माने अपने परम शीतल वचनरूपी जलसे देवताओंको संसिक्त एवं आश्रस्त करते हुए बोले—‘देवगण! उसे अपनी तपस्याका फल तो अवश्य ही मिलना चाहिये। हाँ, तपस्याके पुण्यफलके समाप्त हो जानेपर भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे।’ कमलजन्मा ब्रह्माकी वह बात सुनकर सभी देवता हर्षपूर्वक अपने-अपने दिव्य स्थानोंको लौट गये। १९—२३ ॥

उधर वर प्राप्त होते ही उस वरदानसे गर्वित हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु सभी प्रजाओंको कष्ट देना प्रारम्भ किया। उस दानवने आश्रमोंमें जाकर उन महान् भाग्यशाली मुनियोंको, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, सत्यधर्म-परायण और जितेन्द्रिय थे, धर्षित कर दिया। उस महान् असुरने त्रिभुवनमें स्थित सभी देवताओंको पराजित कर दिया। तब वह दानव त्रिलोकीको अपने अधीन करके स्वर्गमें निवास करने लगा। इस प्रकार कालधर्मकी प्रेरणासे जब उसने वरदानके मदसे उन्मत्त हो दैत्योंको यज्ञभागका अधिकारी बनाया और देवताओंको उनके समुचित यज्ञभागोंसे वञ्चित कर दिया, तब आदित्यगण, साध्यगण, विश्वेदेव, वसुगण, इन्द्रसहित देवगण, यक्ष, सिद्धगण और महर्षिगण—ये सभी उन महाबली विष्णुकी शरणमें गये, जो शरणदाता, देवाधिदेव, यज्ञमूर्ति, वसुदेवके पुत्र और अविनाशी हैं। २४—२९ ॥

देवताओंने कहा—महाभाग्यशाली नारायण! हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। प्रभो! आप दैत्यराज हिरण्यकशिपुका वध कीजिये। सुरोत्तम! आप ही हमलोगोंके परम पालक हैं, आप ही हमलोगोंके सर्वोक्तृष्ट गुरु हैं और आप ही हम ब्रह्म आदि देवताओंके परम देव हैं। ३०—३१ ॥

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! तुमलोग भय छोड़ दो। मैं तुमलोगोंको अभयदान दे रहा हूँ। पहलेकी तरह पुनः तुमलोगोंका शीघ्र ही स्वर्गपर अधिकार हो जायगा।

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्।
अवध्यममेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्॥ ३३

एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान्।
वधं संकल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः॥ ३४

साहाय्यं च महाबाहुरोङ्कारं गृह्ण सत्वरम्।
अथोंकारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः॥ ३५

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्यैव चापरः॥ ३६

नरस्य कृत्वार्थतनुं सिंहस्यार्थतनुं तथा।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना॥ ३७

ततोऽपश्यत विस्तीर्णा दिव्यां रम्यां मनोरमाम्।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम्॥ ३८

विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्धमायताम्।
वैहायसीं कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम्॥ ३९

जराशोकक्लमापेतां निष्ठ्रकम्पां शिवां सुखाम्।
वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा॥ ४०

अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा।
दिव्यरत्नमयैर्वैक्ष्यैः फलपुष्पप्रदैर्युताम्॥ ४१

नीलपीतसितश्यामैः कृष्णौलोहितकैरपि।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतथारिभिः॥ ४२

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा॥ ४३

सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च धर्मदा।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति ते॥ ४४

नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरतिभास्वरैः।
सतम्भैर्न बिभृता सा वै शाश्वती चाक्षणा सदा॥ ४५

अति चन्द्रं च सूर्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा।
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयन्तीव भास्करान्॥ ४६

मैं सेनासहित उस दानवराज दैत्यका, जो वरदानकी प्राप्तिसे गर्वीला और देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो गया है, वध करूँगा। ऐसा कहकर महाबाहु भगवान् विष्णुने देवेश्वरोंको विदा कर दिया और स्वयं शीघ्रतापूर्वक ओंकारको (सहायकरूपमें) साथ लेकर हिरण्यकशिपुके वधका विचार करने लगे। तदनन्तर जो सर्वव्यापक, अविनाशी, परमेश्वर, सूर्यके समान तेजस्वी और दूसरे चन्द्रमाके-से कान्तिमान् थे, वे भगवान् श्रीहरि ओंकारको साथ लेकर हिरण्यकशिपुके स्थानपर गये। उस समय वे आधा मनुष्यका और आधा सिंहका शरीर धारण कर नरसिंहरूपसे स्थित हो हाथसे हाथ मल रहे थे। तदनन्तर उन्होंने हिरण्यकशिपुकी चमकती हुई दिव्य सभा देखी, जो विस्तृत, अत्यन्त रुचिर, मनको लुभानेवाली और सम्पूर्ण अभिलिष्ट पदार्थोंसे युक्त थी। सौं योजनके विस्तारमें फैली हुई वह सभा पचास योजन लम्बी और पाँच योजन चौड़ी थी। वह स्वेच्छानुसार आकाशमें उड़नेवाली तथा बुढ़ापा, शोक और थकावटसे रहित, निश्चल, कल्याणकारिणी, सुखदायिनी और परम रमणीय थी। उसमें अद्वालिकाओंसे युक्त भवन बने थे और वह तेजसे प्रज्वलित-सी हो रही थी॥ ३२—४०॥

उसके भीतर जलाशय थे। वह फल-पुष्प प्रदान करनेवाले दिव्य रत्नमय वृक्षोंसे संयुक्त थी। उसे विश्वकर्मने बनाया था। वह नीले, पीले, श्वेत, श्याम, कृष्ण और लोहित रंगके आवरणों और सैकड़ों मंजरियोंसे युक्त गुल्मोंसे आच्छादित होनेके कारण क्षेत्र बादलकी तरह उड़ती हुई-सी दीख रही थी। उसमेंसे किरणें फूट रही थीं। वह चमकीली और दिव्य गन्धसे युक्त होनेके कारण मनोरम थी। वह सर्वथा सुखदायिनी थी। उसमें दुःख, सर्दी और धूपका नाम-निशान नहीं था। उसमें पहुँचकर दानवोंको भूख-प्यास और ग्लानिकी प्राप्ति नहीं होती थी। वह चित्र-विचित्र रंगवाले एवं अत्यन्त चमकीले नाना प्रकारके खम्भोंसे युक्त थी, परंतु उन खम्भोंपर आधारित नहीं थी। वहाँ रात नहीं होती थी, अपितु निरन्तर दिन ही बना रहता था। वह अपनी प्रभासे सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका तिरस्कार कर रही थी तथा स्वर्गलोकमें स्थित होकर अनेकों सूर्योंको उद्घासित करती हुई-सी उद्दीप हो रही थी।

सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतं च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम् ॥ ४७

पुण्यगन्धस्वजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति च ॥ ४८

पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः ।
लतावितानसंछन्ना नदीषु च सरःसु च ॥ ४९

वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ॥ ५०
नातिशीतानि नोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च ।
अपश्यत् सर्वतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः ॥ ५१
नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः ।
रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संवृतानि च ॥ ५२
सुकान्तैर्धर्तिराङ्गैश्च राजहंसैश्च सुप्रियैः ।
कारण्डवैश्वक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि ॥ ५३
विमलैः स्फाटिकाभैश्च पाण्डुरच्छदनैर्द्विजैः ।
बहुहंसोपगीतानि सारसाभिरुतानि च ॥ ५४
गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्टमञ्जरिधारिणीः ।
दृष्टवान् पर्वताग्रेषु नानापुष्पधरा लताः ॥ ५५
केतक्यशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः ।
चूता नीपाः प्रस्थपुष्पाः कदम्बा बकुला ध्वाः ॥ ५६
प्रियङ्गुपाटलावृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रिकाः ।
सालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥ ५७
तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः ।
विद्रुमाश्च द्रुमाश्चैव ज्वलिताग्निसमप्रभाः ॥ ५८
स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्च्याः ।
अर्जुनाशोकवर्णाश्च बहवश्चित्रका द्रुमाः ॥ ५९
वरुणो वत्सनाभश्च पनसाः सह चन्दनैः ।
नीपाः सुमनसश्चैव निष्बा अश्वत्थतिन्दुकाः ॥ ६०
पारिजाताश्च लोधाश्च मल्लिका भद्रदारवः ।
आमलक्यस्तथा जम्बूलकुच्चाः शैलवालुकाः ॥ ६१

सभी प्रकारके मनोरथ, चाहे वे दिव्य हों या मानुष, सब-के-सब वहाँ प्रचुरमात्रामें उपलब्ध थे। वहाँ असंख्य प्रकारके अधिक-से-अधिक रसीले भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ और पुण्यगन्धमयी मालाएँ सुलभ थीं। वहाँके वृक्ष नित्य पुष्प और फल देनेवाले थे। वहाँका जल गर्मीमें शीतल और सर्दीमें उष्ण रहता था। वहाँ नदियों और सरोवरोंके तटपर बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष लगे थे, जिनके अग्रभागमें पुष्प खिले हुए थे और जो लाल-लाल पल्लवों और अङ्कुरोंसे सुशोभित एवं लतारूपी वितानसे आच्छादित थे। भगवान् नृसिंह वहाँ ऐसे अनेकों प्रकारके वृक्ष देखे, जो सुगन्धित पुष्पों और रसदार फलोंसे लदे हुए थे। वहाँ यत्र-तत्र सरोवर भी थे, जिनमें न तो अत्यन्त शीतल और न गरम जल भरा रहता था ॥ ४१—५० ३ ॥

भगवान् नृसिंहने उसकी सभामें सभी पुण्यक्षेत्रोंको भी देखा, जो सुगन्धयुक्त कमल, श्वेत कमल, लाल कमल, नील कमल और कुमुदिनी आदि पुष्पोंसे तथा अत्यन्त सुन्दर काली चोंच और काले पैरोंवाले हंसों, परमप्रिय लगनेवाले राजहंसों, बतखों, चक्रवाकों, सारसों, कराँकुलों एवं स्फटिककी-सी कान्तिवाले निर्मल और पीले पंखोंसे सुशोभित अन्यान्य पक्षियोंसे आच्छादित थे। उनमें बहुत-से हंस कूज रहे थे और सर्वत्र सारसोंकी बोली सुनायी पड़ती थी। भगवान् नृसिंहने पर्वत-शिखरोंपर पुष्पोंसे लदी हुई अनेकों प्रकारकी लताओंको भी देखा, जो सुन्दर मंजरियोंसे सुशोभित थीं और जिनसे मनोरम गन्ध फैल रही थी। उस सभामें केतकी, अशोक, सरल (चीड़), पुन्नाग, तिलक, अर्जुन, आम, नीप, प्रस्थपुष्प, कदम्ब, बकुल, धव, प्रियंगु, पाटल, शाल्मली, हरिद्रक, साल, ताल, तमाल, मनोरम चम्पक, विद्रुम तथा प्रज्वलित अग्निकी-सी कान्तिवाले अन्यान्य वृक्ष फूलोंसे लदे हुए शोभा पा रहे थे। वहाँ अर्जुन और अशोकके-से वर्णवाले मोटी-मोटी डालों एवं सुन्दर शाखाओंसे युक्त बहुत-से चित्रक (रेड या तिलक)-के वृक्ष थे, जिनकी ऊँचाई अनेकों तालवृक्षोंके बराबर थी। वहाँ वरुण, वत्सनाभ, कटहल, चन्दन, सुन्दर पुष्पोंसे युक्त नीप, नीम, पीपल, तिन्दुक, पारिजात, लोध, मल्लिका, भद्रदारु, आमला, जामुन, बड़हर, शैलबालुक,

खर्जूर्यो नारिकेलाश्च हरीतकविभीतकाः ।
 कालीयका द्रुकालाश्च हिङ्गवः पारियात्रकाः ॥ ६२
 मन्दारकुन्दलक्ताश्च पतङ्गाः कुटजास्तथा ।
 रक्ताः कुरण्टकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह ॥ ६३
 कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाढिमा बीजपूरकाः ।
 सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च मधुपैरावृतास्तथा ॥ ६४
 अशोकाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः ।
 मधूकाः सप्तपर्णाश्च बहवस्तीरगा द्रुमाः ॥ ६५
 लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ।
 एते चान्ये च बहवस्त्र काननजा द्रुमाः ॥ ६६
 नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समंततः ।
 चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ॥ ६७
 पुष्पिताः पुष्पिताग्रैश्च सम्पतन्ति महाद्रुमाः ।
 रक्तपीतारुणास्त्र पादपाग्रगताः खण्गाः ॥ ६८
 परस्परमवेक्षन्ते प्रहृष्टा जीवजीवकाः ।
 तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ ६९
 स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ।
 अनर्थमणिवज्रार्चिः शिखाञ्चलितकुण्डलः ॥ ७०
 आसीनश्वासने चित्रे दशनल्वप्रमाणतः ।
 दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ॥ ७१
 दिव्यगन्धवहस्त्र मारुतः सुसुखो वर्वौ ।
 हिरण्यकशिपुर्देत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः ॥ ७२
 उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ।
 दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥ ७३
 विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ।
 दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ॥ ७४
 मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रलेखा शुचिस्मिता ।
 चारुकेशी धृताची च मेनका चोर्वशी तथा ॥ ७५
 एताः सहस्रश्वान्या नृत्यगीतविशारदाः ।
 उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ ७६

खजूर, नारियल, हरीतक, विभीतक, कालीयक, द्रुकाल, हींग, पारियात्रक, मन्दार, कुन्द, लक्क, पतंग, कुटज, लाल कुरण्टक, अगुरु, कदम्ब, सुन्दर अनार, बिजौरा नींबू, सप्तपर्ण, बेल, भैंवरोंसे घिरे हुए अशोक, अनेकों गुल्मों और लताओंसे आच्छादित तमाल, महुआ और सप्तपर्ण आदि बहुत-से वृक्ष तटपर उगे हुए थे ॥ ५१—६५ ॥

वहाँ पत्र, पुष्प और फलसे सुशोभित अनेकों प्रकारकी लताएँ फैली हुई थीं। ये तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से जंगली वृक्ष नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे लदे हुए चारों ओर शोभा पा रहे थे। चकोर, शतपत्र (कठफोड़वा), मतवाली कोयल और मैना एक पुष्पित वृक्षके पल्लवसे उड़कर दूसरे पुष्पित महान् वृक्षपर बैठ रही थीं। वहाँ रक्त, पीत और अरुण वर्णवाले बहुतेरे पक्षी वृक्षोंके शिखरोंपर बैठे थे तथा चकोर प्रसन्न मनसे परस्पर एक-दूसरेकी ओर देख रहे थे। उसी सभामें उस समय दैत्यराज हिरण्यकशिपु सूर्यके समान चमकीले एवं दिव्य बिछौनोंसे आच्छादित एक दस नल्व* प्रमाणवाले रमणीय दिव्य सिंहासनपर आसीन था। वह विचित्र ढंगके आभूषणों और वस्त्रोंसे सुसज्जित तथा हजारों स्त्रियोंसे घिरा हुआ था। उसके कुण्डल बहुमूल्य मणियों और हीरेकी प्रभासे उद्घासित हो रहे थे। ऐसे उद्धीस कुण्डलोंसे विभूषित दैत्यराज हिरण्यकशिपु वहाँ विराजमान था। उस समय दिव्य गन्धसे युक्त परम सुखदायिनी वायु चल रही थी। परिचारकगण महादेत्य हिरण्यकशिपुकी सेवामें जुटे हुए थे। गन्धवश्रेष्ठ दिव्य तानद्वारा गीत अलाप रहे थे ॥ ६६—७३ ॥

उस समय विश्वाची, सहजन्या, सुविख्यात प्रम्लोचा, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुञ्जिकस्थली, मिश्रकेशी, रम्भा, पवित्र मुसकानवाली चित्रलेखा, चारुकेशी, धृताची, मेनका तथा उर्वशी—ये तथा अन्य हजारों नाचने-गानेमें निपुण अप्सराएँ सामर्थ्यशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी सेवामें उपस्थित थीं।

* चार सौ हाथका या किसी-किसीके मतसे एक सौ हाथका प्राचीन माप।

तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
 उपासते दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥ ७७
 तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः।
 बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः ॥ ७८
 प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्टश्च महासुरः।
 सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः ॥ ७९
 घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा।
 विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः ॥ ८०
 दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः।
 घटास्योऽकम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः ॥ ८१
 दैत्यदानवसङ्घाते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः।
 स्त्रिविणोवाग्निनः सर्वे सदैव चरितव्रताः ॥ ८२
 सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः।
 एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ ८३
 उपासन्ति महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः।
 विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजिमानैरिवाग्निभिः ॥ ८४
 महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः।
 भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः ॥ ८५
 तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः।
 हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकर समप्रभाः ॥ ८६
 न श्रुतं नैव दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्थथा।
 ऐश्वर्य दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः ॥ ८७
 कनकरजतचित्रवेदिकायां
 परिहतरलविचित्रवीथिकायाम् ।
 स दर्दश मृगाधिपः सभायां
 सुरचितरत्वगवाक्षशोभितायाम् ॥ ८८
 कनकविमलहारविभूषिताङ्गं
 दितितनयं स मृगाधिपो दर्दश ।
 दिवसकरमहाप्रभाज्वलन्तं
 दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ॥ ८९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भावे एकघट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नारसिंहप्रादुर्भावप्रसङ्गमें एक सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६१ ॥

अनुपम कर्म करनेवाले सामर्थ्यशाली महाबाहु हिरण्यकशिपुके वहाँ विराजमान होनेपर वरप्राप्तिवाले सैकड़ों-हजारों दैत्य उसकी सेवा करते रहते थे। बलि, विरोचन, भूमि-पुत्र नरक, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महान् असुर गविष्ट, सुरहन्ता, दुःखहन्ता, सुनामा, असुरश्रेष्ठ सुमति, घटोदर, महापाशर्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, सुरूप, महाबली स्वबल, दशग्रीव, वाली, महान् असुर मेघवासा, घटास्य, अकम्पन, प्रजन और इन्द्रतापन—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दैत्यों एवं दानवोंके समुदाय महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुकी सेवा कर रहे थे। उन सभीके कानोंमें चमकीले कुण्डल झलमला रहे थे और गलेमें माला शोभा पा रही थी। वे सभी बोलनेमें निपुण तथा सदा ब्रतका पालन करनेवाले थे। वे सभी शूरवीर, वरदानसे सम्पन्न, मृत्युरहित और दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित थे। वे अग्निके समान चमकीले विविध प्रकारके विमानोंसे सम्पन्न थे। उनके शरीर आभूषणोंसे विभूषित थे। उनकी भुजाओंपर विचित्र केयूर बँधा हुआ था और उनके शरीर महेन्द्रके समान सुन्दर थे। इस प्रकार वे दैत्य सब तरहसे हिरण्यकशिपुका उपासना कर रहे थे। उस दिव्य सभामें बैठनेवाले सभी असुर पर्वतके समान विशालकाय थे। उनका शरीर स्वर्णके समान चमकीला था और उनकी कान्ति सूर्यके समान थी। महान् आत्मबलसे सम्पन्न उस दैत्यसिंह हिरण्यकशिपुका जैसा ऐश्वर्य था, वैसा न कभी देखा गया था और न सुना ही गया था ॥ ७४—८७ ॥

जिसमें सुवर्ण और चाँदीकी सुन्दर वेदिकाएँ बनी थीं, रलजटित होनेके कारण जिसकी गलियाँ अत्यन्त मनोहर लग रही थीं और जो सुन्दर ढंगसे बनाये गये रलोंके झरोखोंसे सुशोभित थी। उस सभामें भगवान् नृसिंहने दितिनन्दन हिरण्यकशिपुको देखा, उसका शरीर स्वर्णनिर्मित विमल हारसे विभूषित था, वह सूर्यकी उत्कट प्रभाके समान उद्दीप हो रहा था और उसकी सैकड़ों-हजारों दैत्य सेवा कर रहे थे ॥ ८८-८९ ॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

प्रह्लादद्वारा भगवान् नरसिंहका स्वरूप-वर्णन तथा नरसिंह और दानवोंका भीषण युद्ध

सूत उवाच

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम्।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम्॥ १

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान्।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद् देवमागतम्॥ २

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वा तनुमाश्रितम्।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः॥ ३

प्रह्लाद उवाच

महाबाहो महाराज दैत्यानामादिसम्भवः।
न श्रुतं न च नो दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः॥ ४

अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमागतम्।
दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम॥ ५

अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्च याः।
हिमवान् पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः॥ ६

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः॥ ७

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः॥ ८

ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च॥ ९

भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्देत्यगणैर्वृतः।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा॥ १०

सर्वे त्रिभुवनं राजल्लोकधर्माश्च शाश्वताः।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिस्तथेदमखिलं जगत्॥ ११

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा
ग्रहाश्च योगाश्च महीरुहाश्च।

उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च
रतिश्च सत्यं च तपो दमश्च॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर राखमें छिपी हुई अग्निकी तरह नरसिंह-शरीरमें छिपे हुए महात्मा विष्णुको कालचक्रकी भाँति आया देख हिरण्यकशिपुके पुत्र पराक्रमी प्रह्लादने दिव्य दृष्टिसे सिंहको देखकर समझ लिया कि भगवान् विष्णु आ गये। सुमेरु पर्वतकी-सी कान्तिवाले अपूर्व शरीरको धारण किये हुए उस सिंहको देखकर हिरण्यकशिपुसहित सभी दानव घबरा गये॥ १—३॥

तब प्रह्लादने कहा—महाबाहु महाराज! आप दैत्योंके मूल पुरुष हैं। आपके इस नरसिंह-शरीरके विषयमें अबतक कभी कुछ न सुना ही गया और न इसे कभी देखा ही गया, अज्ञातरूपसे उत्पन्न होनेवाला यह कौन-सा दिव्यरूप आ पहुँचा है? मुझे लगता है कि आपका यह भयंकर रूप दैत्योंका अन्त ही करनेवाला है। इस सिंहके शरीरमें सभी देवता, समुद्र, सभी नदियाँ, हिमवान्, पारियात्र (विन्ध्य) आदि सभी कुलपर्वत, नक्षत्रों, आदित्यगणों और वसुगणोंसहित चन्द्रमा, कुबेर, वरुण, यमराज, शचीपति इन्द्र, मरुदण, देवगन्धर्व, तपोधन महर्षि, नाग, यक्ष, पिशाच, भयंकर पराक्रमी राक्षस, ब्रह्मा और भगवान् शंकर स्थित हैं। ये सभी ललाटमें स्थित होकर भ्रमण कर रहे हैं। राजन्! सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी, हमलोगोंसहित तथा समस्त दैत्यगणोंसे घिरे हुए आप, सैकड़ों विमानोंसे भरी हुई आपकी यह सभा, सारी त्रिलोकी, शाश्वत लोकधर्म तथा यह अखिल जगत् इस नरसिंहके शरीरमें दिखायी पड़ रहे हैं। साथ ही इस शरीरमें प्रजापति, महात्मा मनु, ग्रह, योग, वृक्ष, उत्पात, काल, धृति,

सनत्कुमारश्च महानुभावो
 विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो
 धर्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे॥ १३
 प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
 उवाच दानवान् सर्वान् गणांश्च स गणाधिपः॥ १४
 मृगेन्द्रो गृह्णतामेष अपूर्वा तनुमास्थितः।
 यदि वा संशयः कश्चिद् वध्यतां वनगोचरः॥ १५
 ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्।
 परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा॥ १६
 सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः।
 बभञ्ज तां सभां सर्वा व्यादितास्य इवान्तकः॥ १७
 सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
 चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषाद् व्याकुललोचनः॥ १८
 सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम्।
 कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम्॥ १९
 पैतामहं तथाप्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत्।
 विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्धं चाशनिद्वयम्॥ २०
 रौद्रं तथोग्रं शूलं च कङ्कालं मुसलं तथा।
 मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम्॥ २१
 वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम्।
 तथाप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च॥ २२
 अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा।
 कम्पनं शातनं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुभैरवम्॥ २३
 कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनं च महाबलम्।
 संवर्तनं मादनं च तथा मायाधरं परम्॥ २४
 गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरलं च नन्दकम्।
 प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम्।
 अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः॥ २५
 अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च।
 नारायणास्त्रमैन्द्रं च सार्पमस्त्रं तथाद्दुतम्॥ २६
 पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा।
 महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने॥ २७
 एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा।
 असृजन्नरसिंहस्य दीपस्याग्नेरिवाहुतिम्॥ २८

मति, रति, सत्य, तप, दम, महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेवगण, सभी ऋषिगण, क्रोध, काम, हर्ष, धर्म, मोह और सभी पितृगण भी विद्यमान हैं॥ ४—१३॥

इस प्रकार प्रह्लादकी बात सुनकर दानवगणोंके अधीश्वर सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुने सभी दानवगणोंको आदेश देते हुए कहा—‘दानवो! अपूर्व शरीर धारण करनेवाले इस मृगेन्द्रको पकड़ लो। अथवा यदि पकड़नेमें कोई संदेह हो तो इस बनैले जीवको मार डालो।’ यह सुनकर वे सभी दानवगण हर्षपूर्वक उस भयंकर पराक्रमी मृगेन्द्रपर टूट पड़े और बलपूर्वक त्रास देने लगे। तदनन्तर मुख फैलाये हुए कालकी तरह भीषण दीखनेवाले महाबली नरसिंहने सिंहनाद करके उस सारी सभाको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सभाको विध्वंस होते देखकर हिरण्यकशिपुके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो गये, तब वह स्वयं नरसिंहपर अस्त्र छोड़ने लगा॥ १४—१८॥

उस समय हिरण्यकशिपु सम्पूर्ण अस्त्रोंमें सबसे बड़ा दण्ड अस्त्र, अत्यन्त भीषण कालचक्र, अतिशय भयंकर विष्णुचक्र, त्रिलोकीको भस्म कर देनेवाला अत्यन्त उग्र पितामहका महान् अस्त्र ब्रह्मास्त्र, विचित्र वज्र, सूखी और गीली दोनों प्रकारकी अशनि, भयानक तथा उग्र शूल, कंकाल, मूसल, मोहन, शोषण, संतापन, विलापन, वायव्य, मथन, कापाल, कैंकर, अमोघ शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, ब्रह्मशिरा अस्त्र, सोमास्त्र, शिशिर, कम्पन, शातन, अत्यन्त भयंकर त्वाष्ट्रास्त्र, कभी क्षुब्ध न होनेवाला कालमुद्गर, महाबलशाली तपन, संवर्तन, मादन, परमोत्कृष्ट मायाधर, परमप्रिय गान्धर्वास्त्र, असिरल नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, सर्वोत्तम वारुणास्त्र, जिसकी गति अप्रतिहत होती है ऐसा पाशुपतास्त्र, हयशिरा अस्त्र, ब्राह्म अस्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, अद्भुत नागास्त्र, अजेय पैशाचास्त्र, शोषण, शामन, महाबलसे सम्पन्न भावन, प्रस्थापन, विकम्पन—इन सभी दिव्यास्त्रोंको नरसिंहके ऊपर उसी प्रकार छोड़ रहा था, मानो प्रज्वलित अग्निमें आहुति डाल रहा हो।

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः ।
विवस्वान् घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥ २९
स ह्यमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ॥ ३०
प्राप्तैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैश्चनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ॥ ३१
मुद्रैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीपाभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥ ३२
ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ।

समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः
स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः ॥ ३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः
पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा
हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥ ३४
तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै
केयूरमौलीबलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति
प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ ३५
क्षिपदभिरुग्रज्वलितैर्महाबलै-

र्महास्त्रपूर्गैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा संततवर्षिभिर्घनैः
कृतान्थकारान्तरकन्दरो द्रुमैः ॥ ३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालै-
र्महाबलैर्देत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रताप-
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥ ३७
संत्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा
दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद् विचेलुः पवनोद्भूताङ्गा
यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ॥ ३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भावो नाम द्विषष्ठुर्थिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नारसिंहप्रादुर्भाव नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६२ ॥

उस असुरश्रेष्ठने नरसिंहको प्रज्वलित अखोद्भारा ऐसा आच्छादित कर दिया, जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्य अपनी किरणोंसे हिमवान् पर्वतको ढक लेते हैं । दैत्योंका वह सेनारूपी सागर क्रोधरूपी वायुसे उच्छ्वलित हो उठा और क्षणमात्रमें ही वहाँकी भूमिपर इस प्रकार छा गया, जैसे सागर मैनाक पर्वतको डुबाकर उबल उठा था । फिर तो वे भाला, पाश, तलवार, गदा, मुसल, वज्र, अग्निसहित अशनि, विशाल वृक्ष, मुद्र, भिन्दिपाल, शिला, ओखली, पर्वत, प्रज्वलित शतघ्नी (तोप) और अत्यन्त भीषण दण्डसे नरसिंहपर प्रहर करने लगे ॥ १९—३२ ॥

उस समय महेन्द्रके वज्र एवं अशनिके समान वेगशाली वे दानव हाथमें पाश लिये हुए चारों ओर अपनी भुजाओं और शरीरोंको ऊपर उठाये हुए स्थित थे, जो तीन शिखावाले नागपाशकी तरह दीख रहे थे । उनके शरीर सोनेकी मालाओंसे विभूषित थे, उनके अङ्गोंपर पीला रेशमी वस्त्र शोभा पा रहा था तथा कटिबंध मोतियोंकी लड्डियोंसे संयुक्त थे, जिससे वे विशाल पंखधारी हंसकी भाँति शोभा पा रहे थे । केयूर, मुकुट और कंकणसे सुशोभित उन उत्कट पराक्रमी एवं वायुके समान ओजस्वी दानवोंके मस्तक प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंकी कान्ति-सदृश चमक रहे थे । उन महाबली दानवोंद्वारा चलाये गये भयंकर एवं उद्वीप महान् अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित हुए भगवान् नरसिंह उसी प्रकार शोभा पा रहे थे, मानो निरन्तर वर्षा करनेवाले बादलों और वृक्षोंसे अन्धकारित किये गये गुफाओंसे युक्त पर्वत हो । संगठित हुए उन महाबली दैत्योंद्वारा महान् अस्त्रसमूहोंसे आघात किये जानेपर भी प्रतापशाली भगवान् नरसिंह युद्धस्थलमें विचलित नहीं हुए, अपितु प्रकृतिसे अटल रहनेवाले हिमवान्की तरह अडिग होकर डटे रहे । अग्निके समान तेजस्वी नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा डराये गये दैत्यगण भयके कारण उसी प्रकार विचलित हो गये, जैसे समुद्रके जलमें उठी हुई लहरें वायुके थपेड़ोंसे क्षुब्ध हो जाती हैं ॥ ३३—३८ ॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

नरसिंह और हिरण्यकशिपुका भीषण युद्ध, दैत्योंको उत्पातदर्शन, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, नरसिंहद्वारा हिरण्यकशिपुका वध तथा ब्रह्मद्वारा नरसिंहकी स्तुति

सूत उवाच

खरश्चानमुखाश्वैव	मकराशीविषाननाः ।	
ईहामृगमुखाश्वान्ये	वराहमुखसंस्थिताः ॥ १	
बालसूर्यमुखाश्वान्ये	धूमकेतुमुखास्तथा ।	
अर्धचन्द्रार्धवक्त्राश्व	अग्निदीपमुखास्तथा ॥ २	
हंसकुकुटवक्त्राश्व व्यादितास्या भयावहाः ।		
सिंहास्या लेलिहानाश्व काकगृधमुखास्तथा ॥		३
द्विजिह्वका वक्रशीर्षास्तथोल्कामुखसंस्थिताः ।		
महाग्राहमुखाश्वान्ये दानवा बलदर्पिताः ॥ ४		
शैलसंवर्ध्णिणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभिः ।		
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे ॥ ५		
एवं भूयो परान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः ।		
मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः ॥ ६		
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः ।		
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥ ७		
ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः ।		
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानि समन्ततः ॥ ८		
तैरासीद् गगनं चक्रैः सम्पत्तिरितस्ततः ।		
युगान्ते सम्प्रकाशद्विश्वन्नादित्यग्रहैरिव ॥ ९		
तानि सर्वाणि चक्राणि मृगेन्द्रेण महात्मना ।		
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदा पावकार्चिःसमानि वै ॥ १०		
तानि चक्राणि वदने विशमानानि भान्ति वै ।		
मेघोदरदरीव्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥ ११		
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।		
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्रभाम् ॥ १२		

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! उन दानवोंमें किन्हींके मुख गधे और कुत्तेके समान थे तो कुछ मकर और सर्पके-से मुखवाले थे । किन्हींके मुख भेड़िया-सदृश तो कुछके सूअर-जैसे थे । कुछ उदयकालीन सूर्यके समान तो कुछ धूमकेतु-से मुखवाले थे । किन्हींके मुख अर्धचन्द्र तथा किन्हींके अग्निकी तरह उदीप थे । किन्हींका मुख आधा ही था । किन्हींके मुख हंस और मुर्मुके समान थे । किन्हींके मुख फैले हुए थे, जो बड़े भयावने लग रहे थे । कुछ सिंहके-से मुखवाले दानव जीभ लपलपा रहे थे । किन्हींके मुख कौआं और गीधों-जैसे थे । किन्हींके मुखमें दो जिह्वाएँ थीं, किन्हींके मस्तक टेढ़े थे और कुछ उल्का-सरीखे मुखवाले थे । किन्हींके मुख महाग्राह-सदृश थे । इस प्रकार वे बलाभिमानी दानव रणभूमिमें पर्वतके समान सुदृढ़ शरीरवाले उन अवध्य मृगेन्द्रके शरीरपर बाणोंकी वृष्टि करके उन्हें पीड़ित न कर सके । तब क्रुद्ध हुए सर्पकी भाँति निःश्वास छोड़ते हुए वे दानवेश्वर नरसिंहके ऊपर पुनः दूसरे भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे, परंतु दानवेश्वरोंद्वारा छोड़े गये वे भयंकर बाण उसी प्रकार आकाशमें विलीन हो जाते थे, जैसे पर्वतपर चमकते हुए जुगनू । तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए दैत्य शीघ्र ही नरसिंहके ऊपर चारों ओरसे चमकते हुए दिव्य चक्रोंकी वर्षा करने लगे । इधर-उधर गिरते हुए उन चक्रोंसे आकाशमण्डल ऐसा दीख रहा था, मानो युगान्तके समय प्रकाशित हुए चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त हो गया हो । अग्निकी लपटोंके समान उठते हुए उन सभी चक्रोंको महात्मा नरसिंह निगल गये । उस समय उनके मुखमें प्रविष्ट होते हुए वे चक्र मेघोंकी घनघोर घटामें घुसते हुए चन्द्र, सूर्य एवं अन्यान्य ग्रहोंकी भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ १—११ ॥

तदनन्तर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर पुनः अपनी भयंकर शक्ति छोड़ी, जो चमकीली, अत्यन्त शक्तिशालिनी और धुली होनेके कारण बिजली-सी चमक

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्ज्वलाम् ।
 हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥ १३
 रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले ।
 सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥ १४
 नाराचपद्धक्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजेऽविदूरतः ।
 नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥ १५
 स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम् ।
 तत्सैन्यमुत्सारितवांस्तृणाग्राणीव मारुतः ॥ १६
 ततोऽश्मवर्ष दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ।
 नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः ॥ १७
 तदश्मवर्ष सिंहस्य महन्मूर्धनि पातितम् ।
 दिशो दश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥ १८
 तदाश्ममौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
 छादयांचक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ १९
 न च तं चालयामासुदैत्यौधा देवसत्तमम् ।
 भीमवेगोऽचलश्रेष्ठं समुद्र इव मन्दरम् ॥ २०
 ततोऽश्मवर्षे विहते जलवर्षमनन्तरम् ।
 धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ २१
 नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः समन्ततः ।
 आवृत्य सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा ॥ २२
 धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायां च सर्वशः ।
 न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्त्योऽनिशं भुवि ॥ २३
 बाहृतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषुः ।
 मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥ २४
 हतोऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
 सोऽसृजद् दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥ २५
 महेन्द्रस्तोयदैः सार्थं सहस्राक्षो महाद्युतिः ।
 महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥ २६

रही थी। तब उस उज्ज्वल शक्तिको अपनी ओर आती हुई देखकर भगवान् नरसिंहने अपने भयंकर हुंकारसे ही उसे तोड़कर टूक-टूक कर दिया। नरसिंहद्वारा तोड़ी गयी वह शक्ति ऐसी शोभा पा रही थी, जैसे आकाशमें भूतलपर गिरी हुई चिनगारियोंसहित प्रज्वलित महान् उल्का हो। नरसिंहके निकट पहुँची हुई (दैत्योंद्वारा छोड़े गये) बाणोंकी उज्ज्वल वर्णवाली पंक्ति नीले कमल-दलकी मालाकी तरह शोभा पा रही थी। यह देखकर भगवान् नरसिंहने न्यायतः पराक्रम प्रदर्शित कर सुखपूर्वक गर्जना की और उस दानवसेनाको वायुद्वारा उड़ाये गये क्षुद्र तिनकोंकी तरह खदेड़ दिया। तदुपरान्त दैत्येश्वरगण आकाशमें स्थित होकर पत्थरकी वर्षा करने लगे। पत्थरोंकी वह वर्षा नरसिंहके विशाल मस्तकपर गिरकर चूर-चूर हो जुगनुओंके समूहकी भाँति दसों दिशाओंमें बिखर गयी। तब दैत्यगणोंने पुनः पर्वत-सरीखे शिलाखण्डों, पर्वत-शिखरों और पत्थरोंसे उन शत्रुसूदन नरसिंहको इस प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ जलकी धाराओंद्वारा पर्वतको ढक देते हैं। फिर भी वह दैत्यसमुदाय उन देवश्रेष्ठ नरसिंहको उसी प्रकार विचलित नहीं कर सका, जैसे भयंकर वेगशाली समुद्र पर्वतश्रेष्ठ मन्दरको नहीं डिगा सका ॥ १२—२० ॥

तदनन्तर पत्थरोंकी वृष्टिके विफल हो जानेपर चारों ओर मूसलाधार जलकी वृष्टि होने लगी। चारों ओर आकाशसे गिरती हुई वे तीव्र वेगशाली धाराएँ सब ओरसे आकाश, दिशाओं तथा विदिशाओंको आच्छादित करके लगातार भूतलपर गिर रही थीं। यद्यपि वे धाराएँ आकाश तथा पृथ्वीपर सर्वत्र सब प्रकारसे व्याप्त थीं, तथापि वे भगवान् नरसिंहका स्पर्श नहीं कर पा रही थीं। युद्धभूमिमें मायाद्वारा मृगेन्द्रका रूप धारण करनेवाले भगवान्के ऊपर वे धाराएँ नहीं गिर रही थीं, अपितु बाहर चारों ओर वर्षा कर रही थीं। इस प्रकार जब वह शिलावृष्टि नष्ट कर दी गयी और घनघोर जलवृष्टि सोखली गयी, तब दानवराज हिरण्यकशिपुने अग्नि और वायुद्वारा प्रेरित मायाका विस्तार किया, किंतु परम कान्तिमान् सहस्र नेत्रधारी महेन्द्रने बादलोंके साथ वहाँ आकर जलकी घनघोर वृष्टिसे उस अग्निको शान्त कर

तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ।
 असृजद् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः ॥ २७
 तमसा संबृते लोके दैत्येष्वान्तायुधेषु च ।
 स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवावभौ ॥ २८
 त्रिशिखां भृकुटीं चास्य ददृशुर्दर्नवा रणे ।
 ललाटस्थां त्रिशूलाङ्गां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥ २९
 ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
 हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः ॥ ३०
 ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्त्रिव तेजसा ।
 तस्मिन् कुञ्जे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूजगत् ॥ ३१
 आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः ।
 परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ३२
 तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः ।
 इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ॥ ३३
 ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ।
 ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ॥ ३४
 अयोगतश्चाप्यचरद् योगं निशि निशाकरः ।
 सग्रहः सह नक्षत्रै राकापतिररिन्द्रमः ॥ ३५
 विवर्णतां च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ।
 कृष्णां कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुप्रहृदिवि ॥ ३६
 अमुञ्जच्छार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः ।
 गगनस्थश्च भगवानभीक्षणं परिदृश्यते ॥ ३७
 सप्त धूम्रनिभा घोरा सूर्याद्विवि समुत्थिताः ।
 सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गाः ॥ ३८
 वामे तु दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ।
 शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमद्युती ॥ ३९
 समं समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः ।
 शृङ्गानि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ॥ ४०
 चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैग्रहैः सह तमोनुदः ।
 चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत ॥ ४१
 गृह्यते राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ।
 उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ॥ ४२

दिया । युद्धस्थलमें उस मायाके नष्ट हो जानेपर उस दानवने चारों ओर भयंकर दीखनेवाले घने अन्धकारकी सृष्टि की । उस समय सारा जगत् अन्धकारसे ढक गया और दैत्यगण अपना-अपना हथियार लिये डटे रहे । उसके मध्य अपने तेजसे घिरे हुए भगवान् नरसिंह सूर्यकी तरह शोभा पा रहे थे । दानवोंने रणभूमिमें नरसिंहके ललाटमें स्थित त्रिशूलकी-सी आकारवाली उनकी त्रिशिखा भृकुटिको देखा, जो त्रिपथगा गङ्गाकी तरह प्रतीत हो रही थी ॥ २१—२९ ॥

इस प्रकार सभी मायाओंके नष्ट हो जानेपर तेजोहीन दैत्य अपने स्वामी हिरण्यकशिपुकी शरणमें गये । यह देख वह अपने तेजसे जगत्को जलाता-सा क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा । उस दैत्येन्द्रके कुञ्ज होनेपर सारा जगत् अन्धकारमय हो गया । पुनः आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह, संवह तथा श्रीमान् परिवह—ये महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न आकाशचारी सातों वायुमार्ग उत्पातके भयकी सूचना देते हुए क्षुब्ध हो उठे । समस्त लोकोंके विनाशके अवसरपर जो ग्रह प्रकट होते हैं, वे सभी आकाशमें दृष्टिगोचर होकर सुखपूर्वक विचरण करने लगे । राहुने अमा एवं पूर्णिमाके बिना ही ग्रहणकी दृश्य उपस्थित कर दिया । रातमें नक्षत्रों और ग्रहोंसहित राकापति शत्रुसूदन चन्द्रमा और दिनमें भगवान् सूर्य कान्तिहीन हो गये तथा आकाशमें अत्यन्त विशाल काले रंगका कबन्ध (धूमकेतु) दिखायी देने लगा । भगवान् अग्नि एक ओर पृथ्वीपर रहकर चिनगारियाँ छोड़ने लगे और दूसरी ओर वे निरन्तर आकाशमें भी स्थित दिखायी दे रहे थे । आकाशमण्डलमें धूएँकी-सी कान्तिवाले सात भयंकर सूर्य प्रकट हो गये । ग्रहगण आकाशमें स्थित चन्द्रमाके शिखरपर स्थित हो गये । उनके बामभागमें शुक्र और दाहिने भागमें बृहस्पति स्थित हो गये । अग्निके समान कान्तिमान् शनैश्चर और मङ्गल भी दृष्टिगोचर हुए । युगान्तके समय प्रकट होनेवाले वे सभी भयंकर ग्रह शनैः-शनैः एक साथ शिखरोंपर आरूढ़ हो आकाशमें विचरण करने लगे ॥ ३०—४० ॥

इसी प्रकार अन्धकारका विनाश करनेवाले चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहोंके साथ रहकर चराचर जगत्का विनाश करनेके लिये रोहिणीका अभिनन्दन नहीं कर रहे थे । राहु चन्द्रमाको ग्रस्त कर रहा था और उल्काएँ उन्हें मार भी रही थीं । प्रज्वलित उल्काएँ चन्द्रलोकमें सुखपूर्वक

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत शोणितम्।
अपतनागनादुल्का विद्युद्रूपा महास्वनाः ॥ ४३
अकाले च द्रुमाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।
लताश्च सफलाः सर्वा ये चाहुदैत्यनाशनम् ॥ ४४
फलैः फलान्यजायन्त पुष्टैः पुष्टं तथैव च ।
उम्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च ॥ ४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।
प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद् भयम् ॥ ४६
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः ।
चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ॥ ४७
नद्याश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥ ४८
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च ॥ ४९
यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये ॥ ५०
तदा हिरण्यकशिपोदैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु ॥ ५१
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिर्दर्शनाः ॥ ५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥ ५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निषेतुरमितौजसः ॥ ५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्।
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः ॥ ५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव ककोटकधनञ्जयौ ।
एलामुखः कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ॥ ५६
सहस्रशीर्षो नागो वै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्क्रम्प्यः प्रकम्पितः ॥ ५७

विचरण कर रही थीं। जो देवताओंका भी देवता (इन्द्र) है, वह रक्तकी वर्षा करने लगा। आकाशसे बिजलीकी-सी कान्तिवाली उल्काएँ भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीपर गिरने लगीं। सभी वृक्ष असमयमें ही फूलने और फलने लगे तथा सभी लताएँ फलसे युक्त हो गयीं, जो दैत्योंके विनाशकी सूचना दे रही थीं। फलोंसे फल तथा फूलोंसे फूल प्रकट होने लगे। सभी देवताओंकी मूर्तियाँ कभी आँख फाड़कर देखतीं, कभी आँखें बंद कर लेतीं, कभी हँसती थीं तो कभी रोने लगती थीं। वे कभी जोर-जोरसे चिल्लाने लगती थीं, कभी गम्भीररूपसे धुआँ फेंकती थीं तो कभी प्रज्वलित हो जाती थीं। इस प्रकार वे महान् भयकी सूचना दे रही थीं। उस समय ग्रामीण मृग-पक्षी वन्य मृग-पक्षियोंसे संयुक्त होकर अत्यन्त भयंकर महान् युद्ध करने लगे। गंदे जलसे भरी हुई नदियाँ उलटी दिशामें बहने लगीं। रक्त और धूलसे व्यास दिशाएँ दिखायी नहीं दे रही थीं। पूजनीय वृक्षोंकी किसी प्रकार पूजा (रक्षा) नहीं हो रही थी। वे वायुके झोंकेसे प्रताङ्गित हो रहे थे, झुक जाते थे और टूट भी जाते थे ॥ ४१—४९ ॥

इस प्रकार लोकोंके युगान्तके समय सूर्यके अपराह्णसमयमें पहुँचनेपर जब सभी प्राणियोंकी छायामें कोई परिवर्तन नहीं दीखने लगा, तब दैत्यराज हिरण्यकशिपुके महल, भाण्डारागार और आयुधागारके ऊपर मधु टपकने लगा। इस प्रकार असुरोंके विनाश और देवताओंकी विजयके लिये भयकी सूचना देनेवाले अनेकों प्रकारके भयंकर उत्पात दिखायी दे रहे थे। ये तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से भयंकर उत्पात, जो कालद्वारा निर्मित थे, दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके विनाशके लिये प्रकट हुए दीख रहे थे। महान् आत्मबलसे सम्पन्न दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुद्वारा पृथ्वीके प्रकम्पित किये जानेपर पर्वत तथा अमित तेजस्वी नागगण गिरने लगे। वे चार, पाँच अथवा सात सिरवाले नाग विषकी ज्वालासे व्यास मुखोंद्वारा अग्नि उगलने लगे। वासुकि, तक्षक, ककोटक, धनञ्जय, एलामुख, कालिय, पराक्रमी महापद्म, एक हजार फणोंवाला सामर्थ्यशाली नाग हेमतालध्वज तथा महान् भाग्यशाली अनन्त शेषनाग—इन सबका काँपना यद्यपि अत्यन्त कठिन था, तथापि ये सभी काँप उठे।

दीपान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च।
 तदा कुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ॥ ५८
 नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः।
 हिरण्यकशिपुदैत्यस्तदा संस्पृष्टवान् महीम् ॥ ५९
 संदष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः।
 नदी भागीरथी चैव शरयूः कौशिकी तथा ॥ ६०
 यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणा च निष्प्रगा।
 सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा ॥ ६१
 चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः।
 कमलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥ ६२
 नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी।
 गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती ॥ ६३
 मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी।
 जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरलोपशोभितम् ॥ ६४
 सुवर्णप्रकटं चैव सुवर्णाकरमणिडतम्।
 महानदं च लौहित्यं शैलकाननशोभितम् ॥ ६५
 पत्तनं कोशकरणमृषिवीरजनाकरम्।
 मागधाश्च महाग्रामा मुण्डा: शुङ्गास्तथैव च ॥ ६६
 सुहा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः।
 भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ॥ ६७
 कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा।
 रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥ ६८
 उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम्।
 सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपद्मक्तिनिषेवितः ॥ ६९
 भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातिरूपमयैर्द्वयैः ।
 शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥ ७०
 अयोमुखश्च विख्यातः पर्वतो धातुमणिडतः।
 तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥ ७१
 सुराष्ट्राश्च सबाहीकाः शूराभीरास्तथैव च।
 भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गस्ताप्रलिपकाः ॥ ७२
 तथैवोण्डाश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः।
 क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः ॥ ७३
 अगस्त्यभवनं चैव यदगम्यं कृतं पुरा।
 सिद्धचारणसहैश्च विप्रकीर्ण मनोहरम् ॥ ७४

उसने चारों ओर जलके भीतर स्थित रहनेवाले उद्धीष पर्वतोंको भी अत्यन्त क्रोधवश कँपा दिया। उस समय पाताललोकमें विचरण करनेवाले तेजस्वी नाग भी प्रकम्पित हो उठे। इस प्रकार दैत्यराज हिरण्यकशिपु क्रोधवश दाँतोंसे होंठोंको दबाये हुए जब पृथ्वीपर खड़ा हुआ तो वह पूर्वकालमें प्रकट हुए वाराहकी तरह दीख रहा था ॥ ५०—५९ ॥

इसी प्रकार भागीरथी नदी, सरयू, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णवेणा नदी, महाभागा, सुवेणा, गोदावरी नदी, चर्मण्वती, सिन्धु, नद और नदियोंका स्वामी, कमल उत्पन्न करनेवाला तथा मणिसदृश जलसे परिपूर्ण शोण, पुण्यसलिला नर्मदा, वेत्रवती नदी, गोकुलसे सेवित होनेवाली गोमती, प्राचीसरस्वती, मही, कालमही, तमसा, पुष्पवाहिनी, जम्बूद्वीप, सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित रत्नवट, सुवर्णकी खानोंसे युक्त सुवर्णप्रकट, पर्वतों और कानोंसे सुशोभित महानद लौहित्य, ऋषियों और वीरजनोंका उत्पत्तिस्थानस्वरूप कोशकरण नामक नगर, बड़े-बड़े ग्रामोंसे युक्त मागध, मुण्ड, शुङ्ग, सुघ्न, मल्ल, विदेह, मालव, काशी, कोसल—इन सबको तथा गरुडके भवनको, जो कैलासके शिखरकी-सी आकृतिवाला था तथा जिसे विश्वकर्मने बनाया था, उस दैत्येन्द्रने प्रकम्पित कर दिया। रक्तरूपी जलसे भरा हुआ महान् भयंकर लौहित्य सागर तथा जो स्वर्णमयी वेदिकासे युक्त, शोभाशाली, मेघकी पङ्क्षियोंद्वारा सुसेवित और सूर्य-सदृश एवं स्वर्णमय खिले हुए साल, ताल, तमाल और कनेरके वृक्षोंसे सुशोभित है, वह सौ योजन ऊँचा महान् पर्वत उदयाचल, धातुओंसे विभूषित अयोमुख नामक विख्यात पर्वत, तमाल-वनके गन्धसे सुवासित सुन्दर मलय पर्वत, सुराष्ट्र, बाहीक, शूर, आभीर, भोज, पाण्ड्य, वङ्ग, कलिङ्ग, ताप्रलिपक, उण्ड, पौण्ड, केरल—इन सबको तथा देवों और अप्सराओंके समूहोंको उस दैत्यने क्षुब्ध कर दिया ॥ ६०—७३ ॥

इसी प्रकार जो पहले अगम्य कर दिया गया था तथा सिद्धों और चारणोंके समूहोंसे व्याप्त,

विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्गुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणनादितम्॥ ७५
गिरिपुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः।
उत्थितः सागरं भित्त्वा विश्रामश्नन्द्रसूर्ययोः।
रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव॥ ७६
चन्द्रसूर्याशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतैः।
विद्युत्वान् सर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम्॥ ७७
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः॥ ७८
कुञ्जरः पर्वतः श्रीमान् यत्रागस्त्यगृहं शुभम्।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पणामालयः पुरी॥ ७९
तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता।
महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः॥ ८०
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः।
प्राग्ज्योतिष्पुरं चापि जातरूपमयं शुभम्॥ ८१
यस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः।
मेघश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः॥ ८२
षष्ठिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः।
तरुणादित्यसंकाशो मेरुस्तत्र महागिरिः॥ ८३
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्द्रः।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखो गिरिः॥ ८४
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः।
हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः॥ ८५
कम्पितं मानसं चैव हंसकारण्डवाकुलम्।
त्रिशृङ्गपर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वारा॥ ८६
तुषारचयसंच्छन्नो मन्दरश्चापि पर्वतः।
उशीरबिन्दुश्च गिरिश्नन्द्रप्रस्थस्तथाद्विराट्॥ ८७
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः।
देवाभ्रपर्वतश्चैव तथा वै रेणुको गिरिः॥ ८८
क्रौञ्चः समर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा॥ ८९
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः॥ ९०

मनोहर, नाना प्रकारके रंग-विरंगे पक्षियोंसे युक्त और पुष्पोंसे लदे हुए महान् वृक्षोंसे सुशोभित था, उस अगस्त्य-भवनको भी कँपा दिया। इसके बाद जो लक्ष्मीवान्, प्रियदर्शन और अपने अत्यन्त ऊँचे शिखरोंसे आकाशमें रेखा-सी खींच रहा था तथा चन्द्रमा और सूर्यको विश्राम देनेके लिये सागरका भेदन कर बाहर निकला था, वह पुष्पितक गिरि अपने स्वर्णमय शिखरोंसे शोभा पा रहा था। फिर चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले एवं सागरके जलसे घिरे हुए शिखरोंसे युक्त शोभाशाली विद्युत्वान् पर्वत था, जो सब ओरसे सौ योजन विस्तृत था। उस पर्वतश्रेष्ठपर बिजलियोंके समूह गिराये जाते थे। वृषभ नामसे पुकारा जानेवाला शोभासम्पन्न ऋषभ पर्वत तथा शोभाशाली कुंजर पर्वत, जिसपर महर्षि अगस्त्यका सुन्दर आश्रम था। सर्पोंका दुर्धर्ष निवासस्थान विशालाक्ष तथा भोगवती पुरी—ये सभी दैत्येन्द्रद्वारा प्रकम्पित कर दिये गये। द्विजवरो! वहाँ महासेन गिरि, पारियात्र पर्वत, गिरिश्रेष्ठ चक्रवान्, वाराह पर्वत, स्वर्णनिर्मित रमणीय प्राग्ज्योतिष्पुर, जिसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव निवास करता है, बादलोंके समान गम्भीर शब्द करनेवाला पर्वतश्रेष्ठ मेघ आदि साठ हजार पर्वत थे, वहीं मध्याह्नकालीन सूर्यक समान प्रकाशमान विशाल पर्वत मेरु था, जिसकी कन्दराओंमें यक्ष, राक्षस और गन्धर्व नित्य निवास करते थे। महान् पर्वत हेमगर्भ, हेमसख गिरि तथा पर्वतराज कैलास—इन सबको भी दानवेन्द्र हिरण्यकशिपुने कँपा दिया॥ ७४—८४ ३॥

हिरण्यकशिपुने स्वर्ण-सदृश कमल-पुष्पोंसे आच्छादित वैखानस सरोवर तथा हंसों और बतखोंसे भरे हुए मानसरोवरको भी कम्पित कर दिया। इसके बाद त्रिशृङ्ग पर्वत, नदियोंमें श्रेष्ठ कुमारी नदी, तुषारसमूहसे आच्छादित मन्दर पर्वत, उशीरबिन्दु गिरि, पर्वतराज चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत, रेणुक गिरि, क्रौञ्च पर्वत, ससर्षिशैल तथा धूम्रवर्ण पर्वत—इनको तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य पर्वतों, देशों, जनपदों तथा सागरोंसहित सभी नदियोंको उस दानवने कम्पित कर दिया। साथ ही महीपुत्र कपिल और व्याघ्रवान् भी कँप उठे।

खेचराश्च सतीपुत्रः पातालतलवासिनः ।
 गणस्तथा परो रौद्रो मेघनामाइकुशायुधः ॥ ११
 ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्वं एवाभिकम्पिताः ।
 गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ १२
 जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः ।
 जीमूतघननिर्धोषो जीमूत इव वेगवान् ॥ १३
 देवारिद्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।
 समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥ १४
 तदोंकारसहायेन विदार्य निहतो युधि ।
 मही च कालश्च शशी नभश्च
 ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।
 नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च
 गताः प्रसादं दितिपुत्रनाशात् ॥ १५
 ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
 तुष्टवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् ॥ १६
 यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः ।
 एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः ॥ १७
 ब्रह्मोवाच
 भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमः ।
 भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाव्ययः ॥ १८
 परां च सिद्धिं च परं च देवं
 परं च मन्त्रं परमं हविश्च ।
 परं च धर्मं परमं च विश्वं
 त्वामाहुरग्रं पुरुषं पुराणम् ॥ १९
 परं शरीरं परमं च ब्रह्म
 परं च योगं परमां च वाणीम् ।
 परं रहस्यं परमां गतिं च
 त्वामाहुरग्रं पुरुषं पुराणम् ॥ १००
 एवं परस्यापि परं पदं यत्
 परं परस्यापि परं च देवम् ।
 परं परस्यापि परं च भूतं
 त्वामाहुरग्रं पुरुषं पुराणम् ॥ १०१

आकाशचारी एवं पाताललोकमें निवास करनेवाले सतीके पुत्र, अङ्गुशको अस्त्ररूपमें धारण करनेवाला परम भयंकर मेघ नामक गण तथा उर्ध्वग और भीमवेग—ये सभी कँपा दिये गये । तदनन्तर जो गदा और त्रिशूल धारण किये हुए था, जिसकी आकृति बड़ी विकराल थी, जो देवताओंका शत्रु, घने बादलके समान कान्तिमान्, घने बादल-जैसा बोलनेवाला, घने बादल-सदृश गरजनेवाला और बादल-सा वेगशाली था, उस दितिनन्दन वीरवर हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर आक्रमण किया । तब युद्धस्थलमें ओंकारकी सहायतासे भगवान् नरसिंहने आकाशमें उछलकर अपने तीखे विशाल नखोंसे उनके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर उसे मार डाला ॥ ८५—१४ १/२ ॥

इस प्रकार उस दितिपुत्र हिरण्यकशिपुके मौतके मुखमें चले जानेसे पृथ्वी, काल, चन्द्रमा, आकाश, ग्रहगण, सूर्य, सभी दिशाएँ, नदियाँ, पर्वत और महासागर प्रसन्न हो गये । तदनन्तर हर्षसे फूले हुए देवता और तपोधन ऋषिगण दिव्य नामोंद्वारा उन अविनाशी आदि देवकी स्तुति करते हुए कहने लगे—‘देव ! आपने जो यह नरसिंहका शरीर धारण किया है, इसकी पूर्वापरके ज्ञाता लोग अर्चना करेंगे’ ॥ १५—१७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देव ! आप ही ब्रह्मा, रुद्र और देवश्रेष्ठ महेन्द्र हैं । आप ही लोकोंके कर्ता, संहर्ता और उत्पत्तिस्थान हैं । आपका कभी विनाश नहीं होता । आपको ही परमोत्कृष्ट सिद्धि, परात्पर देव, परम मन्त्र, परम हवि, परम धर्म, परम विश्व और आदि पुराणपुरुष कहा जाता है । आपको ही परम शरीर, परम ब्रह्म, परम योग, परमा वाणी, परम रहस्य, परम गति और अग्रजन्मा पुराण पुरुष कहा जाता है । इसी प्रकार जो परात्पर पद, परात्पर देव, परात्पर भूत और सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष है, वह आप ही हैं ।

परं परस्यापि परं रहस्यं
परं परस्यापि परं महत्त्वम्।
परं परस्यापि परं महद्यत्
त्वामाहुरउर्यं पुरुषं पुराणम्॥ १०२
परं परस्यापि परं निधानं
परं परस्यापि परं पवित्रम्।
परं परस्यापि परं च दान्तं
त्वामाहुरउर्यं पुरुषं पुराणम्॥ १०३
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः॥ १०४
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः॥ १०५
नारसिंहं वपुदेवः स्थापयित्वा सुदीसिमत्।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः॥ १०६
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः॥ १०७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिष्णुधिकशततमोऽध्यायः॥ १६३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें हिरण्यकशिपु-वध नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६३॥

एक सौ चौंसठवाँ अध्याय

पद्मोद्घवके प्रसङ्गमें मनुद्वारा भगवान् विष्णुसे सृष्टिसम्बन्धी विविध प्रश्न और भगवान्का उत्तर

ऋषय ऊचुः

कथितं नरसिंहस्य माहात्म्यं विस्तरेण च।
पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विस्तरतो वद॥ १
पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत्।
कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत् पुरा॥ २
सूत उवाच

श्रुत्वा च नरसिंहस्य माहात्म्यं रविनन्दनः।
विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः पप्रच्छ केशवम्॥ ३

मनुरुचाच

कथं पाद्मे महाकल्पे तब पद्ममयं जगत्।
जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन॥ ४

जो परात्पर रहस्य, परात्पर महत्त्व और परात्पर महत्त्व है, वह सब आप अग्रजन्मा पुराणपुरुषको ही कहा जाता है। आप सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुषको परसे भी परम निधान, परसे भी परम पवित्र और परसे भी परम उदार कहा जाता है। ऐसा कहकर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्मा नारायणदेवकी स्तुति कर ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय तुरुहियाँ बज रही थीं और अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। इसी बीच जगदीश्वर श्रीहरि क्षीरसागरके उत्तर तटपर जानेके लिये उद्यत हुए। वहाँसे जाते समय भगवान् गरुडध्वजने परम कान्तिमान् उस नरसिंह-शरीरको जगत्में स्थापित कर अपने पुराने रूपको धारण कर लिया था। फिर अव्यक्त प्रकृतिवाले भगवान् विष्णु पञ्चभूतोंसे युक्त एवं चमकीले आठ पहियेवाले रथपर सवार हो अपने निवास स्थानको चले गये॥ ९८—१०७॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आप भगवान् नरसिंहके माहात्म्यका तो विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके, अब पुनः उन्होंने भगवान्के दूसरे माहात्म्यको विस्तारपूर्वक बतलाइये। भला, पूर्वकालमें स्वर्णमय कमलसे यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ था और उस कमलमेंसे वैष्णवी सृष्टि कैसे प्रादुर्भूत हुई थी ?॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् नरसिंहके माहात्म्यको सुनकर सूर्यपुत्र मनुके नेत्र आश्रयसे उत्फुल्ल हो उठे, तब उन्होंने पुनः भगवान् केशवसे प्रश्न किया॥ ३॥

मनुने पूछा—जनार्दन ! ‘पाद्मकल्प’ में जब आप इस जलार्णवके मध्यमें स्थित थे, तब आपकी नाभिसे यह पद्ममय जगत् कैसे उत्पन्न हुआ था ?

प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराभ्यसि ।
 पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥ ५
 एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते ।
 शृण्वत्सस्तस्य मे कीर्ति न तृप्तिरुपजायते ॥ ६
 कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तमः ।
 कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः ॥ ७
 कियता वाथ कालेन हृत्तिष्ठति महायशाः ।
 कथं चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलं जगत् ॥ ८
 के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने ।
 कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम् ॥ ९
 कथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
 दग्धे देवासुरने प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ १०
 नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
 केवलं गह्यर्थूते महाभूतविपर्यये ॥ ११
 विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
 आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥ १२
 शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्तदशेषतः ।
 वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम् ॥ १३
 श्रद्धया चोपविष्टानां भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ १४
 मत्स्य उवाच
 नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ।
 तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्घ्यभ ॥ १५
 शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथा श्रुतम् ।
 ब्राह्मणानां च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ॥ १६
 यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ।
 पराशरसुतः श्रीमान् गुरुद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १७
 तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुतिः ।
 यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ॥ १८
 कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।
 विश्वायनश्च यद् ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः ॥ १९

पूर्वकालमें समुद्रके जलमें शयन करनेवाले भगवान् पद्मनाभके प्रभावसे उस कमलमें ऋषिगणोंसहित देवगण कैसे उत्पन्न हुए थे ? योगवेत्ताओंके अधीश्वर ! इस सम्पूर्ण योगका वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान्की कीर्तिका वर्णन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है । (कृपया यह बतलाइये कि) भगवान् पुरुषोत्तम कितने समयके पश्चात् शयन करते हैं ? कितने कालतक सोते हैं ? इस कालका उद्धव (निर्धारण) कहाँसे होता है ? फिर वे महायशस्वी भगवान् कितने समयके बाद निद्रा त्यागकर उठते हैं ? निद्रासे उठकर वे भगवान् किस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं ? महामुने ! पूर्वकालमें कौन-कौन-से प्रजापति थे ? इस विचित्र सनातन लोकका निर्माण किस प्रकार किया गया था ? महाप्रलयके समय जब स्थावर-जङ्गम—सभी प्राणी नष्ट हो जाते हैं, देवता, राक्षस और मनुष्य जलकर भस्म हो जाते हैं, नागों और राक्षसोंका विनाश हो जाता है, लोकमें अग्नि, वायु, आकाश और पृथ्वीतलका सर्वथा लोप हो जाता है, उस समय पञ्चमहाभूतोंका विपर्यय हो जानेपर केवल घना अन्धकार छाया रहता है, तब उस शून्य एकार्णवके जलमें सर्वव्यापी, पञ्चमहाभूतोंके स्वामी, महातेजस्वी, विशालकाय, सुरेश्वरोंमें श्रेष्ठ एवं योगवेत्ता भगवान् किस प्रकार विधिका सहारा लेकर स्थित रहते हैं ? ब्रह्मन् ! यह सारा प्रसङ्ग मैं परम भक्तिके साथ सुनना चाहता हूँ । धर्मिष्ठ ! आप इस नारायण-सम्बन्धी यशका वर्णन कीजिये । भगवन् ! हमलोग श्रद्धापूर्वक आपके समक्ष बैठे हैं, अतः आप इसका अवश्य वर्णन कीजिये ॥ ४—१४ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—सूर्यकुलसत्तम ! नारायणकी यशोगाथा सुननेमें जो आपकी विशेष स्पृहा है, यह नारायणके वंशजोंके कुलमें उत्पन्न होनेवाले आपके लिये उचित ही है । मैंने पुराणों, वेदों तथा प्रवचनकर्ता श्रेष्ठ महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे जैसा सुना है तथा बृहस्पतिके समान कान्तिमान् पराशरनन्दन गुरुदेव श्रीमान् कृष्णद्वैपायन व्यासजीने तपोबलसे साक्षात्कार करके जैसा मुझे बतलाया है, वही मैं अपनी जानकारीके अनुसार यथाशक्ति आपसे वर्णन कर रहा हूँ, सावधानीपूर्वक श्रवण कीजिये । द्विजवरो ! जिसे ऋषियोंमें केवल मैं ही जान सकता हूँ । जिसे विश्वके आश्रयस्थान ब्रह्मा भी तत्त्वपूर्वक नहीं जानते, नारायणके उस परम तत्त्वको जाननेके लिये दूसरा कौन उत्साह कर सकता है ।

तत्कर्म विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम्।
तमिन्द्रं सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वदर्शिनाम्।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यं नरकं च विकर्मिणाम्॥ २०
अधिदैवं च यद्यैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम्।
तदभूतमधिभूतं च तत्परं परमर्षिणाम्॥ २१
स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्पः कवयो विदुः।
यः कर्ता कारको बुद्धिमनः क्षेत्रज्ञ एव च॥ २२
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्वेति विभाव्यते।
प्राणः पञ्चविधश्वैव ध्रुव अक्षर एव च॥ २३
कालः पाकश्च पक्ता च द्रष्टा स्वाध्याय एव च।
उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम्॥ २४
स एव भगवान् सर्व करोति विकरोति च।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान्॥ २५
यजामहे तमेवाद्यं तमेवेच्छाम निर्वृताः।
यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहं तद्ब्रवीभिर्वतः॥ २६
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते।
याः कथाश्वैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः।
विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः॥ २७
यत्सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत्-
यदभूतं परममिदं च यद्भविष्यत्।
यत् किंचिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वं पुरुषवरः प्रभुः पुराणः॥ २८

वही समस्त वेदोंका कर्म है। वही महर्षियोंका रहस्य है। सम्पूर्ण यज्ञोंद्वारा पूजनीय वही है। वही सर्वज्ञोंका तत्त्व है। अध्यात्मवेत्ताओंके लिये वही चिन्तनीय और कुकर्मियोंके लिये नरकस्वरूप है। उसीको अधिदेव, देव और अधियज्ञ नामसे अभिहित किया जाता है। वही भूत, अधिभूत और परमर्षियोंका परम तत्त्व है॥ १५—२१॥

वेदोंद्वारा निर्दिष्ट यज्ञ वही है। विद्वान्लोग उसे तपरूपसे जानते हैं। जो कर्ता, कारक, बुद्धि, मन, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शास्ता और अद्वितीय कहा जाता है तथा विभिन्न देवता जिसे पाँच प्रकारका प्राण, अविनाशी ध्रुव, काल, पाक, पक्ता (पचानेवाला), द्रष्टा और स्वाध्याय कहते हैं, वह यही है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं। वे ही भगवान् सम्पूर्ण जगत्के उत्पादक हैं और वे ही संहारक भी हैं। वे ही हम सब लोगोंको उत्पन्न करते हैं और अन्तमें व्याकुल करके नष्ट कर देते हैं। हमलोग उन्हीं आदि पुरुषकी यज्ञद्वारा आराधना करते हैं और निवृत्तिपरायण होकर उन्हींको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। जो वक्ता है, जो वक्तव्य है, जिसके विषयमें मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, जो सुना जाता है, जो सुनने योग्य है, जिसके विषयमें अन्य सारी बातें कही जाती हैं, जो कथाएँ प्रचलित हैं, श्रुतियाँ जिसके परायण हैं, जो विश्वस्वरूप और विश्वका स्वामी है, वही नारायण कहा गया है। जो सत्य है, जो अमृत है, जो अक्षर है, जो परात्पर है, जो भूत है और जो भविष्यत् है, जो चर-अचर जगत् है, इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, वह सब कुछ सामर्थ्यशाली एवं सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष ही है॥ २२—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे चतुःषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६४॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

चारों युगोंकी व्यवस्थाका वर्णन

मत्स्य उवाच

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा रविनन्दन ॥ १
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः।
स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः ॥ २
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः।
कृष्णामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः ॥ ३
तदा सत्यं च शौचं च धर्मश्चैव विवर्धते।
सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै ॥ ४
एतत्कार्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव।
प्राणिनां धर्मसङ्गानामपि वै नीचजन्मनाम् ॥ ५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते ॥ ६
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः।
यत्र सत्यं च सत्त्वं च त्रेताधर्मो विधीयते ॥ ७
त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेते न संशयः।
चतुर्वर्णस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः ॥ ८
एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता।
द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥ ९
द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा युगमुच्यते ॥ १०
तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः।
सर्वे नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन ॥ ११
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्म्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः।
विपर्याच्छनैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे ॥ १२
ब्राह्मण्यभावस्य ततस्तथौत्सुक्यं विशीर्यते।
व्रतोपवासास्त्यज्ञन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥ १३

मत्स्यभगवान् ने कहा—रविनन्दन! कृतयुगकी अवधि चार हजार दिव्य वर्षोंकी बतलायी जाती है और उसकी संध्या उससे दुगुनी शती अर्थात् आठ सौ वर्षोंकी होती है। उस युगमें धर्म अपने चारों पादोंसे विद्यमान रहता है और अधर्म चतुर्थांशमात्र रहता है। उस युगमें उत्पन्न होनेवाले मानव अपने धर्ममें निरत रहते हैं। ब्राह्मण धर्म-पालनमें तत्पर रहते हैं। क्षत्रिय राज-धर्ममें स्थित रहते हैं। वैश्य कृषिकर्ममें लगे रहते हैं और शूद्र सेवाकार्यमें तल्लीन रहते हैं। उस समय सत्य, शौच और धर्मकी अभिवृद्धि होती है। सभी लोग सत्पुरुषोंद्वारा आचरित कर्मका अनुकरण करते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। पार्थिव! कृतयुगका यह आचार सभी प्राणियोंमें पाया जाता है, चाहे वे धर्मप्राण विप्र आदि हों अथवा नीच जातिके हों। इसके बाद तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग कहलाता है। उसकी संध्या उससे दुगुनी शती अर्थात् छः सौ वर्षकी कही गयी है। इस युगमें धर्म तीन चरणोंसे और अधर्म दो पादोंसे स्थित रहता है। उस समय त्रेताधर्म सत्य और सत्त्वगुणप्रधान माना जाता है। इसमें संदेह नहीं कि त्रेतायुगमें ये ब्राह्मणादि चारों वर्ण (कुछ) विकृत हो जाते हैं और इनके विकृत हो जानेके कारण चारों आश्रम भी दुर्बलताको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् द्वारा निर्मित त्रेतायुगकी यह विचित्र गति है। अब द्वापरयुगकी जो चेष्टा है, उसे भी सुनिये ॥ १—९ ॥

रविनन्दन! द्वापरयुग दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है। उसकी संध्या चार सौ वर्षोंकी कही जाती है। सूर्यपुत्र! उस युगमें रजोगुणसे ग्रस्त सभी प्राणी अर्थपरायण होते हैं। उस युगमें जन्म लेनेवाले सभी प्राणी निष्कर्मी एवं क्षुद्र विचारवाले होते हैं। उस समय धर्म दो चरणोंसे स्थित रहता है और अधर्मकी वृद्धि तीन चरणोंसे होती है। इस प्रकार धीरे-धीरे परिवर्तन होनेके कारण कलियुगमें धर्म नष्ट हो जाता है। द्वापरयुगके परिवर्तनके समय लोगोंमें ब्राह्मणोंके प्रति आस्था नष्ट हो जाती है और लोग व्रत-उपवास आदिको छोड़ बैठते हैं। उस समय

तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते अपि।
संध्यया सह संख्यातं कूरं कलियुगं स्मृतम्॥ १४

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मः पादविग्रहः।
कामिनस्तपसा हीना जायन्ते तत्र मानवाः॥ १५

नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक्।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः॥ १६

अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे॥ १७

आश्रमाणां विपर्यासः कलौ सम्परिवर्तते।
वर्णानां चैव संदेहो युगान्ते रविनन्दन॥ १८

विद्याद् द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम्।
एवं सहस्रपर्यन्तं तदहर्ब्रह्ममुच्यते॥ १९

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम्।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः॥ २०

देवतानां च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते।
दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम्॥ २१

गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानां च पार्थिव।
पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम।

तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां कृमिणां तथा॥ २२

महाभूतपतिः पञ्च हृत्वा भूतानि भूतकृत्।
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वशसं महत्॥ २३

भूत्वा सूर्यशक्षुषी चाददानो
भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम्।

भूत्वा वह्निर्दहन् सर्वलोकान्
भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत्॥ २४

क्रूर कलियुगका प्रवेश होता है, जिसकी संख्या संध्याके दो सौ वर्षोंसहित एक हजारकी बतलायी गयी है। उस युगमें अधर्म चारों पादोंसे प्रभावी हो जाता है और धर्म चतुर्थांशमात्र रह जाता है। उस युगमें जन्म लेनेवाले मानव कामपरायण और तपस्यासे हीन होते हैं। कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले मानवोंमें न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक होता है और न साधुस्वभाव एवं सत्यवादी ही होता है। सभी नास्तिक हो जाते हैं और अपनेको परब्रह्मका भक्त बतलाते हैं। लोग अहंकारके वशीभूत और प्रेमबन्धनसे रहित हो जाते हैं। कलियुगमें सभी ब्राह्मण शूद्रके समान आचरण करने लगते हैं। रविनन्दन! कलियुगमें आश्रमोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। युगान्तका समय आनेपर तो लोगोंमें वर्णोंका भी संदेह उत्पन्न हो जाता है॥ १०—१८॥

महीपते! इस प्रकार पूर्वकालमें निर्मित बारह हजारकी युग-संख्या जाननी चाहिये। इस प्रकार जब एक हजार चतुर्युगी बीत जाती है, तब ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है। ब्रह्माके उस दिनके व्यतीत हो जानेपर जीवोंके उत्पादक महाभूतपति श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीर-मोक्षको देखकर लोकसंहारकी भावनासे ब्रह्मा आदि सभी देवताओं, दैत्यों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, पक्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, नागों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जीवों तथा कीटोंके पञ्चमहाभूतोंका विनाश कर जगत्का संहार करनेके निमित्त महान् विनाशकारी दृश्य उत्पन्न कर देते हैं। उस समय वे सूर्य बनकर सभीके नेत्रोंकी ज्योति नष्ट कर देते हैं, वायुरूप होकर जीवोंके प्राणसमूहको समेट लेते हैं, अग्निका रूप धारणकर सभी लोकोंको जलाकर भस्म कर देते हैं तथा मेघ बनकर पुनः भयंकर वृष्टि करते हैं॥ १९—२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्धवप्रादुर्भावे पञ्चषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्धवप्रसङ्गमें एक सौ पेंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६५ ॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

महाप्रलयका वर्णन

मत्स्य उवाच

भूत्वा नारायणो योगी सत्त्वमूर्तिर्विभावसुः ।
 गभस्तिभिः प्रदीपाभिः संशोषयति सागरान् ॥ १
 ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः ।
 पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः ॥ २
 भित्वा गभस्तिभिश्चैव महीं गत्वा रसातलात् ।
 पातालजलमादाय पिबते रसमुत्तमम् ॥ ३
 मूत्रासृक् क्लेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् ।
 तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४
 वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
 प्राणापानसमानाद्यान् वायूनाकर्षते हरिः ॥ ५
 ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु ।
 गन्धो घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संश्रिता गुणाः ॥ ६
 जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः ।
 रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः ॥ ७
 स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवने संश्रिता गुणाः ।
 शब्दः श्रोत्रं च खान्येव गगने संश्रिता गुणाः ॥ ८
 लोकमाया भगवता मुहूर्तेन विनाशिता ।
 मनो बुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः ॥ ९
 तं वरेण्यं परमेष्ठी हृषीकेशमुपाश्रितः ।
 ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ॥ १०
 वायुनाक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासु चाश्रितः ।
 तेषां संघर्षणोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् ॥ ११
 अदहच्च तदा सर्वं वृतः संवर्तकोऽनलः ।
 सपर्वतद्रुमान् गुल्माल्लतावल्लीस्तृणानि च ॥ १२
 विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।
 यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥ १३
 भस्मीकृत्य ततः सर्वाल्लोकाल्लोकगुरुर्हरिः ।
 भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा ॥ १४

मत्स्यभगवानने कहा—रविनन्दन! तदनन्तर वे सत्त्वमूर्ति योगी नारायण सूर्यका रूप धारण कर अपनी उदीस किरणोंसे सागरोंको सोख लेते हैं। इस प्रकार सभी सागरोंको सुखा देनेके पश्चात् अपनी किरणोंद्वारा नदियों, कुओं और पर्वतोंका सारा जल खींच लेते हैं। फिर वे किरणोंद्वारा पृथ्वीका भेदन करके रसातलमें जा पहुँचते हैं और वहाँ पातालके उत्तम रसरूप जलका पान करते हैं। तत्पश्चात् कमलनयन पुरुषोत्तम नारायण प्राणियोंके शरीरमें निश्चितरूपसे रहनेवाले मूत्र, रक्त, मज्जा तथा अन्य जो गीले पदार्थ होते हैं, उन सबके रसको ग्रहण कर लेते हैं। तदुपरान्त भगवान् श्रीहरि वायुरूप होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकम्पित करते हुए प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानरूप पाँचों प्राणवायुओंको खींच लेते हैं। तदनन्तर सभी देवगण, पाँचों महाभूत, गन्ध, प्राण, शरीर—ये सभी गुण पृथ्वीमें विलीन हो जाते हैं। जिह्वा, रस, स्वेह (चिकनाहट)—ये सभी गुण जलमें लीन हो जाते हैं। रूप, चक्षु, विपाक (परिणाम)—ये गुण अग्निमें मिल जाते हैं। स्पर्श, प्राण, चेष्टा—ये सभी गुण वायुका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। शब्द, श्रोत्र, इन्द्रियाँ—ये सभी गुण आकाशमें विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् नारायण दो ही घड़ीमें सारी लोकमायाको विनष्ट कर देते हैं ॥ १—८ ॥

तदनन्तर जो सभी प्राणियोंका मन, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, वह अग्नि उन सर्वश्रेष्ठ हृषीकेशके निकट पहुँचता है और उन भगवान्की किरणोंसे युक्त हो वायुद्वारा आक्रान्त वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय ग्रहण करता है। वहाँ वृक्षोंके संघर्षसे उत्पन्न हुई वह अग्नि सैकड़ों ज्वालाएँ फैकने लगती है। फिर उससे धिरा हुआ संवर्तक अग्नि सबको जलाना आरम्भ करती है। वह पर्वतीय वृक्षोंसहित गुल्मों, लताओं, बल्लियों, घास-फूसों, दिव्य विमानों, अनेकों नगरों तथा अन्यान्य जो आश्रय लेनेयोग्य स्थान होते हैं, उन सबको जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार लोकोंके गुरुस्वरूप श्रीहरि समस्त लोकोंको जलाकर पुनः युगान्तकालिक कर्मद्वारा समूची सृष्टिका विनाश कर देते

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः ।
 दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥ १५
 ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाभ्यसा ।
 शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥ १६
 तेन रोधेन संछन्ना पयसां वर्षतो धरा ।
 एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥ १७
 महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम् ।
 नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ॥ १८
 संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः ।
 दग्ध्वा सम्प्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ॥ १९
 पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ।
 एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः ॥ २०
 अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाभ्यसि ।
 न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥ २१
 कश्चैव पुरुषो नाम किं योगः कश्च योगवान् ।
 असौ कियन्तं कालं च एकार्णवविधिं प्रभुः ।
 करिष्यतीति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥ २२
 न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ।
 तस्य न ज्ञायते किंचित्तमृते देवसत्तमम् ॥ २३
 नभः क्षितिं पवनमपः प्रकाशं
 प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
 पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं
 प्रशाम्य भूयः शयनं ह्यरोचयत् ॥ २४

हैं । तदुपरान्त महाबली विष्णु सैकड़ों-हजारों प्रकारकी वृष्टिका रूप धारण कर दिव्य जलरूपी हविसे पृथ्वीको तृप्ति कर देते हैं । तब उस दूध-सदृश स्वादिष्ट कल्याणकारक पुण्यमय उत्तम जलसे पृथ्वी परम शान्त हो जाती है । बरसते हुए जलके उस धेरेसे आच्छादित हुई पृथ्वी समस्त प्राणियोंसे रहित हो एकार्णवके जलके रूपमें परिणत हो जाती है ॥ ९—१७ ॥

उस समय सूर्य, वायु और आकाशके नष्ट हो जानेपर तथा सूक्ष्म जगत्के आच्छादित हो जानेपर महान्-से-महान् जीव-जन्म भी अमित ओजस्वी एवं सर्वव्यापी नारायणमें प्रविष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार वे सनातन भगवान् स्वयं अपने द्वारा समुद्रोंको सुखाकर, देहधारियोंको जलाकर तथा पृथ्वीको जलमें निमग्न करके अकेले शयन करते हैं । अमित पराक्रमी, एकार्णवके जलमें व्याप्त रहनेवाले एवं योगबलसम्पन्न नारायण योगका आश्रय ले उस एकार्णवके जलमें अपना पुराना रूप धारण कर अनेकों हजार युगोंतक शयन करते हैं । उस समय कोई भी इन अव्यक्त नारायणको व्यक्तरूपसे नहीं जान सकता । वह पुरुष कौन है ? उसका क्या योग है ? वह किस योगसे युक्त है ? वे सामर्थ्यशाली भगवान् कितने समयतक इस एकार्णवके विधानको करेंगे ? इसे कोई नहीं जानता । उस समय न कोई उन्हें देख सकता है, न कोई वहाँ जा सकता है, न कोई उन्हें जान सकता है और न कोई उनके निकट पहुँच सकता है । उन देवश्रेष्ठके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उनके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकता । इस प्रकार आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, प्रजापति, पर्वत, सुरेश्वर, पितामह ब्रह्म, वेदसमूह और महर्षि—इन सबको प्रशान्त कर वे पुनः शयनकी इच्छा करते हैं ॥ १८—२४ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे पद्मोद्घवप्रादुर्भावे षट्पृष्ठधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके पद्मोद्घवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ छात्रवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६६ ॥

एक सौ सङ्ग्रहालय अध्याय

भगवान् विष्णुका एकार्णवके जलमें शयन, मार्कण्डेयको
आश्र्य तथा भगवान् विष्णु और मार्कण्डेयका संवाद

मत्स्य उवाच

१	एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः। प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वी हंसो नारायणस्तदा॥
२	महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै। विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म यं विदुः॥
३	आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः। मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत्सत्यमासत॥
४	याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतं तद् ब्रह्मणा पुरा। रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम्॥
५	पुरुषो यज्ञ इत्येतद्यत्परं परिकीर्तितम्। यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एष पुरुषोत्तमः॥
६	ये च यज्ञकरा विप्रा ये चर्त्विज इति स्मृताः। अस्मादेव पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा॥
७	ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्घातारं च सामगम्। होतारमपि चाध्वर्युः बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः॥
८	ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारं च सर्वशः। तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारमेव च॥
९	उदरात् प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव। अच्छावाकमथोरभ्यां नेष्टारं चैव पार्थिव॥
१०	पाणिभ्यामथ चाग्नीधं सुब्रह्मण्यं च जानुतः। ग्रावस्तुतं तु पादाभ्यामुन्नेतारं च याजुषम्॥
११	एवमेवैष भगवान् षोडशैव जगत्पतिः। प्रवक्तृन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान्॥
१२	तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंस्थितः। वेदाश्रैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः॥
१३	स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्र्यमभूत् पुरा। श्रूयन्तां तद्यथा विप्रा मार्कण्डेयकुतूहलम्॥
१४	गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः। बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा॥

वरतेजसा ॥ १४

मत्स्यभगवानने कहा—राजर्षे! इस प्रकार जगत्के एकार्णवके जलमें निमग्न हो जानेपर परम कान्तिमान् हंसस्वरूपी नारायण पृथ्वीको जलसे भलीभाँति आच्छादित कर विशाल रेतीले टापूके मध्यमें स्थित उस महार्णवके सरोवरमें शयन करते हैं। उन्हीं महाबाहुको रजोगुणरहित अविनाशी ब्रह्म कहा जाता है। अन्धकारसे आच्छादित हुए भगवान् अपने स्वरूपके प्रकाशसे प्रकाशित हो मनको सत्त्वगुणमें स्थापितकर वहाँ विराजित होते हैं। वे ही सत्यस्वरूप हैं। यथार्थ परम ज्ञान भी वे ही हैं, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माने अनुभव किया था। वे ही आरण्यकोंद्वारा उपदिष्ट रहस्य और उपनिषत्प्रतिपादित ज्ञान हैं। उन्हींको परमोक्तृष्ट यज्ञपुरुष कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो दूसरा पुरुष नामसे विख्यात है, वह पुरुषोत्तम भी वे ही हैं। जो यज्ञपरायण ब्राह्मण और जो ऋत्विज् कहे गये हैं, वे सभी पूर्वकालमें इन्हींसे उत्पन्न हुए थे। अब यज्ञोंके विषयमें सुनिये। राजन्! उन प्रभुने सर्वप्रथम मुखसे ब्रह्मा और सामग्न करनेवाले उद्गाताको, दोनों भुजाओंसे होता और अध्वर्युको, ब्रह्मासे ब्राह्मणाच्छंसी और प्रस्तोताको, पृष्ठभागसे मैत्रावरुण और प्रतिप्रस्तोताको, उदरसे प्रतिहर्ता और पोताको, ऊरुओंसे अच्छावाक् और नेष्टाको, हाथोंसे आग्नीध्रको, जानुओंसे सुब्रह्मण्यको तथा पैरोंसे ग्रावस्तुत और यजुर्वेदी उन्नेताको उत्पन्न किया ॥ १—१० ॥

इस प्रकार इन जगदीश्वर भगवानने सम्पूर्ण यज्ञोंके प्रवक्ता सोलह श्रेष्ठ ऋत्विजोंको उत्पन्न किया। ये ही वेदमय पुरुष यज्ञोंमें भी स्थित रहते हैं। सभी वेद और उपनिषदोंकी साङ्गोपाङ्ग क्रियाएँ इन्हींके स्वरूप हैं। विप्रवरो! पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें शयन करते समय मार्कण्डेय मुनिको कुतूहल उत्पन्न करनेवाली एक आश्र्यजनक घटना घटित हुई थी। अब आप उसे सुनिये। भगवान्द्वारा निगले गये महामुनि मार्कण्डेय उन्हींकी कुक्षिमें उन्हींके श्रेष्ठ तेजसे कई हजार वर्षोंकी आयुतक भ्रमण करते

अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीं तीर्थगोचराम्।
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च॥ १५

देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमपरः शान्तस्तपो घोरं समास्थितः॥ १६

मार्कण्डेयस्तस्तस्य शनैर्वक्त्राद् विनिःसृतः।
स निष्क्रामन् न चात्मानं जानीते देवमायया॥ १७

निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षतः॥ १८

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहष्टो विस्मयं परमं गतः॥ १९

चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयो विशङ्कितः।
किं नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते॥ २०

व्यक्तमन्यतमो भावस्तेषां सम्भावितो मम।
न हीदृशं जगत्क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति॥ २१

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः॥ २२

ददर्श चापि पुरुषं स्वपनं पर्वतोपमम्।
सलिलेऽर्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे॥ २३

ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम्।
शर्वर्या जाग्रतमिव भासनं स्वेन तेजसा॥ २४

देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात्।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः॥ २५

सम्प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः।
तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम्॥ २६

स तथैव यथापूर्वं यो धरामटते पुरा।
पुण्यतीर्थजलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च॥ २७

रहे। वे तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे तीर्थोंको प्रकट करनेवाली पृथिवी, पुण्यमय आश्रमों, देव-मन्दिरों, देशों, राष्ट्रों और अनेकों रमणीय नगरोंको देखते हुए जप और होममें तत्पर रहकर शान्तभावसे घोर तपस्यामें लगे हुए थे। तत्पश्चात् मार्कण्डेय मुनि धीरे-धीरे भ्रमण करते हुए भगवान्‌के मुखसे बाहर निकल आये, किंतु देवमायाके वशीभूत होनेके कारण वे अपनेको मुखसे निकला हुआ न जान सके। भगवान्‌के मुखसे बाहर निकलनेपर मार्कण्डेयजीने देखा कि सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न है और सब ओर अन्धकार छाया हुआ है। यह देखकर उनके मनमें महान् भय उत्पन्न हो गया और उन्हें अपने जीवनमें भी संशय दिखायी पड़ने लगा। इसी समय हृदयमें भगवान्‌का दर्शन होनेसे प्रसन्नता तो हुई, साथ ही महान् आश्र्य भी हुआ॥ ११—१९॥

इस प्रकार जलके मध्यमें स्थित मार्कण्डेय मुनि शंकित चित्तसे विचार करने लगे कि यह मेरी आकस्मिक चिन्ता है या मेरी बुद्धिपर मोह छा गया है अथवा मैं स्वप्नका अनुभव कर रहा हूँ? परंतु यह तो स्पष्ट है कि मैं इनमेंसे किसी एक भावका अनुभव तो अवश्य कर रहा हूँ; क्योंकि इस प्रकार क्लेशसे रहित जगत् सत्य नहीं हो सकता। जब चन्द्रमा, सूर्य और वायु नष्ट हो गये तथा पर्वत और पृथिवीका विनाश हो गया, तब यह कौन-सा लोक हो सकता है? वे इस प्रकारकी चिन्तासे ग्रस्त हो गये। इतनेमें ही उन्हें वहाँ एक पर्वत-सरीखा विशालकाय पुरुष शयन करता हुआ दीख पड़ा, जिसके शरीरका आधा भाग सागरमें बादलकी तरह जलमें डूबा हुआ था। वह अपने तेजसे किरणयुक्त सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था। अपने तेजसे उद्भासित होता हुआ वह रात्रिके अन्धकारमें जाग्रत्-सा दीख रहा था। तब मार्कण्डेय मुनि आश्र्ययुक्त हो उस देवको देखनेके लिये ज्यों ही उसके निकट जाकर बोले—‘आप कौन हैं?’ त्यों ही उसने पुनः उन्हें अपनी कुक्षिमें समेट लिया। पुनः कुक्षिमें प्रविष्ट हुए मार्कण्डेयको परम विस्मय हुआ। वे बाह्य जगत्को पूर्ववत् स्वप्नदर्शन ही मान रहे थे। वे उस कुक्षिके अन्तर्गत जैसे पहले पृथिवीपर विचरण कर रहे थे, उसी प्रकार पुनः भ्रमण करने लगे। उन्होंने पुण्यमय तीर्थजलसे भरी हुई नदियों, अनेकों

क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणान्।
अपश्यदेवकुक्षिस्थान्याजकाञ्छतशो द्विजान्॥ २८

सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टा मया तव॥ २९
एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः।
चरतः पृथिवीं सर्वा न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः॥ ३०
ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः।
गुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरक्षत॥ ३१
तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे।
अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते॥ ३२
स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः।
बालमादित्यसंकाशं नाशक्नोदधिभीक्षितुम्॥ ३३
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ।
पूर्वदृष्टिमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया॥ ३४
अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः।
प्लवंस्तथार्तिमगमद् भयात् संत्रस्तलोचनः॥ ३५
स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान्।
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः॥ ३६
मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि मेऽन्तिकम्।
मार्कण्डेयो मुनिस्त्वाह बालं तं श्रमपीडितः॥ ३७

मार्कण्डेय उवाच

को मां नामा कीर्तयति तपः परिभवन्मम।
दिव्यं वर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निव मे वयः॥ ३८
न होष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः।
मां ब्रह्मापि हि देवेषो दीर्घायुरिति भाषते॥ ३९
कस्तमो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति॥ ४०

सूत उवाच

एवमाभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः।
तथैव भगवान् भूयो बभाषे मधुसूदनः॥ ४१

आश्रमों तथा कुक्षिके भीतर स्थित सैकड़ों याजक ब्राह्मणोंको देखा, जो कहीं यज्ञोद्वारा यजन कर रहे थे और कहीं यज्ञ समाप्त होनेके पश्चात् उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त थे। जैसा मैंने तुम्हें पहले बतलाया है, उसके अनुसार ब्राह्मण आदि सभी वर्णों तथा चारों आश्रमोंके लोग सम्यक् प्रकारसे सदाचारका पालन करते थे॥ २०—२९॥

इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेयके सौ वर्षोंसे भी अधिक कालतक समृच्छीपर भ्रमण करते रहनेपर भी उन्हें उस कुक्षिका अन्त न दीख पड़ा। तत्पश्चात् किसी समय वे पुनः उस पुरुषके मुखसे बाहर निकल आये। उस समय उन्होंने बरगदकी शाखामें छिपे हुए एक बालकको देखा, जो उसी प्रकारके एकार्णवके जलमें, यद्यपि आकाश नीहारसे आच्छादित था तथा जगत् समस्त प्राणियोंसे शून्य हो गया था, तथापि निश्चिन्तभावसे खेल रहा था। यह देखकर मार्कण्डेय मुनि आश्र्वयचकित हो गये। उनके मनमें उसे जाननेके लिये कुतूहल उत्पन्न हो गया, किंतु वे सूर्यके समान तेजस्वी उस बालककी ओर देखनेमें असमर्थ हो गये। तब जलके निकट एकान्त स्थानमें स्थित होकर विचार करते हुए मार्कण्डेयजी देवमायाके प्रभावसे सशङ्कित हो उसे पहले देखा हुआ मानने लगे। परम विस्मित हुए मार्कण्डेय उस अथाह जलमें तैरते हुए कष्टका अनुभव करने लगे तथा भयके कारण उनके नेत्र कातर हो गये। तब बालयोगी भगवान् पुरुषोत्तम मेघ-सदृश गम्भीर स्वरसे मार्कण्डेयसे स्वागतपूर्वक बोले—‘वत्स! डरो मत, तुम्हें डरना नहीं चाहिये। यहाँ मेरे निकट आओ।’ तदुपरान्त थके-माँदे मार्कण्डेय मुनि उस बालकसे बोले॥ ३०—३७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—यह कौन है, जो मेरी तपस्याका तिरस्कार करता हुआ मेरा नाम लेकर पुकार रहा है? यह एक हजार दिव्य वर्णवाली मेरी आयुका भी अपमान-सा कर रहा है। देवताओंमें भी किसीको मेरे प्रति ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं है; क्योंकि देवेश्वर ब्रह्मा भी मुझे ‘दीर्घायु’ कहकर ही पुकारते हैं। जीवनसे हाथ धोनेवाला ऐसा कौन है, जो घोर अज्ञानान्धकारका आश्रय लेकर आज मुझे ‘मार्कण्डेय’ ऐसा कहकर मृत्युका मुख देखना चाहता है?॥ ३८—४०॥

सूतजी कहते हैं—त्रष्णियो! महामुनि मार्कण्डेय क्रोधवश उस बालकसे ऐसा कहकर चुप हो गये। तब भगवान् मधुसूदन पुनः उसी प्रकार बोले॥ ४१॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः ।
आयुष्मदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि ॥ ४२
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसो मुनिः ।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ॥ ४३
ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोदमितौजसम् ।
उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिमितौजसम् ॥ ४४
कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः ।
द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगवर्त्मना ॥ ४५
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्कुल्ललोचनः ।
मूर्धि बद्धाङ्गलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ ४६
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुलोकपूजितः ।
तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत् ॥ ४७

मार्कण्डेय उवाच

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥ ४८
किं संज्ञश्वै भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो ।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति ॥ ४९

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मन् सर्वभूः सर्वनाशनः ।
अहं सहस्रशीर्षाख्यैर्यः पदैरभिसंज्ञितः ॥ ५०
आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः ।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ॥ ५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः ।
अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्त एव च ॥ ५२
अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि तु ।
भुजङ्गानामहं शेषस्ताक्षर्यो वै सर्वपक्षिणाम् ॥ ५३
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥ ५४
अहं चैव सरिद्विव्या क्षीरोदश्च महार्णवः ।
यत्तत्सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥ ५५

श्रीभगवान् कहा—‘वत्स ! मैं पुराणप्रसिद्ध हृषीकेश ही तुम्हें जन्म देनेवाला तुम्हारा पिता और गुरु हूँ । मैंने ही तुम्हें दीर्घायु प्रदान किया है, तुम मेरे निकट क्यों नहीं आ रहे हो ? तुम्हारे पिता अङ्गिरा मुनिने पहले पुत्र-प्रासिकी कामनासे कठोर तपका आश्रय ले मेरी आराधना की थी और उस घोर तपस्याके परिणामस्वरूप तुम्हारे-जैसे अमित ओजस्वी पुत्रका वरदान माँगा था, तब मैंने उन आत्मज्ञानमें लीन एवं अमित पराक्रमी महर्षिको वरदान दिया था । अन्यथा तुम्हारे अतिरिक्त पञ्चभूतात्मक शरीरधारीका पुत्र दूसरा कौन है, जो एकार्णवके जलमें योगमार्गका आश्रय लेकर क्रीडा करते हुए मुझे देखनेका साहस कर सकता है ? यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उनके नेत्र विस्मयसे उत्कुल्ल हो गये । तब वे लोकपूजित दीर्घायु मुनि मस्तकपर हाथ जोड़कर नाम और गोत्रका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक उन भगवान्‌को नमस्कार करते हुए बोले ॥ ४२—४७ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—अनघ ! मैं आपकी इस मायाको तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूँ, जो आप बालकका रूप धारण करके इस एकार्णवके जलके मध्यमें स्थित होकर शयन करते हैं । ऐश्वर्यशाली प्रभो ! आप लोकमें किस नामसे विख्यात होते हैं ? मैं आपको एक महान् आत्मबल-सम्पन्न पुरुष मानता हूँ, अन्यथा दूसरा कौन इस प्रकार स्थित रह सकता है ॥ ४८-४९ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! मैं सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला तथा सबका विनाशक नारायण हूँ । जो सहस्रशीर्ष आदि नामोंसे अभिहित होता है, वह मैं ही हूँ । मैं ही आदित्यवर्ण पुरुष और यज्ञमें ब्रह्ममय यज्ञ हूँ । मैं ही हव्यको वहन करनेवाला अग्नि और जल-जन्तुओंका अविनाशी स्वामी हूँ । इन्द्रपदपर स्थित रहनेवाला इन्द्र तथा वर्षोंमें परिवत्सर मैं हूँ । मैं ही योगी, युग नामसे प्रसिद्ध और युगोंका अन्त करनेवाला हूँ । समस्त प्राणी और सम्पूर्ण देवता मेरे ही स्वरूप हैं । मैं सर्पोंमें शेषनाग और सम्पूर्ण पक्षियोंमें गरुड हूँ । मैं सभी प्राणियोंका अन्त करनेवाला तथा लोकोंका काल हूँ । चारों आश्रमोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंका धर्म और तप मैं ही हूँ । मैं दिव्य नदी गङ्गा और दूधरूपी जलसे भरा हुआ महासागर हूँ । जो परम सत्य है, वह मैं हूँ । मैं ही एकमात्र प्रजापति हूँ ।

अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमं पदम्।
 अहमिन्द्याक्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥ ५६
 अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
 अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ ५७
 अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः।
 क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः ॥ ५८
 वहिः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः।
 अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम् ॥ ५९
 अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः।
 यत्किञ्चित् पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किञ्चन ॥ ६०
 यल्लोके चानुभवसि तत्सर्वं मामनुस्मर।
 विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्य माम् ॥ ६१
 युगे युगे च स्त्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्।
 तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ ६२
 शुश्रूषुर्मम धर्माश्च कुक्षौ चरं सुखं मम।
 मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह ॥ ६३
 व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छासुरद्विषम्।
 अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ॥ ६४
 परस्त्रिवर्गादोंकारस्त्रिवर्गार्थनिर्दर्शनः ।
 एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ॥ ६५
 वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम्।
 ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः।
 स तस्मिन् सुखमेकान्ते शुश्रूषुर्हसमव्ययम् ॥ ६६
 योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो
 महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे।
 शनैश्चरन् प्रभुरपि हंससंज्ञितो-
 उसुजजगद्विरहितकालपर्यये ॥ ६७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्घवप्रादुर्भावे समष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्घवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ सङ्काशवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६७ ॥

मैं ही सांख्य, मैं ही योग और मैं ही वह परमपद हूँ।
 मैं ही यज्ञकी क्रिया और मैं ही विद्याका अधिपति
 कहलाता हूँ। मैं ही अग्नि, मैं ही वायु, मैं ही पृथ्वी,
 मैं ही आकाश, मैं ही जल, समुद्र, नक्षत्र और दसों दिशाएँ
 हूँ। मैं ही वर्ष, मैं ही चन्द्रमा, मैं ही बादल तथा मैं ही
 रवि हूँ। क्षीरसागरमें शयन करनेवाला मैं ही हूँ। मैं ही
 समुद्रमें बडवाग्नि हूँ ॥ ५०—५८ ॥

मैं ही संवर्तक अग्नि बनकर जलरूप हविका पान
 करता हूँ। जैसे मैं पुराण-पुरुष हूँ, उसी प्रकार मैं सबके
 लिये आश्रयदाता भी हूँ। भूत, भविष्य और वर्तमानका
 उत्पत्तिस्थान मैं हूँ। विप्रवर! तुम जो कुछ देख रहे हो,
 जो कुछ सुन रहे हो और लोकमें जिसका अनुभव कर
 रहे हो, उस सबमें मेरा ही स्मरण करो। मार्कण्डेय!
 पूर्वकालमें मैंने ही विश्वकी सृष्टि की थी और इस समय
 भी सृष्टिकर्ता मुझे ही समझो। मार्कण्डेय! प्रत्येक युगमें
 मैं ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करता हूँ, अतः तुम इन
 सबका रहस्य इस प्रकार जानो। यदि तुम मेरे धर्मोंको
 सुनना चाहते हो तो मेरी कुक्षिमें प्रवेश करके सुखपूर्वक
 विचरण करो। देवताओं और ऋषियोंके साथ ब्रह्मा मेरे
 शरीरमें ही विद्यमान हैं। मुझे ही व्यक्त (प्रकट) और
 अव्यक्त (अप्रकट) योगवाला तथा असुरोंका शत्रु समझो।
 मैं ही एक अक्षर तथा तीन अक्षरोंवाला तारक मन्त्र हूँ।
 त्रिवर्गसे परे तथा त्रिवर्गके अभिप्रायको निर्दिष्ट करनेवाला
 ओंकार मैं ही हूँ। आदि पुराणेश महाबुद्धिमान् भगवान्
 इस प्रकार कह ही रहे थे कि उन्होंने शीघ्र ही महामुनि
 मार्कण्डेयको अपने मुखमें समेट लिया। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ
 मार्कण्डेय भगवान्की कुक्षिमें प्रविष्ट हो गये और उस
 एकान्त स्थानमें अविनाशी हंसधर्मको सुननेकी इच्छासे
 सुखपूर्वक विचरण करने लगे। (इतनेमें ही ऐसी ध्वनि
 सुनायी पड़ी—) मैं ही वह हूँ, जो चन्द्रमा और सूर्यसे
 रहित महार्णवके जलमें विविध शरीर धारण कर समर्थ
 होते हुए भी शनैः-शनैः: विचरण करता हूँ और हंस
 नामसे पुकारा जाता हूँ तथा काल-परिवर्तनके समाप्त
 होनेपर पुनः जगत्की सृष्टि करता हूँ ॥ ५९—६७ ॥

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

पञ्चमहाभूतोंका प्राकट्य तथा नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति

मत्स्य उवाच

आपवः स विभुर्भूत्वा चारयामास वै तपः ।
छादयित्वाऽऽत्मनो देहं यादसां कुलसम्भवम् ॥ १
ततो महात्मातिबलो मतिं लोकस्य सर्जने ।
महतां पञ्चभूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत् ॥ २
तस्य चिन्तयमानस्य निर्वाते संस्थितेऽर्णवे ।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गद्धरे ॥ ३
ईषत् संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलाश्रयः ।
अनन्तरोर्मिभिः सूक्ष्ममथ छिद्रमभूत् पुरा ॥ ४
शब्दं प्रति तदोद्भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः ।
स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः ॥ ५
विवर्धता बलवता वेगाद् विक्षोभितोऽर्णवः ।
तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मन्थिते ।
कृष्णवर्त्मा समभवत् प्रभुर्वैश्वानरो महान् ॥ ६
ततः स शोषयामास पावकः सलिलं बहु ।
क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवद्विसृतं नभः ॥ ७
आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः ।
आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः ॥ ८
आभ्यां सङ्घर्षणोद्भूतं पावकं वायुसम्भवम् ।
दृष्ट्वा प्रीतो महादेवो महाभूतविभावनः ॥ ९
दृष्ट्वा भूतानि भगवाल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम् ।
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो व्यचिन्तयत् ॥ १०

चतुर्युगाभिसंख्याते सहस्रयुगपर्यये ।
बहुजन्मविशुद्धात्मा ब्रह्मणेह निरुच्यते ॥ ११
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।
ज्ञानं दृष्टं तु विश्वार्थं योगिनां याति मुख्यताम् ॥ १२

मत्स्यभगवान् कहा—राजन! तदनन्तर वे सर्वव्यापी नारायण जल-जन्तुओंके कुलमें उत्पन्न अपने शरीरको छिपाकर जलमें निवास करते हुए तपस्यामें संलग्न हो गये। कुछ समयके पश्चात् उन महाबली महात्माने जगत्की सृष्टि करनेका विचार किया। तब उन विश्वात्माने पञ्चमहाभूतोंकी समष्टिरूप विश्वका चिन्तन किया। उनके चिन्तन करते समय महासागर वायुरहित होनेके कारण शान्त था। आकाशका विनाश हो गया था, सर्वत्र जल-ही-जल व्यास था, उसके गहरमें सूक्ष्म जगत् विद्यमान था, उस समय जलके मध्यमें स्थित नारायणने उस एकार्णवको थोड़ा संक्षुब्ध कर दिया। तदनन्तर उससे उठी हुई लहरोंसे सर्वप्रथम सूक्ष्म छिद्र प्रकट हुआ। छिद्रसे शब्द-गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। उस छिद्राकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वह दुर्धर्ष पवन अवसर पाकर वृद्धिको प्राप्त हुआ। तब वेगपूर्वक बढ़ते हुए उस बलवान् पवनने महासागरको विक्षुब्ध कर दिया। उस क्षुब्ध हुए महासागरके जलके मथित होनेपर महान् प्रभावशाली कृष्णवर्त्मा वैश्वानर (अग्नि) प्रकट हुए। तब उस अग्निने अधिकांश जलको सोख लिया। समुद्र-जलके संकुचित हो जानेसे वह छिद्र विस्तृत आकाशके रूपमें परिणत हो गया। इस प्रकार अपने तेजसे उत्पन्न हुए एवं अमृत-रसके समान स्वादिष्ट पुण्यमय जल, छिद्रसे उत्पन्न हुए आकाश, आकाशसे प्रकट हुए पवन तथा आकाश और पवनके संघर्षसे उद्भूत हुए वायुजनित अग्निको देखकर महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाले वे महान् देव प्रसन्न हो गये। तब विविध रूप धारण करनेवाले भगवान् उन महाभूतोंको उपस्थित देखकर लोककी सृष्टिके लिये ब्रह्माके जन्मसहित अन्यान्य उत्तम साधनोंके विषयमें विशेषरूपसे विचार करने लगे ॥ १—१० ॥

इस प्रकार चारों युगोंकी संख्यासे युक्त एक हजार युग बीत जानेपर बारम्बार जन्म लेनेपर भी जिसका आत्मा विशुद्ध होता है, उसे ब्रह्म कहा जाता है। योगवेत्ता भगवान् भूतलपर जिसे तपस्यासे पवित्र आत्मावाले महर्षियोंके ज्ञान और योगियोंकी मुख्यतासे युक्त देखते

तं योगवन्तं विज्ञाय सम्पूर्णश्चर्यमुत्तमम्।
पदे ब्रह्मणि विश्वेशं न्ययोजयत योगवित्॥ १३
ततस्तस्मिन् महातोये महीशो हरिरच्युतः।
स्वयं क्रीडंश्च विधिवन्मोदते सर्वलोककृत्॥ १४
पद्मं नाभ्युद्धवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा।
सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम्॥ १५
हुताशनञ्चलितशिखोञ्चलत्प्रभ-

मुपस्थितं शरदमलार्कतेजसम्।
विराजते कमलमुदारवर्चसं
ममात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम्॥ १६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्धवप्रादुर्भावे पद्मोद्धवो नामाष्टष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६८ ॥
इस प्रकार श्रीमात्स्यमहापुराणके पद्मोद्धवप्रादुर्भाव-प्रसंगमें पद्मोद्धव नामक एक सौ अङ्गठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६८ ॥

हैं, उसे योगसम्पन्न सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्योंसे युक्त और विश्वके शासनकी क्षमतासे पूर्ण जानकर ब्रह्माके पदपर नियुक्त कर देते हैं। तत्पश्चात् जो सम्पूर्ण लोकोंके रचयिता, पृथ्वीके स्वामी और अपनी महिमासे कभी भी च्युत होनेवाले नहीं हैं, वे श्रीहरि उस महार्णवके जलमें स्वयं विधिपूर्वक क्रीडा करते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। उस समय वे अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न करते हैं। उस स्वर्णमय कमलमें एक हजार पत्ते होते हैं। वह परागरहित और सूर्यके समान कान्तिमान् होता है। उस समय अग्निकी जलती हुई शिखाओंकी उञ्जल कान्तिके समान देवीप्यमान, शरत्कालीन निर्मल सूर्यके सदृश तेजस्वी, भगवान्की रोमावलि-सरीखे परम दर्शनीय तथा उत्तम कान्तिमान् उस प्रकट हुए कमलकी विशेष शोभा होती है॥ ११—१६ ॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव तथा उस कमलका साङ्गोपाङ्ग वर्णन

मत्स्य उवाच

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद् भूरितेजसम्।
स्त्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम्॥ १
यस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते।
सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणौर्वतम्॥ २
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम्।
नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः॥ ३
या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते।
ये पद्मासारगुरवस्तान् दिव्यान् पर्वतान् विदुः॥ ४
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च।
कैलासं मुञ्जवन्तं च तथान्यं गन्धमादनम्॥ ५
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च।
उदयं पिञ्जरं चैव विन्ध्यवन्तं च पर्वतम्॥ ६
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम्।
आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः॥ ७

मत्स्यभगवान् कहा—राजर्षे ! तदनन्तर नारायणने अनेकों योजन विस्तारवाले उस स्वर्णमय कमलमें सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करनेवाले ब्रह्माको उत्पन्न किया। वे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परम तेजस्वी, सब ओर मुखवाले, सभी तेजोमय गुणोंसे युक्त और राजलक्षणोंसे सुशोभित थे। पुराणोंके ज्ञाता महर्षिगण उस कमलको नारायणसे उत्पन्न हुआ उत्तम पृथ्वीरूप बतलाते हैं। जो पद्मा है, वही रसा नामसे विख्यात पृथ्वीदेवी कही जाती है और जो कमलके सार-तत्त्वसे युक्त होनेके कारण भारी अंश हैं, उन्हें दिव्य पर्वत कहा जाता है। इस प्रकार जो हिमवान्, मेरु, नील, निषध, कैलास, मुञ्जवान् तथा दूसरा गन्धमादन, पुण्यमय त्रिशिखर, रमणीय मन्दर, उदयाचल, पिञ्जर तथा विन्ध्यवान् पर्वत हैं—ये सभी देवगणों, सिद्धों और पुण्यशील महात्माओंके निवासस्थान तथा समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं।

एतेषामन्तरे देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र वै क्रियाः ॥ ८

एभ्यो यत् स्ववते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् ।
दिव्यास्तीर्थशताधाराः सुरम्याः सरितः स्मृताः ॥ ९

स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणि समंततः ।
असंख्येयाः पृथिव्यास्ते विश्वे वै धातुपर्वताः ॥ १०

यानि पद्मस्य पर्णानि भूरीणि तु नराधिप ।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥ ११

यान्यधोभागपर्णानि ते निवासास्तु भागशः ।
दैत्यानामुगगाणां च पतञ्जानां च पार्थिव ॥ १२

तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम् ।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥ १३

पद्मस्यान्तरतो यत्तदेकार्णवगता मही ।
प्रोक्ताथ दिक्षु सर्वासु चत्वारः सलिलाकराः ॥ १४

एवं नारायणस्यार्थं मही पुष्करसम्भवा ।
प्रादुर्भावोऽव्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः ॥ १५

एतस्मात् कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्थिभिः ।
याज्ञिकैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे पद्मविधिः स्मृतः ॥ १६

एवं भगवता तेन विश्वेषां धारणाविधिः ।
पर्वतानां नदीनां च हृदानां चैव निर्मितः ॥ १७

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः
प्रभाकराभो वरुणासितद्युतिः ।

शनैः स्वयम्भूः शयनं सृजत्तदा
जगन्मयं पद्मविधिं महार्णवे ॥ १८

इन सभी पर्वतोंके मध्यवर्ती देशको जम्बूद्वीप कहा जाता है । जम्बूद्वीपकी पहचान यह है कि वहाँ सभी यज्ञसम्बन्धिनी क्रियाएँ होती हैं । इन पर्वतोंसे जो दिव्य अमृत-रसके समान सुस्वादु जल प्रवाहित होता है, वह सैकड़ों धाराओंमें विभक्त होकर दिव्य तीर्थ बन जाता है और वे धाराएँ सुरम्य नदियाँ कहलाती हैं ॥ १—९ ॥

राजन्! उस कमलके चारों ओर जो केसर कहे जाते हैं, वे विश्वमें पृथ्वीके असंख्य धातुपर्वत हैं । उस कमलमें जो बहुसंख्यक पत्ते हैं, वे म्लेच्छोंके देश कहे जाते हैं, जो पर्वतोंसे व्यास होनेके कारण दुर्गम हैं । भूपाल! उस कमलमें जो निचले भागमें पत्ते हैं, वे विभागपूर्वक दैत्यों, नागों और कीट-पतङ्गोंके निवासस्थान हैं । इन सबका जहाँ महासागर है, उसे 'रसा' नामसे पुकारा जाता है । वहीं महान् पाप करनेवाले मानव ढूबते-उतराते रहते हैं । उस कमलके अन्तर्गत जो ठोस भाग दीखता है, वही एकार्णवमें ढूबी हुई पृथ्वी कही गयी है । उसकी सभी दिशाओंमें जलसे भरे हुए चार महासागर हैं । इस प्रकार नारायणकी कार्य-सिद्धिके लिये पृथ्वी कमलसे उद्भूत हुई है । इसी कारण यह प्रादुर्भाव भी पुष्कर नामसे कहा जाता है । इसी कारण उस वृत्तान्तको जाननेवाले प्राचीन याज्ञिक महर्षियोंने वेदके दृष्टान्तोंद्वारा यज्ञमें कमलकी रचनाका विधान बतलाया है । इस प्रकार उन भगवान्ने सम्पूर्ण पर्वतों, नदियों और जलाशयोंकी धारणाकी विधिका निर्माण किया है । तदुपरान्त जो अनुपम प्रभावशाली, सूर्य-सरीखे द्युतिमान् और वरुणकी-सी कृष्ण कान्तिवाले हैं, वे सर्वव्यापी स्वयम्भू भगवान् उस महार्णवमें जगन्मय कमलका विधान करके पुनः पूर्ववत् शयन करने लगे ॥ १०—१८ ॥

इति श्रीमात्त्ये महापुराणे पद्मोद्घवप्रादुर्भावे एकोनसप्तयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके पद्मोद्घवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ उनहतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६९ ॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

मधु-कैटभकी उत्पत्ति, उनका ब्रह्माके साथ वार्तालाप और भगवान्द्वारा वथ

मत्स्य उवाच

विघ्नस्तपसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः ।
तेनैव च सहोद्रूतो रजसा कैटभस्ततः ॥ १
तौ रजस्तमसौ विघ्नसम्भूतौ तामसौ गणौ ।
एकार्णवे जगत् सर्वं क्षोभयन्तौ महाबलौ ॥ २
दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्ताग्रदंष्ट्रिणौ ।
किरीटकुण्डलोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ ॥ ३
महाविवृतताप्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ।
महागिरेः संहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ॥ ४
नवमेघप्रतीकाशावादित्यसदृशाननौ ।
विद्युदाभौ गदाग्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ ॥ ५
तौ पादयोस्तु विन्यासादुक्षिपन्ताविवार्णवम् ।
कम्पयन्ताविव हरिं शयानं मधुसूदनम् ॥ ६
तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम् ।
योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा ॥ ७
नारायणसमाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ।
दैवतानि च विश्वानि मानसानसुरानृषीन् ॥ ८
ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्मणमसुरोत्तमौ ।
दीप्तौ मुमूर्षू संकुद्धौ रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥ ९
कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः ।
आधाय नियमं मोहादास्से त्वं विगतज्वरः ॥ १०
एह्यागच्छावयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्धव ।
आवाभ्यां परमीशाभ्यामशक्तस्त्वमिहार्णवे ॥ ११
तत्र कश्चौद्धवस्तुभ्यं केन वासि नियोजितः ।
कः स्त्रष्टा कश्च ते गोपा केन नाम्ना विधीयसे ॥ १२

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! भगवान्के योगनिद्राके वशीभूत हो शयन करते समय मधु नामका महान् असुर उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्माजीकी तपस्यामें विघ्नस्वरूप था। तत्पश्चात् उसीके साथ रजोगुणसे युक्त कैटभ भी उत्पन्न हुआ। रजोगुण और तमोगुणसे युक्त एवं विघ्नस्वरूप उत्पन्न हुए वे दोनों महाबली तामसी असुर एकार्णवके जलमें सम्पूर्ण जगत्को क्षुब्ध कर रहे थे। वे लाल रंगका दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे, उनकी श्वेत वर्णकी दाढ़ोंके अग्रभाग चमक रहे थे, वे उद्धीस किरीट और कुण्डल तथा उज्ज्वल केयूर और कंकणसे विभूषित थे, उनके लाल रंगके विशाल नेत्र खुले हुए थे, उनकी छाती मोटी और भुजाएँ लम्बी थीं, उनका शरीर विशाल पर्वतके समान था, वे चलते हुए पर्वत-जैसा जान पड़ते थे, उनकी शरीर-कान्ति नूतन मेघ-जैसी थी, उनका मुख सूर्यके समान प्रकाशमान था, वे बिजलीकी तरह चमक रहे थे और हाथमें गदा धारण करनेके कारण अत्यन्त भयानक दीख रहे थे, चलते समय वे पैरोंके इस प्रकार रख रहे थे मानो समुद्रको उछाल रहे हों और शयन करते हुए भगवान् मधुसूदनको कम्पित-सा कर रहे थे। इस प्रकार वहाँ विचरण करते हुए उन दोनोंने कमलपर उद्धासित होते हुए चारों ओर मुखवाले योगियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके निकट पहुँचकर उन्हें नारायणकी आज्ञासे मानसिक संकल्पद्वारा समस्त प्रजाओं, सम्पूर्ण देवताओं, असुरों और ऋषियोंकी सृष्टि करते हुए देखा। वे दोनों असुरश्रेष्ठ अपनी कान्तिसे उद्दीप, क्रोधसे परिपूर्ण और आसन्नमृत्यु थे, उनके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने ब्रह्मासे पूछा—‘श्वेत रंगकी पगड़ी बाँधे, चार भुजाधारी एवं कमलके मध्यमें स्थित तुम कौन हो? तुम मोहवश नियम धारणकर यहाँ शान्तचित्त होकर क्यों बैठे हो? कमलजन्मा! तुम यहाँ आओ और हम दोनोंके साथ युद्ध करो। हम दोनों सामर्थ्यशालियोंके अतिरिक्त तुम इस महासागरमें स्थित नहीं रह सकते। तुम्हें उत्पन्न करनेवाला कौन है? तुम किसके द्वारा इस काममें नियुक्त किये गये हो? तुम्हारी सृष्टि करनेवाला कौन है? तुम्हारा रक्षक कौन है? तुम किस नामसे पुकारे जाते हो?’॥ १—१२॥

ब्रह्मोवाच

एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक् ।
तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम् ॥ १३

मधुकेंटभावूचतुः

नावयोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामते ।
आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसाथ वै ॥ १४
रजस्तमोमयावावामृषीणामवलङ्घितौ ।
छाद्यमानौ धर्मशीलौ दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥ १५
आवाभ्यामुह्यते लोको दुष्कराभ्यां युगे युगे ।
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञः स्वर्गपरिग्रहः ॥ १६
सुखं यत्र मुदा युक्तं यत्र श्रीः कीर्तिरिव च ।
येषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय ॥ १७

ब्रह्मोवाच

यत्नाद्योगवतो दृष्ट्या योगः पूर्वं मयार्जितः ।
तं समाधाय गुणवत्सत्त्वं चास्मि समाश्रितः ॥ १८
यः परो योगमतिमान् योगाख्यः सत्त्वमेव च ।
रजसस्तमसश्वेव यः स्वष्टा विश्वसम्भवः ॥ १९
ततो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च ।
स एव हि युवां नाशे वशी देवो हनिष्यति ॥ २०
स्वपत्रेव ततः श्रीमान् ब्रह्मोजनविस्तृतम् ।
बाहुं नारायणो ब्रह्म कृतवानात्ममायया ॥ २१
कृष्णमाणौ ततस्तस्य बाहुना बाहुशालिनः ।
चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ ॥ २२
ततस्तावाहतुर्गत्वा तदा देवं सनातनम् ।
पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य स्थितावुभौ ॥ २३
जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम् ।
त्वमावां पाहि हेत्वर्थमिदं नौ बुद्धिकारणम् ॥ २४
अमोघदर्शनः स त्वं यतस्त्वां विद्वःशाश्वतम् ।
ततस्त्वामागतावावामभितः प्रसमीक्षितुम् ॥ २५

ब्रह्माने कहा—जो ध्यानसे परे एवं हजारों नेत्रोंवाला है, उस परम पुरुषको तो लोग अद्वितीय बतलाते हैं, (परंतु तुम दोनों कौन हो?) अतः मैं तुम दोनोंके नाम और कर्मको जानना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

मधु-कैटभ बोले—महामते! जगत्‌में हम दोनोंसे उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है। हमीं दोनोंने तमोगुण और रजोगुणद्वारा विश्वको आच्छादित कर रखा है। रजोगुण और तमोगुणसे व्याप होनेके कारण हम दोनों ऋषियोंके लिये अलझूनीय हैं। धर्म और शील-स्वभावका आच्छादन करनेवाले हम दोनों समस्त देहधारियोंके लिये अजेय हैं। प्रत्येक युगमें दुष्कर कर्म करनेवाले हमीं दोनों लोकका बहन करते हैं। अर्थ, काम, यज्ञ, स्वर्गसंकलन—यह सब हम दोनोंके लिये ही हैं। जहाँ जो कुछ प्रसन्नतायुक्त सुख, लक्ष्मी और कीर्ति है तथा प्राणियोंके जो मनोरथ हैं, उनके रूपमें हमीं दोनोंको जानना चाहिये ॥ १४—१७ ॥

ब्रह्माने कहा—पूर्वकालमें मैंने यत्नपूर्वक योगदृष्टिद्वारा योगका उपार्जन किया था, उसी गुणशाली योगको धारण करके मैं सत्त्वगुणसे युक्त हो सका हूँ। जो परात्पर, योगकी बुद्धिसे युक्त, 'योग' नामवाले, सत्त्वगुणस्वरूप, रजोगुण और तमोगुणके रचयिता तथा विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनसे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, वे ही देव तुम दोनोंका विनाश करनेमें समर्थ हैं, अतः वे ही तुम दोनोंका वध करेंगे ॥ १८—२० ॥

ठीक उसी अवसरपर परब्रह्म श्रीमान् नारायणने शयन करते हुए ही अपनी मायासे अपने बाहुको अनेकों योजनके विस्तारवाला बना लिया। तब दीर्घ बाहुवाले भगवान्की उस भुजासे खींचे जाते हुए वे दोनों दैत्य स्थानसे भ्रष्ट होकर दो मोटे पक्षियोंकी भाँति धूमने लगे। इस प्रकार खिंचते हुए वे दोनों असुर अविनाशी पद्मनाभ हृषीकेशके निकट जा पहुँचे और उन्हें नमस्कार कर सामने खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—'देव! हम दोनों आपको विश्वका उत्पादक, अद्वितीय और पुरुषोत्तम जानते हैं। आप हम दोनोंकी रक्षा करें। हमलोगोंकी ऐसी बुद्धिका कारण किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये है। आपका दर्शन अमोघ होता है। इसीलिये हम दोनों आपको अविनाशी मानते हैं। देव! इसी कारण हम दोनों

तदिच्छावो वरं देव त्वत्तोऽद्भुतमरिन्द्रम् ।
अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिज्जय ॥ २६

श्रीभगवानुवाच

किमर्थं हि द्वृतं ब्रूतं वरं ह्यसुरसत्तमौ ।
दत्तायुष्कौ पुनर्भूयो रहो जीवितुमिच्छथः ॥ २७

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन्न कश्चिन्मृतवान् देव तस्मिन् प्रभो वधम् ।
तमिच्छावो वधश्चैव त्वत्तो नोऽस्तु महाब्रत ॥ २८

श्रीभगवानुवाच

बाढं युवां तु प्रवरौ भविष्यत्कालसम्भवे ।
भविष्यतो न संदेहः सत्यमेतद् ब्रवीमि वाम् ॥ २९

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां

सनातनौ विश्ववरः सुरोत्तमः ।

रजस्तमोर्वर्गभवायनौ यमौ

ममन्थ तावूरुतलेन वै प्रभुः ॥ ३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्धवप्रादुर्भावे समत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके पद्मोद्धवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७० ॥

आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। शत्रुसूदन! हम दोनों आपसे अद्भुत वर प्राप्त करना चाहते हैं। युद्धविजयी देव! आप अमोघदर्शन हैं, अर्थात् आपका दर्शन निष्फल नहीं होता। आपको नमस्कार है' ॥ २१—२६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—श्रेष्ठ असुरो! तुमलोगोंकी क्या अभिलाषा है? शीघ्र वर माँगो। तुमलोगोंने अपनी आयु तो दे दी है, अब तुमलोग पुनः एकान्तमें कैसे जीवित रहना चाहते हो? ॥ २७ ॥

मधु-कैटभ-बोले—सामर्थ्यशाली देव! जिस स्थानपर कोई भी न मरा हो, वहाँ हम अपनी मृत्यु चाहते हैं। साथ ही महाब्रत! हमारी वह मृत्यु आपके हाथों होनी चाहिये ॥ २८ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—ठीक है, भविष्यकालमें तुम दोनों असुरोंमें श्रेष्ठ होकर उत्पन्न होओगे, इसमें संदेह नहीं है। यह मैं तुम दोनोंसे सत्य कह रहा हूँ। इस प्रकार विश्वमें श्रेष्ठ सनातन सुरवर भगवान् ने उन दोनों महान् असुरोंको वर प्रदान करनेके पश्चात् रजोगुण और तमोगुणके उत्पत्तिस्थानस्वरूप उन दोनों असुरोंको अपनी जांघपर सुलाकर उनका कच्चमर निकाल लिया ॥ २९-३० ॥

एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति, दक्षकी बारह कन्याओंका वृत्तान्त,
ब्रह्माद्वारा सृष्टिका विकास तथा विविध देवयोनियोंकी उत्पत्ति

मत्स्य उवाच

स्थित्वा च तस्मिन् कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः ॥ १

प्रज्वलत्रिव तेजोभिर्भास्त्रिभिः स्वाभिस्तमोनुदः ।
बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुभिः ॥ २

अथान्यद् रूपमास्थाय शाभ्युर्नारायणोऽव्ययः ।
आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशः ॥ ३

सांख्याचार्यो हि मतिमान् कपिलो ब्राह्मणो वरः ।
उभावपि महात्मानौ स्तुवन्तौ क्षेत्रतत्परौ ॥ ४

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन्! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महान् तेजस्वी ब्रह्मा उस कमलपर स्थित होकर हाथोंको ऊपर उठाये हुए घोर तपस्यामें संलग्न हो गये। उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके निवासस्थान ब्रह्मा अपने तेज और अपनी कान्तिसे प्रज्वलित होते हुए—से अन्धकारका विनाश कर रहे थे और अपनी किरणोंसे प्रकाशित सूर्यकी तरह उद्धासित हो रहे थे। तदनन्तर जो जगत्का कल्याण करनेवाले अविनाशी महान् यशस्वी एवं योगके आचार्य हैं, वे महान् तेजस्वी नारायण दूसरा रूप धारण कर वहाँ आये। साथ ही ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ सांख्याचार्य बुद्धिमान्

तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्मणमितौजसम् ।
परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥ ५
ब्रह्मात्मदृढवन्धश्च विशालो जगदास्थितः ।
ग्रामणीः सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः ॥ ६
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माभ्याहतयोगवित् ।
त्रीनिमान् कृतवाँल्लोकान् यथेयं ब्रह्मणः श्रुतिः ॥ ७
पुत्रं च शम्भवे चैकं समुत्पादितवान् ऋषिः ।
तस्याग्रे वाग्यतस्तस्थौ ब्रह्मणमजमव्ययम् ॥ ८
सोत्पन्नमात्रो ब्रह्मणमुक्तवान् मानसः सुतः ।
किं कुर्मस्तव साहाय्यं ब्रवीतु भगवान् ऋषिः ॥ ९

ब्रह्मोवाच

य एष कपिलो ब्रह्म नारायणमयस्तथा ।
वदते भवतस्तत्त्वं तत्कुरुष्व महामते ॥ १०
ब्रह्मणस्तु तदर्थं तु तदा भूयः समुत्थितः ।
शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं करोमि कृताञ्जलिः ॥ ११

श्रीभगवानुवाच

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म हृष्टादशविधं तु तत् ।
यत्पत्यं यदृतं तत्तु परं पदमनुस्मर ॥ १२
एतद्वचो निशम्यैव ययौ स दिशमुत्तराम् ।
गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ञानतेजसा ॥ १३
ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत् प्रभुः ।
संकल्पयित्वा मनसा तमेव च महामना: ॥ १४
ततः सोऽथाब्रवीद् वाक्यं किं करोमि पितामह ।
पितामहसमाज्ञातो ब्रह्मणं समुपस्थितः ॥ १५
ब्रह्माभ्यासं तु कृतवान् भुवश्च पृथिवीं गतः ।
प्राप्तं च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥ १६
तस्मिन्नपि गते पुत्रे तृतीयमसृजत् प्रभुः ।
सांख्यप्रवृत्तिकुशलं भूर्भुवं नामतो विभूम् ॥ १७
गोपतित्वं समासाद्य तयोरेवागमद् गतिम् ।
एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येत उक्ताः शम्भोर्महात्मनः ॥ १८

कपिलजी भी उपस्थित हुए। वे दोनों महात्मा परावरके विशेषज्ञ, महर्षियोंद्वारा पूजित और अपने-अपने मार्गमें तत्पर रहनेवाले थे। वे वहाँ पहुँचकर अमित तेजस्वी ब्रह्माकी प्रशंसा करते हुए बोले—‘सर्वश्रेष्ठ’, जगत्के रचयिता, त्रिलोकीद्वारा पूजित, सभी प्राणियोंके नायक ब्रह्मा अपने सुदृढ़ आसनपर विराजमान हैं।’ उन दोनोंकी वह बात सुनकर पूर्वकथित योगके ज्ञाता ब्रह्माने इन तीन लोकोंकी रचना की, ब्रह्माके विषयमें यह श्रुति प्रसिद्ध है। उस समय ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्माने जगत्के कल्याणके लिये एक पुत्र उत्पन्न किया। ब्रह्माका वह मानस पुत्र उत्पन्न होते ही उनके समक्ष चुपचाप खड़ा हो गया और फिर उन अजन्मा अविनाशी ब्रह्मासे इस प्रकार बोला—‘आप ऐश्वर्यशाली ऋषि बतलावें कि मैं आपकी कौन-सी सहायता करूँ?’ ॥ १—९ ॥

ब्रह्माने कहा—महामते! ये जो महर्षि कपिल और नारायणस्वरूप ब्रह्म सामने उपस्थित हैं, ये दोनों तुमसे जिस तत्त्वका वर्णन करें, तुम वैसा ही करो। ब्रह्माके उस अभिप्रायको जानकर वह पुनः उठ खड़ा हुआ और उनके समक्ष जाकर हाथ जोड़कर बोला—‘मैं आपलोगोंका आदेश सुनना चाहता हूँ, कहिये क्या करूँ?’ ॥ १०-११ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्म! जो सत्य और अविनाशी ब्रह्म है, वह अठारह प्रकारका है। जो सत्य है, जो ऋत है, वही परम पद है। तुम उसका अनुस्मरण करो। ऐसी बात सुनते ही वह उत्तर दिशाकी ओर चला गया और वहाँ जाकर उसने अपने ज्ञानके तेजसे ब्रह्मत्वको प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् महामना एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्माने मानसिक संकल्पद्वारा ‘भुव’ नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि की। तब उसने भी ब्रह्माके समक्ष खड़ा होकर इस प्रकार कहा—‘पितामह! मैं कौन-सा कार्य करूँ?’ फिर ब्रह्माकी आज्ञासे वह ब्रह्मके निकट गया। तदुपरान्त ‘भुव’ ने भूतलपर आकर ब्रह्मका अभ्यास किया और ब्रह्म एवं महर्षि कपिलके पास आकर परम पदको प्राप्त कर लिया। उस पुत्रके भी चले जानेपर भगवान् ब्रह्माने ‘भूर्भुव’ नामक तीसरे पुत्रको प्रकट किया, जो सर्वव्यापी और सांख्यशास्त्रमें परम प्रवीण था। यह भी इन्द्रियजयी होकर उन दोनों भाइयोंकी गतिको प्राप्त हो गया। इस प्रकार कल्याणकारी महात्मा ब्रह्माके ये तीनों पुत्र कहे गये हैं।

तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रयातः स्वार्जितं गतिम्।
नारायणश्च भगवान् कपिलश्च यतीश्वरः ॥ १९

यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तं कालमेव हि।
ततो घोरतमं भूयः संश्रितः परमं ब्रतम् ॥ २०
न रेमेऽथ ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्।
शरीरात्तां ततो भार्या समुत्पादितवाऽशुभाम् ॥ २१
तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च।
सदृशीमात्मनो देवीं समर्था लोकसर्जने ॥ २२
तथा समाहितस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपश्चरन्।
ततो जगाद त्रिपदां गायत्रीं वेदपूजिताम् ॥ २३
सृजन् प्रजानां पतयः सागरांश्चासृजद् विभुः।
अपरांश्चैव चतुरो वेदान् गायत्रिसम्भवान् ॥ २४
आत्मनः सदृशान् पुत्रानसृजद् वै पितामहः।
विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः ॥ २५
विश्वेशं प्रथमं तावन्महातापसमात्मजम्।
सर्वमन्त्रहितं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥ २६
दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥ २७
अथैवादभुतमित्येते ज्ञेयाः पैतामहर्षयः।
त्रयोदशगुणं धर्ममालभन्त महर्षयः ॥ २८
अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिका मुनिः।
ताम्रा क्रोधाथ सुरसा विनता कद्वुरेव च ॥ २९
दक्षस्यापत्यमेता वै कन्या द्वादशा पार्थिव।
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किल ॥ ३०
तस्मै कन्या द्वादशान्या दक्षस्ताः प्रददौ तदा।
नक्षत्राणि च सोमाय तदा वै दत्तवान् ऋषिः ॥ ३१
रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि रविनन्दन।
लक्ष्मीर्मरुत्वती साध्या विश्वेशा च मता शुभा ॥ ३२
देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा।
एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव ॥ ३३

तदनन्तर भगवान् नारायण और यतीश्वर कपिल ब्रह्माके उन तीनों पुत्रोंको साथ लेकर अपने तपद्वारा उपार्जित गतिको प्राप्त हो गये ॥ १२—१९ ॥

इधर जिस समय वे दोनों मुक्त पुरुष चले गये, उसी समयसे ब्रह्मा पुनः अत्यन्त कठोर परम ब्रतके पालनमें संलग्न हो गये। जब सामर्थ्यशाली ब्रह्माको अकेले तपस्या करते हुए आनन्दका अनुभव नहीं हुआ, तब उन्होंने अपने शरीरसे एक ऐसी सुन्दरी भार्याको उत्पन्न किया, जो तपस्या, तेज, ओजस्विता और नियमपालनमें उन्होंके समान थी। वह देवी लोककी सृष्टि करनेमें भी समर्थ थी। उससे युक्त होकर वहाँ तपस्या करते हुए ब्रह्माको संतोषका अनुभव हुआ, तब उन्होंने वेदपूजित त्रिपदा गायत्रीका उच्चारण किया। तत्पश्चात् सर्वव्यापी ब्रह्माने प्रजापतियोंकी सृष्टि करते हुए सागरोंकी तथा गायत्रीसे उत्पन्न होनेवाले अन्य चारों वेदोंकी रचना की। फिर ब्रह्माने अपने ही सदृश पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो विश्वमें प्रजापतिके नामसे विख्यात हुए और जिनसे सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुईं। सर्वप्रथम उन्होंने अपने धर्म नामक पुत्रको प्रकट किया, जो विश्वके ईश्वर, महान् तपस्वी, सम्पूर्ण मन्त्रोद्धारा अभिरक्षित और परम पावन थे। तदुपरान्त उन्होंने दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अङ्गिरा और मनुको उत्पन्न किया।* ब्रह्माके पुत्रभूत इन महर्षियोंको अत्यन्त अद्भुत जानना चाहिये। इन्हीं महर्षियोंने तेरह प्रकारके गुणोंसे युक्त धर्मका प्रतिपादन एवं अनुसरण किया ॥ २०—२८ ॥

राजन्! अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, ताम्रा, क्रोधा, सुरसा, विनता और कद्वौ—ये बारह कन्याएँ दक्ष प्रजापतिकी संतान हैं। कश्यप महर्षि मरीचिके पुत्र थे, जो पिताकी तपस्याके प्रभावसे उत्पन्न हुए थे। उस समय दक्षने कश्यपको अपनी उन बारह कन्याओंको पत्नीरूपमें प्रदान किया था। रविनन्दन! उसी समय ऋषिवर ब्रह्माने नक्षत्रसंज्ञक रोहिणी आदि सभी पुण्यमयी कन्याओंको चन्द्रमाके हाथोंमें सौंप दिया। लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या, शुभा, विश्वेशा और सरस्वती देवी—ये पूर्वकालमें ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई थीं। राजन्! कर्मपर दृष्टि रखनेवाले ब्रह्माने इन पाँचों सर्वश्रेष्ठ कन्याओंको मङ्गलकारक सुरश्रेष्ठ धर्मको समर्पित कर दिया।

* यह विषय प्रजापतिसर्गनिरूपण नामक पहलेके अध्यायोंमें भी वर्णित हुआ है।

दत्ता भद्राय धर्माय ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा ।
 या तु रूपवती पल्ली ब्रह्मणः कामरूपिणी ॥ ३४
 सुरभिः सा हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ।
 ततस्तामगमद् ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः ॥ ३५
 लोकसर्जनहेतुजो गवामर्थाय सत्तमः ।
 जन्मिरे च सुतास्तस्यां विपुला धूमसन्निभा ॥ ३६
 नक्षसंध्याभ्रसङ्काशा प्रादहंस्तिगमतेजसः ।
 ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गर्हयन्तः पितामहम् ॥ ३७
 रोदनाद् द्रवणाच्चैव रुद्रा इति ततः स्मृताः ।
 निर्ऋतिश्वैव शम्भुर्वै तृतीयश्चापराजितः ॥ ३८
 मृगव्याधः कपर्दी च दहनोऽथेश्वरश्च वै ।
 अहिर्बुद्ध्यश्च भगवान् कपाली चापि पिङ्गलः ॥ ३९
 सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ।
 तस्यामेव सुरभ्यां च गावो यज्ञेश्वराश्च वै ॥ ४०
 प्रकृष्टाश्च तथा मायाः सुरभ्याः पश्वोऽक्षराः ।
 अजाश्वैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम् ॥ ४१
 ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यास्ताः समुत्थिताः ।
 धर्माल्लक्ष्मीस्तथा कामं साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ ४२
 भवं च प्रभवं चैव हीशं चासुरहं तथा ।
 अरुणं चारुणिं चैव विश्वावसुबलध्वनम् ॥ ४३
 हविष्यं च वितानं च विधानशमितावपि ।
 वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम् ॥ ४४
 सुपर्वाणं बृहत्कान्तिः साध्या लोकनमस्कृता ।
 तमेवानुगता देवी जनयामास वै सुरान् ॥ ४५
 वरं वै प्रथमं दैवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् ।
 विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥ ४६
 ततोऽनुरूपमायं च यमस्तस्मादनन्तरम् ॥ ४७
 सप्तमं च तथा वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम् ॥ ४८
 धर्मस्यापत्यमेतद् वै सुदेव्यां समजायत ।
 विश्वे देवाश्च विश्वायां धर्मजाता इति श्रुतिः ॥ ४९
 दक्षश्वैव महाबाहुः पुष्करस्वन एव च ।
 चाक्षुषस्तु मनुश्वैव तथा मधुमहोरगौ ॥ ५०
 विश्रान्तकवपुर्बालो विष्कम्भश्च महायशाः ।
 गरुडश्चातिसत्त्वौजा भास्करप्रतिमद्युतिः ॥ ५०
 विश्वान् देवान् देवमाता विश्वेशाजनयत् सुतान् ।

इसी बीच ब्रह्माकी स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एवं हितकारिणी सुन्दरी पल्ली सुरभिका रूप धारण कर ब्रह्माके निकट उपस्थित हुई । तब लोक-सृष्टिके कारणोंके ज्ञाता लोकपूजित देवश्रेष्ठ ब्रह्माने गौओंकी उत्पत्तिके निमित्त उसके साथ मानसिक समागम किया । उससे धूमकी-सी कान्तिवाले विशालकाय पुत्र उत्पन्न हुए । उनका वर्ण रात्रि और संध्याके संयोगकालमें छाये हुए बादलोंके समान था । वे अपने प्रचण्ड तेजसे सबको जला रहे थे और ब्रह्माकी निन्दा करते हुए रोते-से वे इधर-उधर दौड़ रहे थे । इस प्रकार रोने और दौड़नेके कारण वे 'रुद्र' कहे जाते हैं । निर्ऋति, शम्भु, तीसरे अपराजित, मृगव्याध, कपर्दी, दहन, ईश्वर, अहिर्बुद्ध्य, भगवान् कपाली, पिंगल और महातेजस्वी सेनानी—ये ग्यारह रुद्र कहलाते हैं ॥ २९—३९ १ ॥

तदनन्तर उसी श्रेष्ठ सुरभिसे यज्ञकी साधनभूता गौएँ, प्रकृष्ट माया, अविनाशी पशुगण, बकरियाँ, हंस, उत्तम अमृत और ओषधियाँ उत्पन्न हुई । धर्मके संयोगसे लक्ष्मीने कामको और साध्याने साध्यगणोंको जन्म दिया । भव, प्रभव, ईश, असुरहन्ता, अरुण, आरुणि, विश्वावसु, बल, ध्रुव, हविष्य, वितान, विधान, शमित, वत्सर, सम्पूर्ण असुरोंके विनाशक भूति और सुपर्वा—इन देवताओंको लोकनमस्कृता परम सुन्दरी साध्यादेवीने धर्मके संयोगसे जन्म दिया । इसी प्रकार प्रथम वर, दूसरे अविनाशी ध्रुव, तीसरे विश्वावसु, चौथे ऐश्वर्यशाली सोम, पाँचवें अनुरूपमाय, तदनन्तर छठे यम, सातवें वायु और आठवें वसु निर्ऋति—ये सभी धर्मके पुत्र सुदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । धर्मके संयोगसे विश्वाके गर्भसे विश्वेदेवोंकी उत्पत्ति हुई है—ऐसा सुना जाता है । महाबाहु दक्ष, पुष्करस्वन, चाक्षुष मनु, मधु, महोरग, विश्रान्तकवपु, बाल, महायशस्वी विष्कम्भ और सूर्यकी-सी कान्तिवाले अत्यन्त पराक्रमी एवं तेजस्वी गरुड—इन विश्वेदेवोंको देवमाता विश्वेशाने पुत्ररूपमें जन्म दिया ॥ ४०—५० १ ॥

मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत् सुतान् ॥ ५१
 अग्निं चक्षुं रविज्योति: सावित्रं मित्रमेव च ।
 अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महाभुजम् ॥ ५२
 विराजं चैव वाचं च विश्वावसुमतिं तथा ।
 अश्वमित्रं चित्ररश्मिं तथा निषधनं नृप ॥ ५३
 ह्यन्तं वाडवं चैव चारित्रं मन्दपन्नगम् ।
 बृहन्तं वै बृहद्गूपं तथा वै पूतनानुगम् ॥ ५४
 मरुत्वती पुरा जज्ञे एतान् वै मरुतां गणान् ।
 अदितिः कश्यपाज्ज्ञ आदित्यान् द्वादशैव हि ॥ ५५
 इन्द्रो विष्णुर्भर्गस्त्वष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः ।
 पूषा मित्रश्च धनदो धाता पर्जन्य एव च ॥ ५६
 इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः ।
 आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञाते द्वौ सुतौ वरौ ॥ ५७
 तपःश्रेष्ठौ गुणश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यापि सम्मतौ ।
 दनुस्तु दानवाज्ज्ञे दितिदेत्यान् व्यजायत ॥ ५८
 काला तु वै कालकेयानसुरान् राक्षसांस्तु वै ।
 अनायुषायास्तनया व्याधयः सुमहाबलाः ॥ ५९
 सिंहिका ग्रहमाता वै गन्धर्वजननी मुनिः ।
 ताम्रा त्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतोद्भव ॥ ६०
 क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्वैव पार्थिव ।
 जज्ञे यक्षगणांश्वैव राक्षसांश्च विशाम्पते ॥ ६१
 चतुष्पदानि सत्त्वानि तथा गावस्तु सौरभाः ।
 सुपर्णान् पक्षिणश्वैव विनता चाप्यजायत ॥ ६२
 महीधरान् सर्वनागान् देवी कद्रुव्यजायत ।
 एवं वृद्धिं समगमन् विश्वे लोकाः परंतप ॥ ६३
 तदा वै पौष्करो राजन् प्रादुर्भावो महात्मनः ।
 प्रादुर्भावो पौष्करस्ते मया द्वैपायनेरितः ॥ ६४
 पुराणः पुरुषश्वैव मया विष्णुर्हरिः प्रभुः ।
 कथितस्तेऽनुपूर्व्येण संस्तुतः परमर्थिभिः ॥ ६५
 यश्चेदमयं शृणुयात् पुराणं
 सदा नरः पर्वसु गौरवेण ।
 अवाप्य लोकान् स हि वीतरागः
 परत्र च स्वर्गफलानि भुडत्ते ॥ ६६
 चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
 प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति ॥ ६७

इसी प्रकार मरुत्वतीने मरुत् देवताओंको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया । अग्नि, चक्षु, रवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, महाभुज सुकर्ष, विराज, वाच, विश्वावसु, मति, अश्वमित्र, चित्ररश्मि, निषधन, ह्यन्त, वाडव, चारित्र, मन्दपन्नग, बृहन्त, बृहद्गूप तथा पूतनानुग—इन मरुदण्डोंको पूर्वकालमें मरुत्वतीने जन्म दिया था । अदितिने कश्यपके संयोगसे बारह आदित्योंको उत्पन्न किया । उनके नाम हैं—इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, धनद, धाता और पर्जन्य । ये बारह आदित्य देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । आदित्यके सरस्वतीके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, गुणवानोंमें प्रधान और देवताओंके लिये भी पूजनीय कहे जाते हैं । दनुने दानवोंको और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया । कालाने कालकेय नामक असुरों और राक्षसोंको जन्म दिया । अत्यन्त बलवती व्याधियाँ अनायुषाकी संतान हैं । सिंहिका राहग्रहकी माता है और मुनि गन्धर्वोंकी जननी कही जाती है । भरतकुलोत्पन्न राजन् । ताम्रा पवित्रात्मा अप्सराओंकी माता है । क्रोधासे सभी भूत और पिशाच पैदा हुए । विशाम्पते ! क्रोधाने यक्षगणों और राक्षसोंको भी जन्म दिया था ॥ ५१—६१ ॥

राजन् ! सभी चौपाये जीव तथा गौर्णे सुरभीकी संतान हैं । विनताने सुन्दर पंखधारी पक्षियोंको पैदा किया । कद्मूदेवीने पृथ्वीको धारण करनेवाले सभी प्रकारके नागोंको उत्पन्न किया । परंतप ! इसी प्राकर विश्वमें लोकसृष्टि वृद्धिको प्राप्त हुई है । राजन् ! यही महात्मा विष्णुका पुष्करसम्बन्धी प्रादुर्भाव है । व्यासद्वारा कहे गये इस पौष्कर प्रादुर्भाविका तथा जो पुराणपुरुष, सर्वव्यापी और महर्षियोंद्वारा संस्तुत हैं, उन भगवान् श्रीहरिका वर्णन मैंने तुम्हें आनुपूर्वी सुना दिया । जो मनुष्य सदा पर्वोंके समय गौरवपूर्वक इस श्रेष्ठ पुराणको श्रवण करता है, वह वीतराग होकर लौकिक सुखोंका उपभोग करके परलोकमें स्वर्गफलोंका भोग करता है । जो मनुष्य श्रीकृष्णको नेत्र, मन, वचन और कर्म—इन चारों प्रकारोंसे प्रसन्न करता है तो श्रीकृष्ण भी उसे उसी प्रकार आनन्दित करते हैं ।

राजा च लभते राज्यमधनशोक्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामः सुतं तथा ॥ ६८
यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च।
प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च ॥ ६९
यद्यत्कामयते किञ्चित् तत्तल्लोकेश्वराद् भवेत्।
सर्वं विहाय य इमं पठेत् पौष्ट्रकं हरेः ॥ ७०
प्रादुर्भावं नृपश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत्।
एष पौष्ट्रको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
कीर्तितस्ते महाभाग व्यासश्रुतिनिर्दर्शनात् ॥ ७१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ एकहतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७१ ॥

एक सौ बहुतरवाँ अध्याय

तारकामय-संग्रामकी भूमिका एवं भगवान् विष्णुका महासमुद्रके रूपमें वर्णन, तारकादि असुरोंके अत्याचारसे दुःखी होकर देवताओंकी भगवान् विष्णुसे प्रार्थना और भगवान् का उन्हें आश्वासन

मत्स्य उवाच

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वं च कृते युगे।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णात्वं मानुषेषु च ॥ १
ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणां गहना गतिः।
सम्प्रत्यतीतान् भव्यांश्च शृणु राजन् यथातथम् ॥ २
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥ ३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः।
ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रो बृहस्पतिः ॥ ४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः ॥ ५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम्।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्मणमसृजत् प्रभुः।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन् ॥ ७

राजाको राज्यकी, निर्धनको उत्तम धनकी, क्षीणायुको दीर्घायुकी तथा पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। विष्णुभक्त मनुष्य यज्ञ, वेद, कामनापूर्ति, अनेकविध तप, विविध पुण्य और धनको प्राप्ति करता है। नृपश्रेष्ठ! जो मनुष्य सबका परित्याग करके श्रीहरिके इस पौष्ट्र-प्रादुर्भावका पाठ करता है, वह जो-जो कामनाएँ करता है, वह सब कुछ उस लोकेश्वरभगवान् से प्राप्ति हो जाता है और उसका कभी अमङ्गल नहीं होता। महाभाग! इस प्रकार मैंने तुमसे महात्मा विष्णुके पुष्ट्र या कमलके प्रादुर्भावका वर्णन कर चुका। यह व्यासके वचनों तथा श्रुतियोंका निर्दर्शन है ॥ ६२—७१ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन्! अब मैं कृतयुगमें घटित हुए भगवान् विष्णुके विष्णुत्व एवं हरित्व, देवताओंमें वैकुण्ठत्व और मनुष्योंमें कृष्णात्वका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। उस ईश्वरके कर्मोंकी यह गति बड़ी गहन है। इस समय तुम विष्णुके भूत एवं भावी अवतारोंके विषयमें यथार्थरूपसे श्रवण करो। जो ये ऐश्वर्यशाली अव्यक्तस्वरूप भगवान् हैं, वे ही व्यक्तरूपमें भी प्रकट होते हैं। वे ही नारायण अनन्तात्मा, सबके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी भी कहे जाते हैं। ये सनातन नारायण श्रीहरि ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र और बृहस्पतिके रूपमें भी प्रकट होते हैं। रविनन्दन! ये सर्वव्यापी विष्णु अदितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर इन्द्रके अनुज 'उपेन्द्र' के नामसे विख्यात होते हैं। इन सर्वव्यापीका अदितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेके दो कारण हैं—एक तो अदितिपर कृपा करना और दूसरा देवशत्रु दैत्यों, दानवों और राक्षसोंका वध करना। इन प्रधानात्मा प्रभुने सर्वप्रथम ब्रह्माको उत्पन्न किया। उन पूर्वपुरुषने पूर्व कल्पमें प्रजापतियोंकी सृष्टि की।

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
 तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ८
 एतदाश्र्वयभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
 कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ९
 वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे ।
 आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥ १०
 यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः ।
 ऊन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥ ११
 ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
 त्रातारं मनसा जगमुदेवं नारायणं प्रभुम् ॥ १२
 एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
 सार्कचन्द्रग्रहणं छादयन्तो नभस्तलम् ॥ १३
 चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्हादकारिणः ।
 अन्योऽन्यवेगाभिहताः प्रवबुः सप्त मारुताः ॥ १४
 दीप्तोयाशनिघनैर्वत्रवेगानलानिलैः ।
 रवैः सुधोरैरुत्पातैर्द्व्यमानमिवाम्बरम् ॥ १५
 तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि ।
 दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १६
 चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्द्वयं भवेत् ।
 अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥ १७
 जातं च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
 तिमिरौघपरिक्षिसा न रेजुश्च दिशो दश ॥ १८
 विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुणिठता ।
 द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसावृता ॥ १९
 तान् धनौधान् सतिमिरान् दोर्ध्यामाक्षिष्य स प्रभुः ।
 वपुः सन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥ २०
 बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ।
 तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥ २१
 दीप्तीयात्म्बरथरं तसकाञ्जनभूषणम् ।
 धूमान्धकारवपुषं वुगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ २२

तत्पश्चात् ब्रह्माके वंशमें उत्पन्न होनेवाले सर्वश्रेष्ठ मानवोंको उत्पन्न किया । उन महात्माओंके सम्पर्कसे एक ही शाश्वत ब्रह्म अनेक रूपोंमें विभक्त हो गया । लोकोंमें वर्णन करनेयोग्य भगवान् विष्णुके कर्मोंका यह अनुकीर्तन परम आश्र्वयजनक है । मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ सुनो ॥ १—९ ॥

राजन् ! कृतयुगकी स्थितिके समय वृत्रासुरका वध हो जानेके पश्चात् त्रिलोकीमें विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था । जिसमें संग्राममें कठिनतासे जीते जानेवाले सभी भयंकर दानव यक्ष, नाग और राक्षसोंसहित सभी देवगणोंका संहार कर रहे थे । इस प्रकार मारे जाते हुए वे देवगण शखराहित हो युद्धसे विमुख हो गये और मनसे अपने रक्षक सामर्थ्यशाली भगवान् नारायणकी शरणमें गये । इसी बीच बुझते हुए अंगारकी-सी कान्तिवाले मेघोंने सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहगणोंसमेत आकाशमण्डलको आच्छादित कर लिया । वे प्रचण्ड बिजलियोंसे युक्त थे तथा भयंकर गर्जना कर रहे थे । पुनः एक-दूसरेके बैगसे आहत हो सातों प्रकारकी वायु बहने लगी । उस समय कौंधती हुई बिजली और जलसे युक्त बादलों, वज्रके समान वैगशाली अग्नि और वायुके झकोरों तथा अत्यन्त भयंकर शब्दोंसे युक्त उत्पातोंद्वारा आकाश जलता हुआ-सा दीख रहा था । आकाशमें उड़ती हुई हजारों उल्काएँ भूतलपर गिरने लगीं । दिव्य विमान लड़खड़ते हुए गिरने लगे । चारों युगोंकी समाप्तिके समय लोकोंके लिये जैसा भयकारी विनाश उपस्थित होता है, वैसा ही उत्पात उस समय भी घटित हुआ । सभी रूपवती वस्तुएँ विकृत हो गयीं । सारा जगत् प्रकाशहीन हो गया, जिससे कुछ भी जाना नहीं जा सकता था । घने अन्धकारसे ढकी हुई दसों दिशाएँ शोभाहीन हो गयीं । उस समय काले मेघोंके अवगुण्ठनसे युक्त काला रूप धारण करनेवाली देवी आकाशमें प्रविष्ट हुई । घर अन्धकारसे आवृत होनेके कारण सूर्यके छिप जानेसे आकाशमण्डलकी शोभा जाती रही ॥ १०—१९ ॥

उसी समय सामर्थ्यशाली भगवान्ने अपने दोनों हाथोंसे अन्धकारसहित घन-समूहोंको दूर हटाकर कृष्णवर्णका दिव्य शरीर प्रकट किया । उसकी कान्ति काले मेघ और कज्जलके समान थी, उसके रोएँ भी काले मेघ-जैसे थे, वह तेज और शरीर-दोनोंसे कज्जलगिरिकी भाँति कृष्ण था, उसपर उद्दीप पीताम्बर शोभा पा रहा था, वह तपाये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, धुएँके अन्धकारकी-सी कान्तिसे युक्त तथा

चतुर्द्विगुणपीनांसं किरीटच्छन्मूर्धजम्।
बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम्॥ २३

चन्द्राक्किरणोद्द्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रुतम्।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम्॥ २४

शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम्।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्वनम्॥ २५

त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम्।
सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्त्वमनोहरम्॥ २६

नानाविमानविटपं तोयदाम्बुमधुस्त्रवम्।
विद्याहंकारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम्॥ २७

विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम्।
दैत्यलोकमहास्कन्थं मर्त्यलोके प्रकाशितम्॥ २८

सागराकारनिर्हादं रसातलमहाश्रयम्।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम्॥ २९

शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम्।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम्॥ ३०

महाभूतरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम्।
विमानगरुतव्यासं तोयदाडम्बराकुलम्॥ ३१

जन्तुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम्।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम्॥ ३२

वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम्।
द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम्॥ ३३

वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याभ्योमहोदधिम्।
संध्यासंख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम्॥ ३४

दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगङ्गाषाकुलम्।
पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम्॥ ३५

प्रलयकालमें प्रकट हुई अग्निके समान उद्घासित हो रहा था, उसके कंधे दुगुने एवं चौगुने मोटे थे, उसके बाल किरीटसे ढके होनेके कारण शोभा पा रहे थे, वह स्वर्ण-सदृश चमकीले आयुधोंसे सुशोभित था, उससे चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों-जैसी प्रभा निकल रही थी, वह पर्वत-शिखरकी तरह ऊँचा था, उसके हाथ नन्दक नामक खड्ग और विषेले सर्पों-जैसे बाणोंसे युक्त थे, वह चित्तल मछलीके समान विशाल शक्ति, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए था, क्षमा जिसका मूल था, जो श्रीवृक्षसे सम्पन्न, शार्ङ्गधनुषसे युक्त, देवताओंको उत्तम फल देनेवाला, देवाङ्गनारूपी रुचिर पल्लवोंसे सुशोभित, सभी लोगोंके मनको प्रिय लगनेवाला, सम्पूर्ण जीवोंसे युक्त होनेके कारण मनोहर, नाना प्रकारके विमानरूपी वृक्षोंसे युक्त और बादलोंके मीठे जलको टपकानेवाला, विद्या और अहंकारके सारसे सम्पन्न तथा महाभूतरूपी वृक्षोंको उगानेवाला था, वह घने पत्तोंसे आच्छादित था, उसपर ग्रह-नक्षत्ररूप पुष्प खिले हुए थे, दैत्योंके लोक उसकी विशाल शाखाके रूपमें थे, ऐसा वह विष्णुशैल मृत्युलोकमें प्रकाशित हो रहा था ॥ २०—२८ ॥

रसातलतक व्यास रहनेवाला वह नारायणरूप महासागर सागरकी भाँति शब्द कर रहा था, वह मृगेन्द्ररूपी पाशोंसे व्यास, पंखधारी जन्तुओंसे सेवित, शील और अर्थकी सुन्दर गन्धसे युक्त तथा सम्पूर्ण लोकरूपी महान् वृक्षसे सम्पन्न था, नारायणका अव्यक्त स्वरूप उसका अगाध जल था, वह व्यक्त अहंकाररूप फेनसे युक्त था, उसमें महाभूतगण लहरोंके समूह थे, ग्रह और नक्षत्र बुद्बुदकी तरह शोभा पा रहे थे, वह विमानोंके चलनेसे होनेवाले शब्दोंसे व्यास था, वह बादलोंके आडम्बरसे सम्पन्न, जलजन्तुओं और मत्स्यसमूहोंसे परिपूर्ण और समुद्रस्थ पर्वतों एवं शङ्खसमूहसे युक्त था। उसमें त्रिगुणयुक्त विषयोंकी भाँवरें उठ रही थीं और सारा लोक तिमिंगिल (बहुत बड़ी मछली)-के समान था, वीरगण वृक्षों और लताओंके झुरमुट थे, बड़े-बड़े नाग सेवारके समान थे, बारहों आदित्य महाद्वीप और ग्यारहों रुद्र नगर थे, वह महासागर आठों वसुओंरूप पर्वतसे युक्त और त्रिलोकीरूप जलसे भरा हुआ था, उसके जलमें असंख्य संध्यारूप लहरें उठ रही थीं, वह सुपर्णरूप वायुसे सेवित, दैत्य और राक्षसगणरूप ग्राह तथा यक्ष एवं नागरूप मीनसे व्यास था, पितामह ब्रह्मा ही उसमें महान् पराक्रमी व्यक्ति थे,

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
 कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ॥ ३६
 तं तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम् ।
 दैवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तवत्सलम् ॥ ३७
 अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।
 हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ॥ ३८
 ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते ।
 अनन्तरशिमधिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वे ॥ ३९
 तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
 भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥ ४०
 ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे ।
 ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्तपुरोगमाः ॥ ४१
 जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः ।
 स तेषां तां गिरं श्रुत्वा विष्णुर्देवतदैवतम् ॥ ४२
 मनश्क्रेते विनाशाय दानवानां महामृथे ।
 आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥ ४३
 उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ।
 शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ॥ ४४
 जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
 ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥ ४५
 देवाः प्रीतिं समाजगमुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम् ।
 ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्र बलाहकाः ॥ ४६
 प्रवकुश्श शिवा वाता प्रशान्ताश्र दिशो दश ।
 शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमशक्तुः प्रदक्षिणाम् ॥ ४७
 न विग्रहं ग्रहाशक्तुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ।
 विरजस्काभवन् मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः ॥ ४८
 यथार्थमृहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः ।
 आसञ्जुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥ ४९

वह सभी स्त्री-रत्नों तथा श्री, कीर्ति, कान्ति और लक्ष्मीरूपी नदियोंसे सुशोभित था, उसमें समयानुसार महान् पर्व और प्रलयकी उत्पत्ति होती रहती थी, ऐसा वह योगरूप महान् तटवाला नारायण-महासागर था ॥ २९—३६ १ ॥

उस समय दैत्योंसे पराजित हुए देवताओंने आकाशमें उन देवाधिदेव भगवान्को, जो भक्तोंके वरदायक, भक्तवत्सल, अनुग्रह करनेवाले, प्रशान्तिकारक, शुभमय और भयके अवसरोंपर अभय प्रदान करनेवाले हैं, देखा । वे ऐसे लोकमय दिव्य रथपर विराजमान थे, जो इन्द्रके रथके समान था, जिसपर गरुडध्वज फहरा रहा था, जिसमें सभी ग्रह, चन्द्र और सूर्य उपस्थित थे, जो मन्दराचलकी श्रेष्ठ धुरीपर आधारित था, वह असंख्य किरणोंसे युक्त मेरुकी विस्तृत गुफा-जैसा लग रहा था, उसमें तारकाएँ विचित्र पुष्पोंके सदृश तथा ग्रह और नक्षत्र हंसके समान शोभा पा रहे थे । तब इन्द्र आदि वे सभी देवता हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए उन शरणागतवत्सलकी शरणमें गये ॥ ३७—४१ १ ॥

इस प्रकार देवताओंकी वह आर्त-वाणी सुनकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने महासमरमें दानवोंका विनाश करनेको सोचा । तब उत्तम शरीर धारण करके आकाशमें स्थित हुए भगवान् विष्णु सभी देवताओंसे प्रतिज्ञापूर्वक ऐसी वाणी बोले—‘देवगण ! तुम्हारा कल्याण हो । तुमलोग शान्त हो जाओ, भय मत करो, ऐसा समझो कि मैंने सभी दानवोंको जीत लिया है । अब तुमलोग पुनः त्रिलोकीका राज्य ग्रहण करो ।’ इस प्रकार उन सत्यसंध भगवान् विष्णुके वचनसे वे देवगण परम संतुष्ट हुए और उन्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई, मानो उत्तम अमृत ही पान करनेको मिल गया हो । तदनन्तर वह निविड़ अन्धकार नष्ट हो गया । बादल विनष्ट हो गये । सुखदायिनी वायु चलने लगी और दसों दिशाएँ शान्त हो गयीं । ज्योतिर्गणोंकी प्रभा निर्मल हो गयी । तब चन्द्रमा और वे सभी ज्योतिर्गण प्रदक्षिणा करने लगे । ग्रहोंमें परस्पर विग्रहका भाव नष्ट हो गया । सागर प्रशान्त हो गये । मार्ग धूलरहित हो गये । स्वर्गादि तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापित हो गयी । नदियाँ यथार्थरूपसे प्रवाहित होने लगीं । समुद्रोंका ज्वार-भाटा शान्त हो गया । मनुष्योंकी अन्तरात्माएँ तथा इन्द्रियाँ

महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरथीयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥ ५०

प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ॥ ५१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे द्विसप्त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ बहतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७२ ॥

शुभकारिणी हो गयीं । महर्षियोंका शोक नष्ट हो गया, वे उच्च स्वरसे वेदोंका अध्ययन करने लगे । यज्ञोंमें अग्निको पके हुए मङ्गलकारक हविकी प्राप्ति होने लगी । इस प्रकार शत्रुका विनाश करनेके विषयमें दत्तप्रतिज्ञ भगवान् विष्णुकी वाणी सुनकर सभी लोगोंका मन हर्षित हो गया, तब वे अपने-अपने धर्मोंमें संलग्न हो गये ।

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

दैत्यों और दानवोंकी युद्धार्थ तैयारी

मत्स्य उवाच

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः ।	
उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ॥ १	
मयस्तु काञ्छनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम् ।	
चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकम्पितमहायुगम् ॥ २	
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।	
रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ॥ ३	
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपद्मक्तिविराजितम् ।	
दिव्यास्त्रतूणीरथं पयोधरनिनादितम् ॥ ४	
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ।	
गदापरिधसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ॥ ५	
हैमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ।	
सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम् ॥ ६	
गजेन्द्राभोगवपुषं कवचित् केसरिवर्चसम् ।	
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ॥ ७	
दीपमाकाशं दिव्यं रथं पररथारुजम् ।	
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप इवांशुमान् ॥ ८	

मत्स्यभगवान् बोले—रविनन्दन ! तदनन्तर देवताओंके लिये उपयुक्त भगवान् विष्णुके उस अभ्यदायक वचनको सुनकर दैत्य और दानव युद्ध एवं उसमें विजयप्राप्तिके लिये महान् उद्योग करने लगे । उस समय युद्धाकाङ्क्षी मय एक ऐसे दिव्य रथपर सवार हुआ, जो सोनेका बना हुआ था । वह अविनाशी रथ तीन नल्व * विस्तारवाला अत्यन्त विशाल तथा चार पहियों और परम सुन्दर महान् जुएसे युक्त था । उसमें क्षुद्र घंटिकाओंके रुनझुन शब्द हो रहे थे । वह गैंडेके चमड़ेसे आच्छादित, रत्नों और सुवर्णकी सुन्दर जालियोंसे सुशोभित, भेड़ियों और पङ्किबद्ध पक्षियोंकी पच्चीकारीसे समलंकृत तथा दिव्यास्त्र और तरकससे परिपूर्ण था । उससे मेघकी गड़गड़ाहटके समान शब्द निकल रहा था । वह श्रेष्ठ रथ सुन्दर धुरी और सुदृढ़ मध्यभागसे युक्त, आकाशमण्डल-जैसा विस्तृत तथा गदा और परिधसे परिपूर्ण होनेके कारण मूर्तिमान् सागर-सा लग रहा था । उसके केयूर, बलय और कूबर (युगंधर) सोनेके बने हुए थे तथा उसपर पताकाएँ और ध्वज फहरा रहे थे, जिससे वह सूर्ययुक्त मन्दराचलकी भाँति शोभित हो रहा था । उसका ऊपरी भाग कहीं गजेन्द्र-चर्म तो कहीं सिंह-चर्म-जैसा चमक रहा था । उसमें एक हजार रीछ जुते हुए थे, वह घने बादलकी तरह शब्द कर रहा था, शत्रुओंके रथको रौंदनेवाला वह दीपिशाली रथ आकाशगामी था, उसपर बैठा हुआ मय ऐसा लग रहा था मानो दीपिमान् सूर्य सुमेरु पर्वतपर विराजमान हों ॥ १-८ ॥

* एक फलांगका एक प्राचीन माप ।

तारमुक्लोशविस्तारं सर्वं हेममयं रथम्।
 शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम्॥ ९
 काष्णायिसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम्।
 तिमिरोदगारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम्॥ १०
 लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्।
 आयसैः परिधैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्रैः॥ ११
 प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तश्च कण्टकैः।
 शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः॥ १२
 उद्यन्तं द्विषतां हेतोद्वितीयमिव मन्दरम्।
 युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्॥ १३
 विरोचनस्तु संकुद्धो गदापाणिरवस्थितः।
 प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीपशृङ्गं इवाचलः॥ १४
 युक्तं रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः।
 स्यन्दनं वाहयामास सपलानीकमर्दनः॥ १५
 व्यायतं किञ्चुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन् महत्।
 वाराहः प्रमुखै तस्थौ सप्ररोह इवाचलः॥ १६
 खरस्तु विक्षरन् दर्पन्त्रेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
 स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत॥ १७
 त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः।
 व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान्॥ १८
 विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
 श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः॥ १९
 अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्टोऽद्रिशिलायुधः।
 युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः॥ २०
 किशोरस्त्वभिसंहर्षात्किशोर इति चोदितः।
 सबला दानवाश्चैव सन्नहन्ते यथाक्रमम्॥ २१
 अथवद् दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः।
 लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः॥ २२
 दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्।
 स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनोषेक्षणायुधः॥ २३

इसी प्रकार जो अत्यन्त ऊँचा और दूरतक शब्द करनेवाला था, जिसके सभी अङ्ग स्वर्णमय थे, जो आकारमें पर्वतके समान और नीलाञ्जनकी राशि-सा दीख रहा था, काले लोहेका बना हुआ था, जिसके लोहेके हरसेमें कूबर बँधा हुआ था, जिसमें कहीं-कहीं अंधकारको फाड़कर किरणें चमक रही थीं, जो बादलकी तरह गर्जना कर रहा था, लोहेकी विशाल जाली और झरोखोंसे सुशोभित था, लोहनिर्मित परिधि, क्षेपणीय (डेलवाँस) और मुद्रारोंसे परिपूर्ण था, भाला, पाश, बड़े-बड़े शङ्कु, कण्टक, भयदायक तोमर और कुठारोंसे सुशोभित था, शत्रुओंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत दूसरे मन्दराचलकी भाँति दीख रहा था तथा जिसमें एक हजार गधे जुते हुए थे, ऐसे उत्तम दिव्य रथपर तारकासुर सवार हुआ। क्रोधसे भरा हुआ विरोचन हाथमें गदा लिये हुए उस सेनाके मुहानेपर खड़ा हुआ। वह देवीप्यमान शिखरवाले पर्वतके समान लग रहा था। शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाले दानवश्रेष्ठ हयग्रीवने एक हजार रथके साथ अपने रथको आगे बढ़ाया। वाराह नामक दानव अपने एक हजार किञ्चु* लम्बे विशाल धनुषका टंकार करते हुए सेनाके अग्रभागमें स्थित हुआ, जो वृक्षोंसहित पर्वत-सा दीख रहा था। खर नामक दैत्य अभिमानवश नेत्रोंसे रोषजनित जल गिराता हुआ संग्रामके लिये उद्यत हुआ, उस समय उसके दाँत, होंठ और नेत्र फड़क रहे थे ॥ ९—१७ ॥

इसी प्रकार पराक्रमी दानवराज त्वष्टा, जिसमें आठ हाथी जुते हुए थे, ऐसे भयंकर रथपर बैठकर दानवसेनाको व्यूहबद्ध करनेका प्रयत्न करने लगा। विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत, जो श्वेत पर्वतके समान विशालकाय और श्वेत कुण्डलोंसे विभूषित था, युद्धके लिये सेनाके अग्रभागमें स्थित हुआ। बलिका पुत्र अरिष्ट, जो महान् बलसम्पन्न और पर्वतको कँपा देनेवाला था तथा पर्वत-शिलाएँ जिसकी आयुधभूता थीं, युद्धकी कामनासे सेनाके सम्मुख खड़ा हुआ। किशोर नामक दैत्य प्रेरित किये गये सिंह-किशोरकी तरह अत्यन्त हर्षके साथ दैत्य-सेनाके मध्यभागमें उपस्थित हुआ, जो उदयकालीन सूर्य-सा प्रतीत हो रहा था। नवीन मेघकी-सी कान्तिवाला लम्ब नामक दानव, जो लम्बे वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित था, दैत्यसेनामें पहुँचकर कुहासेसे घिरे हुए सूर्यकी तरह शोभा पा रहा था। महान् ग्रह राहु, जो मुख, दाँत, होंठ और नेत्रोंसे युद्ध करनेवाला

* बीस अंगुल या मतान्तरसे एक हाथका प्राचीन माप।

हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ॥ २४

सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहक्षेषु चापरे ।
केचित्खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः ॥ २५

पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादार्थपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २६

आस्फोटयन्तो बहवः क्षेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥ २७

ते गदापरिधैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः ।
बाहुभिः परिधाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥ २८

पाशैः प्रासैश्च परिधैस्तोमराङ्गुशपट्टिशैः ।
चिक्रीङ्गुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥ २९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिधैश्चोत्तमायसैः ।
चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चकुरानन्दितं बलम् ॥ ३०

एतद्वानवसैन्यं तत् सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥ ३१

तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं
वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।

बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्ण
युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ ३२

इति श्रीमात्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे त्रिसमत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके तारकामय-संग्राममें एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७३ ॥

था, हाँसते हुए दैत्योंके आगे खड़ा हुआ। इस प्रकार अन्यान्य दानव भी क्रमशः सेनासहित कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थित हुए। उनमें कुछ लोग घोड़ोंपर सवार थे तो कुछ लोग गजराजोंके कंधोंपर बैठे थे। दूसरे कुछ लोग सिंह, व्याघ्र, वराह और रीछोंपर सवार थे। कुछ गधे और ऊँटोंपर चढ़कर चल रहे थे तो किन्हींके बाहन चीते थे ॥ १८—२५ ॥

दूसरे भीषण दैत्य, जिनमें कुछके मुख टेढ़े थे, किन्हींके एक पैर तथा किन्हींके आधा पैर ही था, युद्धकी अभिलाषासे पैदल ही नाचते हुए चल रहे थे। उन दानवश्रेष्ठोंमें कुछ ताल ठोंक रहे थे, बहुतेरे उछल-कूद रहे थे और कुछ हर्षित होकर सिंहनाद कर रहे थे। इस प्रकार वे दानवगण हाथोंमें भयंकर गदा, परिघ, शिला और मुसल धारण करके अपनी परिधाकार भुजाओंसे देवताओंको धमका रहे थे। उस समय श्रेष्ठ दैत्यगण पाश, भाला, परिघ, तोमर (लकड़ीका बना गोलाकार अस्त्र), अङ्गुश, पट्टिश, शतघ्नी (तोप), शतधार, मुद्र, गण्डशैल, शैल, उत्तम लोहेके बने हुए परिघ और चक्रोंसे क्रीड़ा करते हुए दैत्यसेनाको आनन्दित करने लगे। इस प्रकार दानवोंकी वह सारी सेना युद्धके मदसे उन्मत्त हो देवताओंके सम्मुख खड़ी हुई, जो उमड़े हुए मेघोंकी सेना-सी प्रतीत हो रही थी। दानवोंकी वह अद्भुत एवं प्रचण्ड सेना, जो हजारों प्रधान दैत्योंसे भरी हुई तथा वायु, अग्नि, पर्वत और मेघके समान भीषण दीख रही थी, युद्धकी तैयारीके समय युद्धकी इच्छासे उन्मत्त हुई-सी शोभा पा रही थी ॥ २६—३२ ॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

देवताओंका युद्धार्थ अभियान

मत्य उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारो रविनन्दन ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तारं वैष्णवं शृणु ॥ १

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ॥ २

मत्यभगवान् कहा—रविनन्दन! तुम दैत्योंकी सेनाका विस्तार तो सुन ही चुके, अब देवताओंकी—विशेषकर विष्णुकी सेनाका विस्तार श्रवण करो। उस समय आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और दोनों महाबली अश्विनीकुमार—इन सभीने क्रमशः अपनी-अपनी सेना और अनुयायियोंसहित कवच धारण कर लिया।

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् ।
 ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम् ॥ ३
 मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवरंहसः ।
 सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥ ४
 देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
 दीसिमद्धिः सदस्यैश्च ब्रह्मिभिरभिष्टुतः ॥ ५
 वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्युदिन्नायुधोदितैः ।
 युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥ ६
 यमारुढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
 हविर्धनेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ॥ ७
 स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
 सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसां गणाः ॥ ८
 केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः ।
 युक्तो हयसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥ ९
 स स्यन्दनवरो भाति गुप्तो मातलिना तदा ।
 कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥ १०
 यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् ।
 तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान् नादेन भीषयन् ॥ ११
 चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
 शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत् तोयमयं वपुः ॥ १२
 कालपाशान् समाविद्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
 वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वल्लीलाः सहस्रशः ॥ १३
 पाण्डुरोद्भूतवसनः प्रवालस्त्विराङ्गदः ।
 मणिश्यामोत्तमवपुर्हरिभारार्पितो वरः ॥ १४
 वरुणः पाशधृद्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
 युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥ १५
 यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ।
 युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥ १६

सहस्र नेत्रधारी लोकपाल इन्द्र जो समस्त देवताओंके नायक हैं, सर्वप्रथम सुरगजेन्द्र ऐरावतपर आरुढ़ हुए। सेनाके मध्यभागमें इन्द्रका वह रथ भी खड़ा किया गया, जो समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडके समान वेगशाली था। उसमें सुन्दर पहिये लगे हुए थे तथा वह स्वर्ण और वज्रसे विभूषित था। सहस्रोंकी संख्यामें देवताओं, गन्धर्वों और यक्षोंके समूह उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। दीसिशाली सदस्य और महर्षि उसकी स्तुति कर रहे थे तथा वह वज्रकी गड़गड़ाहटके सदृश शब्द करनेवाले, बिजली और इन्द्रधनुषसे सुशोभित तथा स्वेच्छाचारी पर्वतकी तरह दीखनेवाले मेघसमूहोंसे घिरा हुआ था। उसपर सवार होकर ऐश्वर्यशाली इन्द्र समस्त जगत्में भ्रमण करते हैं, यज्ञोंमें स्थित ब्राह्मणलोग यज्ञके प्रारम्भमें उसकी प्रशंसा करते हैं, स्वर्गलोकमें उसपर बैठकर इन्द्रके प्रस्थित होनेपर उनके पीछे देवताओंकी तुरहियाँ बजने लगती हैं और सैकड़ों सुन्दरी अप्सराएँ संगठित होकर नृत्य करती हैं। वह रथ शेषनागसे अङ्गित ध्वजसे युक्त होकर सूर्यकी भाँति शोभा पाता है तथा उसमें मन और वायुके समान वेगशाली एक हजार घोड़े जोते जाते हैं। उस समय मातलिद्वारा सुरक्षित वह श्रेष्ठ रथ उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जैसे सूर्यके तेजसे पूर्णतया घिरा हुआ सुमेरुपर्वत हो ॥ १—१० ॥

इसी प्रकार कालसहित यमराज भी दण्ड और मुद्रको हाथमें लेकर अपने सिंहनादसे दैत्योंको भयभीत करते हुए देवसेनामें खड़े हुए। पाशधारी वरुण जलमय शरीर धारणकर देवसेनाके मध्यभागमें स्थित हुए। उनके साथ चारों सागर तथा जीभ लपलपाते हुए नाग भी थे, वे शङ्ख और मुक्ताजटित केल्यूर धारण किये हुए थे, हाथमें कालपाश लिये हुए थे, वायुके समान वेगशाली, चन्द्र-किरणोंके से उज्ज्वल तथा जलाकार घोड़ोंसे युक्त रथपर सवार थे। वे हजारों प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे, पीले वस्त्र और प्रवालजटित अङ्गरसे विभूषित थे, उनकी शरीरकान्ति नीलमणिकी-सी सुन्दर थी, उन श्रेष्ठ देवपर इन्द्रने अपना भार सौंप रखा था। वे तटको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले सागरकी तरह युद्ध-वेलाकी बाट जोह रहे थे। तत्पश्चात् निधियोंके अधिपति एवं विमानद्वारा युद्ध करनेवाले सामर्थ्यशाली राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर यक्षों, राक्षसों और गुह्यकोंकी सेना तथा शङ्ख और पद्मके साथ

राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदूश्यत ।
विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ॥ १७
स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
उक्षाणमास्थितः संख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ १८
पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः ।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥ १९
चतुर्षु युक्ताश्वत्वारो लोकपाला महाबलाः ।
स्वासु दिक्षु स्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते ॥ २०
सूर्यः सप्तश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना ।
श्रिया जाग्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥ २१
उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना ।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥ २२
सहस्ररश्मयुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ।
चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥ २३
सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भिराहादयञ्जगत् ॥ २४
तमृक्षपूर्गानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् ।
शशच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥ २५
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम् ।
ओषधीनां सहस्राणां निधानममृतस्य च ॥ २६
जगतः प्रथमं भागं सौम्यं सत्यमयं रथम् ।
ददृशुर्दर्निवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम् ॥ २७
यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ।
सप्तधातुगतो लोकांस्त्रीन् दधार चचार च ॥ २८
यमाहुरग्रिकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
सप्तस्वरगतो यश्च नित्यं गीर्भिरुदीर्यते ॥ २९
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् ।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोगिनम् ॥ ३०

हाथमें गदा धारण किये हुए पुष्पकविमानपर आरूढ़ हुए दिखायी पड़े । उस समय युद्धकी इच्छासे आये हुए राजराजेश्वर नरवाहन कुबेरकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो युद्धस्थलमें नन्दीश्वरपर बैठे हुए साक्षात् स्वयं शिवजी ही हों । सेनाके पूर्वभागमें इन्द्र, दक्षिणभागमें यमराज, पश्चिमभागमें वरुण और उत्तरभागमें कुबेर—इस प्रकार ये चारों महाबली लोकपाल चारों दिशाओंमें स्थित हुए । वे अपनी-अपनी दिशाओंमें बड़ी सतर्कताके साथ उस देवसेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥ ११—२० ॥

तदुपरान्त सहस्र किरणोंके सम्मिलित तेजसे उद्दासित द्वादशात्मा दिनेश्वर सूर्य अपने अमित वेगशाली रथपर, जिसमें सात घोड़े जुते हुए थे, जो शोभासे प्रकाशित, सूर्यकी किरणोंसे देवीप्यमान, उदयाचल, अस्ताचल और मेरुपर्वतपर भ्रमण करनेवाला तथा स्वर्गद्वाररूप एक चक्रसे सुशोभित था, सवार हो अविनाशी लोकोंको संतप्त करते हुए लोगोंके बीच विचरण करने लगे । शीतरश्मि चन्द्रमा श्वेत घोड़े जुते हुए रथपर सवार हो अपनी जलपूर्ण हिमकी-सी कान्तिसे जगत्को आहादित करते हुए सुशोभित हुए । उस समय शीतल किरणोंवाले द्विजेश्वर चन्द्रमाके पीछे नक्षत्रगण चल रहे थे । उनके शरीरमें खरगोशका चिह्न झलक रहा था, वे रात्रिके अन्धकारके विनाशक, सामर्थ्यशाली, आकाशमण्डलमें स्थित ज्योतिर्गणोंके अधीश्वर, रसीले पदार्थोंको रस प्रदान करनेवाले, सहस्रों प्रकारकी ओषधियों तथा अमृतके निधान, जगत्के प्रथम भागस्वरूप और सौम्य स्वभाववाले हैं, उनका रथ सत्यमय है । इस प्रकार हिमसे प्रहार करनेवाले चन्द्रमाको दानवोंने वहाँ उपस्थित देखा ॥ २१—२७ ॥

जो समस्त प्राणियोंका प्राणस्वरूप है, मनुष्योंके शरीरोंमें पाँच प्रकारसे विभक्त होता है, जिसकी सातों धातुओंमें गति है, जो तीनों लोकोंको धारण करता तथा उनमें विचरण करता है, जिसे अग्निका कर्ता, सबका उत्पत्तिस्थान और ईश्वर कहते हैं, जो नित्य सातों स्वरोंमें विचरण करता हुआ वाणीद्वारा उच्चरित होता है । जिसे पाँचों भूतोंमें उत्तम भूत, शरीरहित, आकाशचारी, शीघ्रगामी और शब्दयोगी अर्थात् शब्दको उत्पन्न करनेवाला कहा जाता है,

स वायुः सर्वभूतायुरुद्धूतः स्वेन तेजसा ।
 ववौ प्रव्यथयन् दैत्यान्प्रतिलोमं सतोयदः ॥ ३१
 मरुतो दिव्यगन्धवैर्विद्याधरणैः सह ।
 चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नैः ॥ ३२
 सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रतोयमयं विषम् ।
 शरभूता दिवीन्द्राणां चेरुव्यात्तानना दिवि ॥ ३३
 पर्वतैश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः ।
 उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्तु दानवं बलम् ॥ ३४
 यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
 युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३५
 सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थितः ।
 भूम्यापोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३६
 अरिज्ञममरादीनां चक्रं गृह्ण गदाधरः ।
 अर्कं नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥ ३७
 सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम् ।
 करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम् ॥ ३८
 अन्यैर्भुजैः प्रदीपाभैर्भुजगारिध्वजः प्रभुः ।
 दधारायुधजातानि शार्ङ्गदीनि महाबलः ॥ ३९
 स कश्यपस्यात्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम् ।
 पवनाधिकसम्पातं गगनक्षेभणं खगम् ॥ ४०
 भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ।
 अमृतारभनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रुतम् ॥ ४१
 देवासुरविमर्देषु बहुशो दृढविक्रमम् ।
 महेन्द्रेणामृतस्यार्थं वज्रेण कृतलक्षणम् ॥ ४२
 शिखिनं बलिनं चैव तस्मकुण्डलभूषणम् ।
 विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम् ॥ ४३
 स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा ।
 भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ॥ ४४

सम्पूर्ण प्राणियोंका आयुस्वरूप वह वायु वहाँ अपने तेजसे प्रकट हुआ । वह बादलोंको साथ लेकर दैत्योंको प्रव्यथित करता हुआ उनकी प्रतिकूल दिशामें बहने लगा । मरुदण्ड दिव्य गन्धवैं और विद्याधरोंके साथ केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति निर्मल तलवारोंसे क्रीड़ा करने लगे ॥ २८—३२ ॥

इसी प्रकार नागाधीश्वरगण आकाशमें मुख फैलाये हुए तीव्र जलमय विषको उगलते हुए आकाशचारियोंके बाणरूप होकर विचरण करने लगे । अन्यान्य देवगण सैकड़ों पर्वतों, शिलाओं, शिखरों और वृक्षोंसे दानवसेनापर प्रहार करनेके लिये उपस्थित हुए । तत्पश्चात् जो इन्द्रियोंके अधीश्वर, पद्मनाभ, तीन पगसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले, प्रलयकालमें कृष्ण वर्णकी आभासे युक्त, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सबके उत्पत्तिस्थान, मधु नामक दैत्यके वधकर्ता, यज्ञमें स्थित होकर हव्यके भोक्ता, पृथ्वीजलआकाशस्वरूप, श्याम वर्णवाले, शान्तिकर्ता और शत्रुओंका हनन करनेवाले हैं, उन भगवान् गदाधरने देवताओंके शत्रुओंका विनाश करनेवाले अपने सुदर्शन चक्रको, जो अपने उत्तम तेजसे उदयाचलसे उदय होते हुए सूर्यके समान चमक रहा था, हाथमें ऊपर उठा लिया । फिर उन्होंने बायें हाथसे अपनी विशाल गदाका आलम्बन लिया, जो समस्त असुरोंकी विनाशिनी, काले रंगवाली और शत्रुओंको कालके गालमें डालनेवाली थी । महाबली गरुडध्वज भगवान्ने अपनी अन्य देदीप्यमान भुजाओंसे शार्ङ्गधनुष आदि अन्यान्य आयुधोंको धारण किया ॥ ३३—३९ ॥

तदनन्तर जो कश्यपके पुत्र, सर्पभक्षी, वायुसे भी अधिक वेगशाली, आकाशको शुब्ध कर देनेवाले, आकाशचारी, मुखमें दबाये हुए सर्पसे सुशोभित, अमृत-मन्थनसे मुक्त हुए मन्दराचलके समान ऊँचे, अनेकों बार घटित हुए देवासुर-संग्राममें सुदृढ़ पराक्रम दिखानेवाले, अमृतके लिये इन्द्रके द्वारा वज्रके प्रहारसे किये गये चिह्नसे युक्त, शिखाधारी, महाबली, तपाये हुए स्वर्णनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित, विचित्र पंखरूपी वस्त्रवाले और धातुयुक्त पर्वतके समान शोभायमान थे, उनका वक्षःस्थल लम्बा और चौड़ा था, जो चन्द्रमाके समान उद्भासित हो रहा था, उसपर नागोंके फणोंमें लगी हुई मणियाँ चमक रही थीं,

पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया ।
 युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥ ४५
 नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्घतम् ।
 केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥ ४६
 अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः ।
 सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥ ४७
 तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः ।
 गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥ ४८
 तद्वैश्रवणसंशिलष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ।
 द्विजराजपरिक्षिमं देवराजविराजितम् ॥ ४९
 चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समर्वर्तत ।
 स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत ।
 स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशना वाक्यमाददे ॥ ५०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे चतुःसप्त्यथिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७४ ॥

वे अपने दोनों सुन्दर पंखोंसे आकाशको उसी प्रकार लीलापूर्वक आच्छादित किये हुए थे, जैसे युगान्तके समय दो इन्द्रधनुषोंसे युक्त बादल आकाशको ढक लेते हैं । वे नीली, लाल और पीली पताकाओंसे सुशोभित थे, जो केतु (पताका)-के वेषमें छिपे हुए, विशालकाय और अरुणके छोटे भाई थे, उन सुन्दर वर्णवाले, सुनहले शरीरसे सुशोभित पक्षिश्रेष्ठ गरुडपर आरूढ़ होकर श्रीमान् भगवान् विष्णु समरभूमिमें उपस्थित हुए । फिर तो देवगणों तथा मुनियोंने सावधान-चित्तसे उनका अनुगमन किया और परमोत्कृष्ट मन्त्रोंसे युक्त वाणियोंद्वारा उन जनार्दनका स्तवन किया । इस प्रकार देवताओंकी वह विशाल सेना जब कुबेरसे युक्त, यमराजसे समन्वित, चन्द्रमासे सुरक्षित, इन्द्रसे सुशोभित और चन्द्रमाकी प्रभासे समलंकृत हो युद्धके लिये आगे बढ़ी, तब बृहस्पतिने कहा—‘देवताओंका मङ्गल हो ।’ इसी प्रकार दानव-सेनामें भी शुक्राचार्यने ‘दानवोंका कल्याण हो’ ऐसा वचन उच्चारण किया ॥ ४०—५० ॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंका घमासान युद्ध, मयकी तामसी माया, और्वाणिकी उत्पत्ति और महर्षि ऊर्वद्वारा हिरण्यकशिपुको उसकी प्राप्ति

मत्स्य उवाच	
ताभ्यां बलाभ्यां संज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा ।	
सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १	
दानवा दैवतैः सार्थं नानाप्रहरणोद्यताः ।	
सभीयुर्युद्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥ २	
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ ।	
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ३	
ततो रथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः ।	
उत्पत्तदभिश्च गगनमसिहस्रैः समंततः ॥ ४	
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पत्तदभिश्च सायकैः ।	
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुदरौः ॥ ५	

मत्स्यभगवान् कहा—रविनन्दन ! तदनन्तर परस्पर विजयकी अभिलाषावाले देवताओं और दानवोंकी उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होने लगा । नाना प्रकारके शत्राखोंसे लैस हुए दानवगण देवताओंके साथ युद्ध करते हुए एक-दूसरेसे भिड़ गये । उस समय वे ऐसा प्रतीत हो रहे थे मानो पर्वत पर्वतोंके साथ भिड़ गये हों । देवताओं और असुरोंके बीच छिड़ा हुआ वह युद्ध धर्म, अधर्म, दर्प और विनयसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त अद्भुत लग रहा था । उस समय रथोंको पृथक्-पृथक् आगे बढ़ाया जा रहा था, हाथियोंको उत्तेजित किया जा रहा था, चारों ओर सैनिक हाथमें तलवार लिये हुए आकाशमें उछल रहे थे, मुसल फेंके जा रहे थे, बाणोंकी वर्षा हो रही थी, धनुषोंका टंकार हो रहा था, मुद्र

तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्।
 जगत्संस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम्॥ ६
 हस्तमुक्तैश्च परिधैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः।
 दानवाः समरे जघूर्देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ७
 ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जयकाङ्क्षिभिः।
 विषण्णवदना देवा जग्मुराति परां मृथे॥ ८
 तैस्त्रिशूलप्रमथिताः परिधैर्भिन्नमस्तकाः।
 भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेम् रक्तं ब्रणैर्बहु॥ ९
 वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्वासुरैः कृताः।
 प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्॥ १०
 अस्तंगतमिवाभाति निष्ठाणसदृशाकृतिः।
 बलं सुराणामसुरैर्निष्ठयत्नायुधं कृतम्॥ ११
 दैत्यचापच्युतान् घोरांश्चित्त्वा वज्रेण ताज्ञारान्।
 शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः॥ १२
 स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्वानवबलं महत्।
 तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत्॥ १३
 तेऽन्योऽन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च।
 घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा॥ १४
 मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्वन्तः सुरोत्तमाः।
 वर्पूषि दैत्यसिंहानां तमोभूतान्यपातयन्॥ १५
 अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा।
 पेतुस्ते दानवगणाश्छन्नपक्षा इवाद्रयः॥ १६
 तद् घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे।
 दानवं देवकदनं तमोभूतमिवाभवत्॥ १७
 तदा सृजन् महामायां मयस्तां तामसीं दहन्।
 युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना॥ १८
 सा ददाह ततः सर्वान् मायाः मयविकल्पिताः।
 दैत्याश्वादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे॥ १९

गिराये जा रहे थे, इस प्रकार देवों और दानवोंसे व्याप्त हुए उस युद्धने भयंकर रूप धारण कर लिया है। वह युगान्तकालिक संवर्तक अग्निकी तरह जगत्को भयभीत करने लगा। दानवगण समरभूमिमें पृथक्-पृथक् हाथोंसे फेंके गये परिधों और पर्वतोंसे इन्द्र आदि देवताओंपर प्रहार करने लगे। इस प्रकार रणभूमिमें विजयाभिलाषी बलवान् दानवोंद्वारा मारे जाते हुए उन देवताओंका मुख सूख गया और वे बड़ी कष्टपूर्ण स्थितिमें पड़ गये। दानवोंने उन्हें शूलोंसे बींध डाला, परिधोंकी चोटसे उनके मस्तक विदीर्ण तथा वक्षःस्थल चूर-चूर हो गये और उनके घावोंसे अविरल रक्त प्रवाहित होने लगा। असुरोंने देवताओंको बाणसमूहोंसे परिवेष्ट करके प्रयत्नहीन कर दिया। वे दानवी मायामें प्रविष्ट होकर किसी प्रकारकी भी चेष्टा करनेमें असमर्थ हो गये। देवताओंकी वह सेना प्राणरहितकी तरह विनष्ट हुई-सी दीख रही थी। असुरोंने उसे आयुध और प्रयत्नसे रहित कर दिया था॥ १—११॥

तदनन्तर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र बज्रद्वारा दैत्योंके धनुषोंसे छूटे हुए भयंकर बाणोंको छिन्न-भिन्न करके दैत्योंकी भीषण सेनामें प्रविष्ट हुए। उन्होंने प्रधान-प्रधान दैत्योंका वध करके दानवोंकी उस विशाल सेनाको तामस अख्लसमूहके प्रयोगसे अन्धकारमय बना दिया। इस प्रकार इन्द्रके पराक्रमसे घोर अन्धकारसे घिरे हुए वे दानव परस्पर एक-दूसरेको तथा देवताओंके वाहनोंको भी नहीं पहचान पाते थे। इधर दानवी मायाके पाशसे मुक्त हुए श्रेष्ठ देवगण प्रयत्न करके दैत्येन्द्रोंके अन्धकारमय शरीरोंको काटकर गिराने लगे। उस नील कान्तिवाले अन्धकारसे घिरे हुए वे दानवगण मूर्च्छित होकर धराशायी होते हुए ऐसे लग रहे थे मानो कटे हुए पंखवाले पर्वत हों। दैत्येन्द्रोंकी वह सेना समुद्रमें अन्धकारकी तरह एकत्र हो गयी और देवताओंद्वारा मारे जाते हुए दानव अन्धकारमय-से हो गये। यह देखकर मयदानवने इन्द्रकी उस तामसी मायाको नष्ट करते हुए अपनी महान् राक्षसी मायाका सृजन किया। वह और्व नामक अग्निसे उत्पन्न हुई और प्रलयकालीन (भयंकर) प्रकाशको प्रकट कर रही थी। मयद्वारा रची गयी उस मायाने सम्पूर्ण देवताओंको जलाना आरम्भ किया। इधर सूर्यके समान तेजस्वी शरीरवाले दैत्यगण युद्धस्थलमें तुरंत उठ खड़े

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ।
भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशुसलिलप्रदम् ॥ २०
ते दह्यमाना हौर्वेण वहिना नष्टचेतसः ।
शशंसुर्वंशिणं देवाः संतसाः शरणैषिणः ॥ २१
संतसे मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२
ऊर्वो ब्रह्मिष्ठिः शक्त तपस्तेपे सुदारुणम् ।
ऊर्वः स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥ २३
तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् ।
उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह ॥ २४
हिरण्यकशिपुश्वैव दानवो दानवेश्वरः ।
ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥ २५
ऊर्चुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम् ।
ऋषिवंशेषु भगवंश्छन्नमूलमिदं पदम् ॥ २६
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते ।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥ २७
बहूनि विप्रगोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥ २८
एवमुच्छ्वन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् ।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २९
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्धयात्मानमात्मना ।
त्वया धर्मोर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम् ॥ ३०
स एवमुक्तो मुनिभिर्हूर्वों मर्मसु ताडितः ।
जगहें तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१
यथायं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु सः ।
आर्ष वै सेवतः कर्म वन्यमूलफलाशिनः ॥ ३२
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः ।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥ ३३
जनानां वृत्तयस्तिस्त्रो ये गृहाश्रमवासिनः ।
अस्माकं तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥ ३४

हुए। इस प्रकार और्वी मायाके सम्पर्कसे जलते हुए देवगण शीतल किरणोंवाले एवं जलप्रदाता इन्द्रकी शरणमें गये। और्व अग्निसे जलनेके कारण देवताओंकी चेतना नष्ट हो रही थी। तब संतस हुए देवगणोंने शरणकी इच्छासे वज्रधारी इन्द्रके पास जाकर उन्हें सूचित किया ॥१२—२१॥

इस प्रकार अपनी सेनाको मायाद्वारा संतस होती तथा दानवोंद्वारा मारी जाती देखकर देवराज इन्द्रके पूछनेपर वरुणने इस प्रकार कहा—‘इन्द्र! ऊर्व एक ब्रह्मिष्ठिके पुत्र हैं। वे पहलेसे ही तेजस्वी और गुणोंमें ब्रह्माके समान थे। उन्होंने अत्यन्त कठोर तप किया था। जब उनकी तपस्यासे सारा जगत् सूर्यकी भाँति संतस हो उठा, तब उनके निकट देवर्षियोंसहित दिव्य महर्षिगण उपस्थित हुए। उसी समय वहाँ दानवेश्वर हिरण्यकशिपु दानव भी पहुँचा। तब ब्रह्मिष्ठियोंने सर्वप्रथम उन परम तेजस्वी ऊर्व ऋषिको सूचना दी और फिर इस प्रकार धर्मयुक्त कहा—‘ऐश्वर्यशाली ऊर्व! ऋषियोंके वंशोंमें इस संतान-परम्पराकी जड़ कट चुकी है। एकमात्र आप शेष हैं, सो भी संतानहीन हैं। दूसरा कोई गोत्रकी वृद्धि करनेवाला विद्यमान है नहीं और आप ब्रह्मचर्य-व्रतको धारणकर क्लेश सहन करते हुए तपमें ही लगे हुए हैं। भावितात्मा मुनियों तथा ब्राह्मणोंके बहुत-से गोत्र संततिके बिना केवल एक व्यक्तितक ही सीमित रह गये हैं। इस प्रकार मूलके नष्ट हो जानेपर हमलोगोंको पुनः पुत्रोत्पत्तिका कोई कारण नहीं दीख रहा है। आप तो तपस्याके प्रभावसे श्रेष्ठ और प्रजापतिके समान तेजस्वी हो गये हैं, अतः वंश-प्राप्तिके लिये प्रयत्न कीजिये और अपने द्वारा अपनी वृद्धि कीजिये। आपने धर्मोपार्जन तो कर ही लिया है, इसलिये अब दूसरे शरीरकी रचना कीजिये अर्थात् संतानोत्पत्तिके लिये प्रयत्नशील होइये’॥२२—३०॥

मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऊर्व ऋषिके मर्मस्थानोंपर विशेष आघात पहुँचा, तब उन्होंने उन ऋषियोंकी निन्दा करते हुए इस प्रकार कहा—‘ब्राह्मणकुलोत्पत्र जंगली फल-मूलका आहार करते हुए आर्ष कर्मके सेवनमें निरत आत्मदर्शी ब्राह्मणका भलीभाँति आचरण किया गया ब्रह्मचर्य ब्रह्मको भी विचलित कर सकता है। जो गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले हैं, उन लोगोंके लिये अन्य तीन वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं, परंतु वनमें आश्रम बनाकर निवास करनेवाले हमलोगोंके लिये यही वृत्ति उत्तम है।

अब्धक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा ।
 अश्मकुद्वा दशतपाः पञ्चातपसहाश्च ये ॥ ३५
 एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः ।
 ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम् ॥ ३६
 ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ।
 एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥ ३७
 ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
 ये स्थिता ब्रह्मचर्ये तु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः ॥ ३८
 नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः ।
 नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात् परं तपः ॥ ३९
 यो निगृहेन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् ।
 ब्रह्मचर्येण वर्तेन किमतः परमं तपः ॥ ४०
 अयोगे केशधरणमसंकल्पे व्रतक्रिया ।
 अब्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम् ॥ ४१
 क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः ।
 नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥ ४२
 यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
 सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ४३
 मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्त्विभिः ।
 न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्त्विनाम् ॥ ४४
 यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
 व्याहृतं सदभिरत्यर्थमसदभिरिव मे मतम् ॥ ४५
 वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् ।
 दारयोगं विना स्त्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥ ४६
 एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
 वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः ॥ ४७
 ऊर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ।
 ममन्यैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम् ॥ ४८
 तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।
 जगतो दहनाकाङ्गी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥ ४९

जो लोग केवल जल पीकर, वायुका आहार कर, दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेकर, पत्थरपर कुटे हुए पदार्थोंको खाकर, दस या पाँच स्थानोंपर अग्नि जलाकर उनके मध्यमें बैठकर तपस्या करनेवाले हैं तथा सुदुष्कर व्रतोंका पालन करते हुए तपस्यामें निरत हैं, वे लोग भी ब्रह्मचर्यको प्रधान मानकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। परलोकमें ब्रह्मचर्यके महत्वको जाननेवाले लोग ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मचर्यके पालनसे ब्राह्मणको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्यमें धैर्य स्थित है, ब्रह्मचर्यमें तप स्थित है तथा जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यमें स्थित रहते हैं, वे मानो स्वर्गमें स्थित हैं। लोकमें योगके बिना सिद्धि और सिद्धिके बिना यशकी प्राप्ति नहीं हो सकती तथा यशःप्राप्तिका मूल कारण परम तप ब्रह्मचर्यके बिना नहीं हो सकता। जो इन्द्रियसमूह और पञ्चमहाभूतोंको वशमें करके ब्रह्मचर्यका पालन करता है, उसके लिये इससे बढ़कर और कौन-सा तप हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं ॥ ३१—४० ॥

‘योगाभ्यासके बिना जटा धारण करना, संकल्पके बिना व्रताचरण और ब्रह्मचर्य-हीन दशामें नियमोंका पालन—ये तीनों दम्भ कहे जाते हैं। कहाँ स्त्री, कहाँ स्त्री-संयोग और कहाँ स्त्री-पुरुषका भाव-परिवर्तन? परंतु इन सबके अभावमें ही ब्रह्माने इस सृष्टिको मनसे उत्पन्न की है और सारी प्रजाएँ भी मनसे ही प्रादुर्भूत हुई हैं। इसलिये आत्मज्ञानी आपलोगोंमें यदि तपस्याका बल है तो प्रजापतिके कर्मानुसार आपलोग भी मानसिक पुत्रोंकी सृष्टि कीजिये। तपस्वियोंको मानसिक संकल्पद्वारा योनिका निर्माण कर उसमें आधान करना चाहिये। उनके लिये स्त्री-संयोग, बीज और व्रत आदिका विधान नहीं है। आपलोगोंने मेरे सामने निर्भय होकर जो यह धर्म और अर्थसे हीन वचन कहा है, यह सत्पुरुषोंद्वारा अत्यन्त गर्हित है। मेरे विचारसे तो यह अज्ञानियोंकी उक्ति-जैसा है। मैं अपने इस उद्दीप अन्तरात्मावाले शरीरको मनोमय करके स्त्री-संयोगके बिना ही अपने शरीरसे पुत्रकी सृष्टि करूँगा। इस प्रकार मेरा आत्मा इस वन्य (वानप्रस्थ) विधिके अनुसार प्रजाओंको जला देनेवाले दूसरे आत्मा (पुत्र)-को उत्पन्न करेगा।’ तत्पश्चात् ऊर्वने तपस्यामें संलग्न होकर अपनी जाँघको अग्निमें डालकर पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक कुशसे अरणि-मन्थन किया। तब सहसा उनकी जाँघका भेदन कर इन्थनरहित होनेपर भी ज्वालाओंसे युक्त अग्नि जगत्को जला देनेकी इच्छासे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ।

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वों नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जे परमकोपनः ॥ ५०
उत्पन्नमात्रशोवाच पितरं क्षीणया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात जगद् भक्ष्ये त्वजस्व माम् ॥ ५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृभ्यमाणो दिशो दश ।
निर्दहन् सर्वभूतानि ववृथे सोऽन्तकोऽनलः ॥ ५२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्व समाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयां कुरु ॥ ५३
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणु त्वं वदतां वर ॥ ५४

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवाञ्छशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ॥ ५५
प्रभातकाले सम्प्रासे काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६
कुत्र चास्य निवासः स्याद् भोजनं वा किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ५७

ब्रह्मोवाच

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति ।
मम योनिर्जलं विप्र तस्य पीतवतः सुखम् ॥ ५८
यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः ।
तद्विस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं च तत् ॥ ५९
ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च पुत्रक ।
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः ॥ ६०
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६१
एवमस्त्विति तं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरि प्रभाम् ॥ ६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः ।
और्वस्याग्ने: प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः ॥ ६३

इस प्रकार ऊर्वकी जाँघका भेदन कर वह और्व नामक विनाशकारी अग्नि उत्पन्न हुआ, जो परम क्रोधी और तीनों लोकोंको जला डालना चाहता था । उत्पन्न होते ही उसने मन्द स्वरमें पितासे कहा—‘तात! मुझे भूख कष्ट दे रही है, अतः मुझे छोड़िये । मैं जगत्को खा जाऊँगा ।’ ऐसा कहकर वह विनाशकारी और्व अग्नि स्वर्गतक पहुँचनेवाली ज्वालाओंसे युक्त हो दसों दिशाओंमें फैलकर समस्त प्राणियोंको भस्म करते हुए बढ़ने लगा । इसी बीच ब्रह्मा ऊर्व मुनिके निकट आये और उन्हें आदर देते हुए बोले—‘विप्रवर! तुम मेरी बात तो सुनो । अपने पुत्रको मना कर दो, जगत्पर दया तो करो । मैं तुम्हारे इस पुत्रको उत्तम स्थान प्रदान करूँगा । वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुत्र! मेरी यह बात एकदम सच है’ ॥ ४१—५४ ॥

ऊर्व बोले—भगवन्! आज मैं धन्य हो गया । आपने मुझपर महान् अनुग्रह किया, जो मेरे पुत्रके लिये इस प्रकारकी बुद्धि दे रहे हैं । यह आपका मुझपर परम अनुग्रह है । किंतु प्रातःकाल होनेपर जब वह पुत्र मेरे पास आयेगा तब मैं उसे किन पदार्थोंसे तृप्त करूँगा, जिससे उसे सुख प्राप्त हो सकेगा? इसका निवासस्थान कहाँ होगा? और इसका भोजन किस प्रकारका होगा? (मुझे आशा है कि) आप इस महान् तेजस्वीके पराक्रमके अनुरूप ही सब विधान करेंगे ॥ ५५—५७ ॥

ब्रह्माने कहा—विप्रवर! समुद्रमें स्थित बडवाके मुखमें इसका निवास होगा और मेरे उत्पत्तिस्थानभूत जलको यह सुखपूर्वक पान करेगा । जहाँ मैं जलमय हविका पान करता हुआ नियत रूपसे निवास करता हूँ, वही हवि और वही स्थान मैं तुम्हारे पुत्रके लिये भी दे रहा हूँ । पुत्र! तत्पश्चात् युगान्तके समय यह और मैं—दोनों एक साथ होकर पुत्रहीन प्राणियोंको पितृ-ऋणसे मुक्त करते हुए विचरण करेंगे । इस प्रकार मैंने इस अग्निको जलभक्षी तथा अन्तकालमें देवता, असुर और राक्षसोंसहित समस्त प्राणियोंको दग्ध कर देनेवाला बना दिया । यह सुनकर ऊर्वने ‘एवमस्तु—ऐसा ही हो’ कहकर ब्रह्म-वाणीका अनुमोदन किया । तदुपरान्त ज्वालामण्डलसे घिरा हुआ वह अग्नि अपनी कान्तिको पिता ऊर्वमें निहित कर समुद्रके मुखमें प्रविष्ट हो गया । इसके बाद ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये और वहाँ उपस्थित सभी महर्षि और्व अग्निकी प्रभाका महत्व जानकर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ५८—६३ ॥

हिरण्यकशिपुर्द्वृष्टा तदा तन्महदभुतम्।
उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६४
भगवन्नदभुतमिदं संवृतं लोकसाक्षिकम्।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥ ६५
अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ॥ ६६
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम्।
यदि सीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ॥ ६७

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुः स्थितः।
नास्ति मे तपसानेन भयमद्येह सुव्रत ॥ ६८
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्।
निरिन्धनामग्निमयीं दुर्धर्षा पावकैरपि ॥ ६९
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे।
संरक्षत्यात्मपक्षं च विपक्षं च प्रधर्षति ॥ ७०
एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।
जगाम त्रिदिवं हष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥ ७१
एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा।
और्वेण निर्मिता पूर्वे पावकेनोर्वसूनुना ॥ ७२
तस्मिस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्येषा न संशयः।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥ ७३
यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७४
तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्नं संशयः ॥ ७५

तदनन्तर उस महान् अद्भुत प्रसङ्गको देखकर हिरण्यकशिपु ऊर्व मुनिको साषाङ्ग प्रणामकर उच्चस्वरसे इस प्रकार बोला—‘भगवन्! यह तो अत्यन्त अद्भुत घटना घटित हुई। सारा जगत् इसका साक्षी है। मुनिश्रेष्ठ! आपकी तपस्यासे पितामह ब्रह्मा संतुष्ट हो गये हैं। महाव्रत! आप ऐसा समझिये कि मैं आपका तथा आपके पुत्रका भृत्य हूँ, अतः यहाँ जो कुछ कार्य हो, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये। मुझे अपना शरणागत समझिये। मैं आपकी ही आराधनामें निरत हूँ। मुनिश्रेष्ठ! इसपर भी यदि मैं कष्ट पाता हूँ तो यह आपकी ही पराजय होगी ॥ ६४—६७ ॥

ऊर्वने कहा—सुब्रत! यदि मैं तुम्हारे गुरुके रूपमें स्थित हूँ तो मैं धन्य हो गया। तुमने मुझपर महान् अनुग्रह किया। अब तुम्हें मेरी इस तपस्याके बलसे जगत्में किसी प्रकारका भय नहीं है। इसके लिये तुम मेरे पुत्रद्वारा निर्मित उसी मायाको ग्रहण करो, जो इन्धनरहित होनेपर भी अग्निमयी और अग्नियोद्वारा भी दुर्धर्ष है। शत्रुओंका निग्रह करते समय यह माया तुम्हारे निजी वंशके वशमें रहेगी। यह आत्मपक्षका संरक्षण और विपक्षका विनाश करेगी। यह सुनकर दानवेश्वर हिरण्यकशिपुने ‘एवमस्तु—ऐसा ही हो’ यों कहकर उस मायाको ग्रहणकर मुनिश्रेष्ठ ऊर्वको प्रणाम किया और वह कृतार्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको चला गया। (वरुण कहते हैं—) यह वही माया है, जो असह्य और देवताओंके लिये भी दुर्गम्य है। इसे पूर्वकालमें ऊर्वके पुत्र और्व अग्निने निर्मित किया था। उस हिरण्यकशिपु दैत्यके मर जानेपर निःसंदेह यह माया शक्तिहीन हो जायगी; क्योंकि यह जिसके तेजसे उत्पन्न हुई थी, उन ऊर्व ऋषिने इसे पहले ही ऐसा शाप दे रखा है। अतः शक्र! यदि आप इसका विनाश करके सबको सुखी करना चाहते हैं तो जलके उत्पत्तिस्थान चन्द्रमाको मुझे सखारूपमें प्रदान कीजिये। जल-जन्तुओंसे घिरा हुआ मैं उनके साथ रहकर आपकी कृपासे इस मायाको नष्ट कर डालूँगा—इसमें संशय नहीं है ॥ ६८—७५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ पचासठरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७५ ॥

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

चन्द्रमाकी सहायतासे वरुणद्वारा और्वाग्नि-मायाका प्रशमन, मयद्वारा शैली-मायाका प्राकट्य, भगवान् विष्णुके आदेशसे अग्नि और वायुद्वारा उस मायाका निवारण तथा कालनेमिका रणभूमिमें आगमन

मत्स्य उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥ १
गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थं च दिवौकसाम् ॥ २
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः ।
त्वम्यं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ॥ ३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥ ४
लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः शशसंनिभः ।
न विदुः सोम देवापि ये च नक्षत्रयोनयः ॥ ५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्य महसा भासयस्यखिलं जगत् ॥ ६
श्वेतभानुर्हिमतनुज्योतिषामधिपः शशी ।
अधिकृत्कालयोगात्मा इष्टो यज्ञरसोऽव्ययः ॥ ७
ओषधीशः क्रियायोनिर्हरशेखरभाक् तथा ।
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥ ८
त्वं कान्तिः कान्तिवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम् ।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघस्त्वमृक्षराट् ॥ ९
तद् गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरुथिना ।
शमय त्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ॥ १०

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज वरप्रद ।
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥ ११

मत्स्यभगवान् कहा—देवताओंकी वृद्धि करनेवाले

इन्द्र परम प्रसन्न हुए और 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' यों कहकर सर्वप्रथम शीतायुध चन्द्रमाको युद्धके लिये आदेश देते हुए बोले—'सोम! आप जाइये और असुरोंके विनाश तथा देवताओंकी विजयके निमित्त पाशधारी वरुणकी सहायता कीजिये। आप मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी और ज्योतिर्गणोंके अधीश्वर हैं। रसज्ञ लोग सम्पूर्ण लोकोंमें जितने रस हैं, उन्हें आपसे ही युक्त मानते हैं। आपके मण्डलमें सागरकी तरह क्षय और वृद्धि स्पष्टरूपसे होती रहती है। आप जगत्‌में कालका योग करते हुए दिन-रातका परिवर्तन करते रहते हैं। आपका चिह्न लोककी छायासे युक्त है। आप मृगलाज्जन हैं। सोम! जो नक्षत्रोंके उत्पत्तिकर्ता हैं, वे देवता भी आपकी महिमाको नहीं जानते। आप सूर्यके मार्गसे ऊपर सभी ज्योतिर्गणोंके ऊपरी भागमें स्थित हैं और अपने तेजसे अन्धकारको दूर कर सम्पूर्ण जगत्‌को उद्घासित करते हैं। आप श्वेतभानु, हिमतनु, ज्योतियोंके अधीश्वर, शशलाज्जन, कालयोग-स्वरूप, अग्निहोत्र-वेदाध्ययन आदि कर्मरूप, यज्ञके परिणामभूत, अविनाशी, ओषधियोंके स्वामी, कर्मके उत्पादक, शिवजीके मस्तकपर स्थित, शीतल किरणोंवाले, अमृतके आश्रयस्थान, चञ्चल और श्वेतवाहन हैं। आप ही सौन्दर्यशाली व्यक्तियोंके सौन्दर्य हैं और आप ही सोमपान करनेवालोंके लिये सोम हैं। आपका स्वभाव समस्त प्राणियोंके लिये सौम्य है। आप अन्धकारके विनाशक और नक्षत्रोंके स्वामी हैं। इसलिये महासेन! आप कवचधारी वरुणके साथ जाइये और उस आसुरी मायाको शान्त कीजिये, जिससे हमलोग युद्धस्थलमें जल रहे हैं'॥ १—१०॥

सोमने कहा—वरदायक देवराज! यदि आप

मुझे युद्धके लिये आदेश देते हैं तो मैं अभी दैत्योंकी मायाका विनाश करनेवाले शिशिरकी वर्षा करता हूँ।

एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान् ।
 विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान् महाहवे ॥ १२
 तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः ।
 वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव ॥ १३
 तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्द्र महाबलौ ।
 जघन्तुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥ १४
 द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
 मृधे चेरतुरभ्योधिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥ १५
 ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्वानवमदृश्यत ।
 जगत्संवर्तकाभ्योदैः प्रविष्टैरिव संवृतम् ॥ १६
 तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ ।
 शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥ १७
 शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
 न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥ १८
 शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
 हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरुष्माण इवाग्रयः ॥ १९
 तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
 विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पत्तन्ति च ॥ २०
 तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादिताऽशीतरश्मिभिः ।
 मयो दर्दश मायावी दानवान् दिवि दानवः ॥ २१
 स शिलाजालविततां खड्गचर्माङ्गुहासिनीम् ।
 पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ २२
 सिंहव्याघ्रगणाकीर्णा नददभिर्गजयूथपैः ।
 ईहामृगगणाकीर्णा पवनाधूर्णितद्रुमाम् ॥ २३
 निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् ।
 प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत् स समन्ततः ॥ २४
 सासिशब्दैः शिलावर्णैः सम्पतदभिश्च पादपैः ।
 जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥ २५

आप इस भीषण युद्धमें मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये शीतमे जले हुए हिमपरिवेष्टित, माया और गर्वसे रहित इन दैत्यसिंहोंको देखिये । फिर तो वरुणके पाशसहित चन्द्रमाङ्गुष्ठा छोड़ी गयी हिमवृष्टिने उन भयंकर दैत्योंको मेघसमूहकी तरह धेर लिया । वे दोनों महाबली पाशधारी वरुण और शीतांशु चन्द्रमा पाश और हिमके प्रहारसे दानवोंका संहार करने लगे । वे दोनों जलके स्वामी और समरमें पाश एवं हिमके द्वारा युद्ध करनेवाले थे, अतः वे रणभूमिमें जलसे क्षुब्ध हुए दो महासागरकी भाँति विचरण करने लगे । उन दोनोंके द्वारा जलमग्न की गयी हुई दानवोंकी वह सेना उमड़े हुए संवर्तक नामक बादलोंसे आच्छादित जगत्की तरह दीख रही थी । इस प्रकार जलके स्वामी उन दोनों देवता चन्द्रमा और वरुणने दैत्येन्द्रद्वारा निर्मित मायाको शान्त कर दिया । रणभूमिमें शीतल किरणसमूहोंसे जले हुए तथा पाशोंसे जकड़े हुए दैत्यगण शिखररहित पर्वतोंकी तरह चलनेमें भी असमर्थ हो गये । शीतांशुके आधातसे उन दैत्योंके सर्वाङ्ग हिमसे आप्लावित हो गये और वे जलकी ठण्डकसे ठिरुर गये । इस प्रकार वे गरमीरहित अग्निकी तरह दीख रहे थे । आकाशमण्डलमें विचरनेवाले उन दैत्योंके विचित्र विमानोंकी कान्ति विपरीत हो गयी और वे लड़खड़ाकर गिरने-पड़ने लगे ॥ ११—२० ॥

इस प्रकार जब मायावी मयदानवने आकाशमें उन दानवोंको वरुणके पाशद्वारा बँधे हुए तथा शीतल किरणोंद्वारा आच्छादित देखा, तब उसने चारों और सुप्रसिद्ध पार्वती मायाकी सृष्टि की, जो शिलासमूहसे व्यास तथा ढाल-तलवारसे युक्त हो अट्हास करनेवाली थी, जिसका अग्रभाग घने वृक्षोंसे आच्छादित होनेके कारण भयंकर था, जो कन्दराओंसे व्यास काननोंसे युक्त, सिंहों, व्याघ्रों, चिंगारियोंसे आच्छादित होनेके परिपूर्ण थी, जिसके वृक्ष वायुके झक्कोरेसे चक्कर काट रहे थे, जो अपने ही प्रयत्नसे निर्मित, घोर शब्द करनेवाली और आकाशमें स्वेच्छानुसार गमन करनेवाली थी । वह पार्वती-माया तलवारोंकी खनखनाहट, शिलाओंकी वृष्टि और गिरते हुए वृक्षोंसे देवसमूहोंका संहार करने लगी । उधर उसने दानवोंको जीवित भी कर दिया ।

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दध्तुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ॥ २६
साश्मयन्त्रायुधघना ह्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवद् घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥ २७
अश्मना प्रहताः केचिच्छिलाभिः शकलीकृताः ।
नानिरुद्धो ह्रुमगणौर्देवोऽदृश्यत कश्चन ॥ २८
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥ २९
स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥ ३०
कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्द तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥ ३१
ततो भगवता दृष्टो रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ॥ ३२
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दाधा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥ ३३
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ ॥ ३४
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ॥ ३५
भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च ।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्तः ॥ ३६
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके ।
मायाबन्धे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ॥ ३७
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने ।
सम्प्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ॥ ३८
जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये ।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे ॥ ३९
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे ।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु ॥ ४०

उसके प्रभावसे चन्द्रमा और वरुणकी दोनों मायाएँ अन्तर्हित हो गयीं । वह दैत्य रणभूमिमें देवगणोंके ऊपर तलवारों और लोहनिर्मित अन्यान्य अस्त्रोंका प्रयोग कर रहा था । उसने रणभूमिको शिलाओं, यन्त्रों, अस्त्रों, वृक्षों और पर्वतोंसे ऐसा सघनरूपसे पाठ दिया कि वहाँकी पृथिवी पर्वतोंकी तरह चलने-फिरनेके लिये दुर्गम हो गयी । उस समय कुछ देवता पत्थरोंसे आहत कर दिये गये, कुछ शिलाओंकी मारसे खण्ड-खण्ड कर दिये गये तथा कोई भी देवता ऐसा नहीं दीख रहा था, जो वृक्षसमूहोंसे ढक न गया हो । इस प्रकार एकमात्र भगवान् गदाधरको छोड़कर देवताओंकी उस सेनाके धनुष छिन्न-भिन्न हो गये, अस्त्रसमूह नष्ट हो गये और वह प्रयत्नहीन हो गयी । शोभाशाली परमेश्वर गदाधर युद्धस्थलमें उपस्थित होनेपर भी विचलित नहीं हुए तथा सहनशील होनेके कारण उन जगदीश्वरको क्रोध भी नहीं आया । काले मेघकी-सी कान्तिवाले कालके ज्ञाता श्रीहरि रणभूमिमें देवताओं और असुरोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे कालकी प्रतीक्षा करते हुए स्थित थे ॥ २१—३१ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें भगवान्को अग्नि और वायु दीख पड़े । तब भगवान् विष्णुने उन्हें प्रेरित किया कि तुम दोनों इस मायाको नष्ट कर डालो । तब वृद्धिकी अन्तिम सीमापर पहुँचे हुए उन प्रचण्ड वेगशाली वायु और अग्निके प्रभावसे उस महासमरमें वह पार्वती माया जलकर भस्म हो गयी और सर्वथा नष्ट हो गयी । इसके बाद अग्निसे संयुक्त वायु और वायुसे संयुक्त अग्नि—दोनों पूरी शक्ति लगाकर युगान्तकी तरह दैत्यसेनाको भस्म करने लगे । आगे-आगे वायुदेव चलते थे, फिर वायुदेवके पीछे अग्निदेव चलते थे । इस प्रकार अग्नि और वायु उस दानव-सेनामें क्रीडा करते हुए विचरण कर रहे थे । दानवोंकी सेना जलती हुई इधर-उधर भागने लगी और विमान चारों ओर जलकर गिरने लगे । दानवोंके कंधे वायुसे अकड़ गये । इस प्रकार अग्निद्वारा अपना कर्म कर चुकनेपर मायाका बन्धन निवृत्त हो गया, भगवान् गदाधरकी स्तुति की जाने लगी, दैत्यगण प्रयत्नहीन हो गये, त्रिलोकी बन्धनसे मुक्त हो गयी, परम प्रसन्न हुए देवगण सब और 'ठीक है, ठीक है' ऐसा शब्द बोलने लगे । इन्द्रकी विजय और दैत्योंकी पराजय हो गयी, सभी दिशाएँ शुद्ध हो गयीं, धर्मका विस्तार होने लगा ।' चन्द्रमाका आवरण हट गया, सूर्य अपने स्थानपर स्थित हो गये, तीनों लोक निश्चिन्त हो गये, लोगोंमें

यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु ।
 अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ॥ ४१
 यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ।
 लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु ॥ ४२
 भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् ।
 देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ॥ ४३
 त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ।
 अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्यथे ॥ ४४
 लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च ।
 प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ ४५
 प्रशान्तकल्पे लोके शान्ते तमसि दानवे ।
 अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्मणि ॥ ४६
 तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां कृतजयक्रिया ।
 पूर्व दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ॥ ४७
 कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
 भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गः ॥ ४८
 मन्दराद्रिप्रतीकाशो महारजतर्पतः ।
 शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ॥ ४९
 शतशीर्षः स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः ।
 पक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः ॥ ५०
 धूम्रकेशो हरिच्छमश्रुः संदष्टौष्ठपुटाननः ।
 त्रैलोक्यान्तरविस्तारि धारयन् विपुलं वपुः ॥ ५१
 बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्मयां महीधरान् ।
 ईरयन् मुखनिःश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ॥ ५२
 तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
 दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ॥ ५३
 तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश ।
 संवर्तकाले तृष्णितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ॥ ५४

चरित्रबल और बन्धुत्वकी भावना जाग्रत् हो गयी, सभी प्राणी यज्ञकी भावनासे पूर्ण हो गये, पापोंका प्रशमन हो गया, मृत्युका बन्धन सुदृढ़ हो गया, अग्निमें आहुतियाँ पड़ने लगीं, यज्ञोंमें शोभा पानेवाले देवगण स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु मार्गदर्शन करने लगे, लोकपालगण सभी दिशाओंके लिये प्रस्थित हो गये, सिद्धोंकी भावना तपस्यामें संलग्न हो गयी, पापकर्मोंका अभाव हो गया, देवपक्षमें आनन्द मनाया जाने लगा । दैत्यपक्षमें उदासी छा गयी, धर्म तीन चरणोंसे स्थित हुआ और अधर्मका एक चरण रह गया, महाद्वार (यमराम) बंद हो गया और सन्मार्गका प्रचार होने लगा । सभी लोग अपने-अपने वर्णधर्म एवं आश्रमधर्ममें प्रवृत्त हो गये, राजाओंका दल प्रजाकी रक्षामें तत्पर होकर सुशोभित होने लगा, दानवरूपी तमोगुणके शान्त हो जानेपर जगत्में पापका विनाश हो गया । इस प्रकार अग्नि और वायुद्वारा युद्धकर्म किये जानेपर सभी विशाल लोक उन्हींसे युक्त हो गये और उन्हींके द्वारा यह विजयकी क्रिया सम्पन्न हुई ॥ ३२-४६ ॥

तदनन्तर दैत्योंके लिये वायु और अग्निद्वारा उत्पन्न किये गये महान् भयको सुनकर सर्वप्रथम कालनेमि नामसे विख्यात दानव (युद्धभूमिमें) दिखायी पड़ा । वह सुवर्णसे युक्त मन्दराचलके समान विशालकाय था, उसके मस्तकपर सूर्य-सरीखा मुकुट चमक रहा था, वह मधुर शब्द करते हुए बाजूबंदसे विभूषित था, उसके सौ बाहु, सौ मुख और सौ मस्तक थे, वह परम भयानक सौ अस्त्रोंको एक साथ धारण किये हुए था, इस प्रकार वह सौ शिखरोंवाले पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था, दैत्योंके विशाल पक्षमें आगे बढ़ा हुआ वह दानव ग्रीष्मकालीन अग्निकी तरह दीख रहा था, उसके बाल धूमिल थे, उसकी दाढ़ी हरे रंगकी थी, वह दाँतोंसे होंठोंको दबाये हुए मुखसे युक्त था, इस प्रकार वह समूची त्रिलोकीमें विस्तृत विशाल शरीर धारण किये हुए था । वह भुजाओंसे आकाशको नापता हुआ, पैरोंसे पर्वतोंको फेंकता हुआ और मुखके निःश्वाससे जलयुक्त बादलोंको तितर-बितर करता हुआ चल रहा था । उसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें तिरछी मढ़ी हुई थीं । वह मन्दराचलके समान परम तेजस्वी था । वह युद्धस्थलमें समस्त देवगणोंको जलाते हुएकी तरह आ रहा था । वह देवगणोंको भयभीत कर रहा था, दसों दिशाओंको आच्छादित किये हुए था और प्रलयकालमें प्रकट हुए प्यासे मृत्युकी

सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
 लम्बाभरणपूर्णेन किंचिच्चलितवर्मणा ॥ ५५

उच्छ्रेतेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।
 दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति श्रुवन् ॥ ५६

तं कालनेमिं समरे द्विष्टां कालचेष्टितम् ।
 वीक्षन्ते स्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ॥ ५७

तं वीक्षन्ति स्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
 त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ॥ ५८

सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुताधूर्णिताम्बरः ।
 प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः ॥ ५९

स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे ।
 कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः ॥ ६०

अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
 कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ॥ ६१

तरह दीख रहा था। जो सुतलसे निकला था, जिसकी अंगुलियोंके पर्व (पोरु) विशाल थे, जो आभरणोंसे युक्त था, जिसका कवच कुछ हिल रहा था और जिसके दाहिने हाथका अग्रभाग उठा हुआ था, ऐसे शरीरसे युक्त कालनेमिने देवताओंद्वारा मारे गये दानवोंसे कहा—‘अब तुमलोग उठकर खड़े हो जाओ’ ॥ ४७—५६ ॥

इस प्रकार समरभूमिमें शत्रुओंके प्रति कालकी-सी भीषण चेष्टा करनेवाले उस कालनेमिकी ओर सभी देवता एकटक निहारने लगे। उस समय उनके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। इस प्रकार चलते हुए उस कालनेमिको समस्त प्राणी ऐसे देख रहे थे मानो तीन पगसे त्रिलोकीको नापनेके लिये चलते हुए दूसरे नारायण हों। अत्यन्त विशाल शरीरवाले कालनेमिके चलते हुए पैरोंकी वायुसे आकाश चक्कर-सा काटने लगता था, इस प्रकार वह असुर युद्धभूमिमें विचरण करता हुआ देवताओंको भयभीत करने लगा। तदुपरान्त रणक्षेत्रमें असुरराज मयने कालनेमिका आलिङ्गन किया। उस समय वह दैत्य विष्णुसहित मन्दराचलके समान सुशोभित हो रहा था। तदनन्तर इन्द्र आदि सभी देवता दूसरे कालकी तरह कालनेमिको आया हुआ देखकर अत्यन्त व्यथित हो गये ॥ ५७—६१ ॥

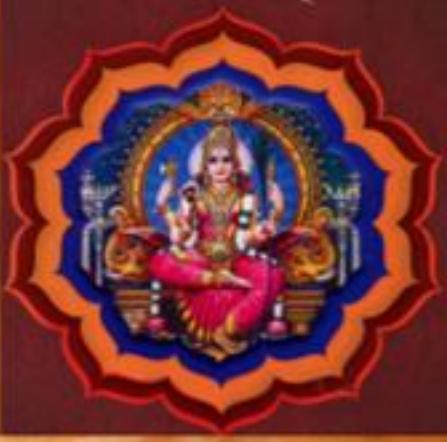
इति श्रीमात्ये महापुराणे तारकामययुद्धे षट्समत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके तारकामययुद्धमें एक सौ छिह्नतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७६ ॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंकी अद्भुत मुठभेड़,
 कालनेमिका भीषण पराक्रम और उसकी देवसेनापर विजय

मत्स्य उवाच
 दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः ।
 व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १
 तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
 उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ॥ २
 ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः ।
 तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ॥ ३

मत्स्यभगवान् कहा—रविनन्दन! महान् तेजस्वी महासुर कालनेमि दानवोंकी सेनामें उसी प्रकार वृद्धिंगत होने लगा, जैसे ग्रीष्म-ऋतुके अन्तमें बादल उमड़ पड़ते हैं। तब वे सभी दानव-यूथपति कालनेमिको त्रिलोकीमें व्यास देखकर श्रमरहित हो गये और सर्वोत्तम अमृतका पान कर उठ खड़े हुए। उनके भय और त्रास समाप्त हो चुके थे। वे तारकामय-संग्राममें मय और तारकको आगे रखकर सदा विजयी होते रहे हैं।

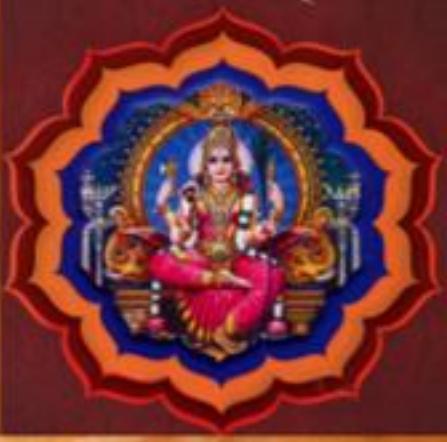


COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
Icreator of
hinduism
server!

रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाइक्षिणः ।
 मन्त्रमध्यसतां तेषां व्यूहं च परिधावताम् ॥ ४
 प्रेक्षतां चाभवत् प्रीतिर्दीनवं कालनेमिनम् ।
 ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ॥ ५
 ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
 मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ६
 विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
 अरिष्ठो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥ ७
 स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः ।
 एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः ॥ ८
 दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमि तमुद्धतम् ।
 ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चकैरथं परश्वधैः ॥ ९
 कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्रैः ।
 अश्मभिश्चाद्रिसदूशैर्गण्डशैलैश्च दारूणैः ॥ १०
 पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिधैश्चोत्तमायसैः ।
 घातनीभिः सुगुर्वाभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥ ११
 युगेर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताङ्गितैः ।
 दोर्भिश्चायतदीसैश्च प्रासैः पाशैश्च मूर्च्छनैः ॥ १२
 भुजङ्गवक्त्रैलिहानैर्विसर्पदभिश्च सायकैः ।
 वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ॥ १३
 विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
 दैत्याः संदीपनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥ १४
 ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमि महाहवे ।
 सा दीपशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ॥ १५
 द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घनानीलाम्बुदागमे ।
 देवतानामपि चमूर्मुदे शक्रपालिता ॥ १६
 उपेतसितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः ।
 वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥ १७
 तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
 यमेन्द्रवरुणैर्गुमा धनदेन च धीमता ॥ १८
 सम्प्रदीपाग्नियना नारायणपरायणा ।
 सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ॥ १९

युद्धाभिलाषी वे दानव युद्धभूमिमें उपस्थित होकर शोभा पा रहे थे। उनमें कुछ परस्पर मन्त्रणा कर रहे थे, कुछ व्यूहकी रचना कर रहे थे और कुछ रक्षकके रूपमें थे। उन सबका कालनेमि दानवके प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो गया। तत्पश्चात् वहाँ मयदानवके जितने मुख्य-मुख्य युद्धके अगुआ थे, वे सभी भय छोड़कर हर्षपूर्वक युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए। फिर मय, तारक, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत, खर, लम्ब, बलिका पुत्र अरिष्ठ, किशोर और देवरूपसे प्रसिद्ध मुखसे युद्ध करनेवाला महान् असुर स्वर्भानु—ये सभी अस्त्रवेत्ता थे और सभी तपोबलसे सम्पन्न थे। वे सभी सफल प्रयत्नवाले दानव उस उद्दण्ड कालनेमिके निकट गये। गदा, भुशुण्डि, चक्र, कुठार, काल-सदृश मुसल, क्षेपणीय (देलवाँस), मुद्रर, पर्वत-सदृश पत्थर, भीषण गण्डशैल, पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तम लोहेके बने हुए परिघ, संहारकारिणी बड़ी-बड़ी तोप, यन्त्र, हाथोंसे छूटनेपर भयानक चोट करनेवाले बाण, लम्बे चमकीले भाले, पाश, मूर्च्छन (बेहोश करनेका यन्त्र), रेंगते हुए जीभ लपलपानेवाले सर्पमुख बाण, फेंकने योग्य वज्र, चमचमाते हुए तोमर, म्यानसे बाहर निकली हुई तीखी तलबार और तीखे निर्मल शूलोंसे युक्त तथा धनुष धारण करनेवाले उन दैत्योंके मन उत्साहसे सम्पन्न थे, वे उस महासमरमें कालनेमिको आगे करके खड़े हो गये। उस समय देवीप्रकार शोभा पा रही थी मानो सघन नील बादलोंके छा जानेपर सर्वथा आच्छादित हुआ आकाशमण्डल हो ॥ १—१५ १२ ॥

दूसरी ओर इन्द्रद्वारा सुरक्षित देवताओंकी सेना भी अट्टहास कर रही थी। वह चन्द्रमा और सूर्यकी श्वेत और कृष्ण ताराओंसे युक्त, वायुकी-सी वेगशालिनी, सौम्य और तारागणको पताकारूपमें धारण करनेवाली थी। उसके बस्त्र बादलोंसे संयुक्त थे। वह ग्रहों और नक्षत्रोंका उपहास-सी कर रही थी। बुद्धिमान् कुबेर, यम, इन्द्र और वरुण उसकी रक्षा कर रहे थे। वह प्रज्वलित अग्निरूप नेत्रोंवाली और नारायणके आश्रित थी। इस प्रकार यक्षों एवं गन्धर्वोंसे युक्त सागरसमूहकी तरह भयंकर देवताओंकी वह विशाल दिव्य सेना अस्त्र